सेकसरिया अध्ययनमाला—७

कनउजी-लोकगीत

लखक

सन्तराम 'अनिल'



प्रकाशक

लखनऊ विश्वविद्यालय

प्रकाशक
लखनऊ विश्वविद्यालय

मूल्य—चार रुपये

मुद्रक
रामचरनलाल श्रीवास्तव,
पवन प्रिंटिंग प्रेस,
नजीराबाद, लखनऊ।

परम्परा और प्रभाव के रूप में
लोक गीतो के सस्कार डालने वाले
देवतुल्य दिवगत माता-पिता को
सादर और सप्रेम

वक्तव्य

हिन्दी-विभाग-द्वारा किये गए साहित्यिक और सास्कृतिक खोज-सम्बन्धी कार्य को हम 'लखनऊ-विश्वविद्यालय-प्रकाशन' के रूप मे प्रस्तुत कर रहे हैं। इस सम्बन्ध मे 'सेठ भोलाराम सेकसरिया ग्रथमाला' के कई पुष्पो से विद्वान् पहले से ही परिचित हैं। इसके अन्तर्गत उच्च-कोटि के गवेषणात्मक ग्रथो का प्रकाशन किया जा रहा है। ये ग्रथ प्राय हिन्दी विभाग के अध्यापको अथवा विद्यार्थियो के द्वारा 'पी-एच० डी०' डिग्री के लिए प्रस्तुत किए गए प्रबन्ध हैं। हमारे यहाँ एम० ए० की परीक्षा के अन्तर्गत लिखे गए छोटे प्रबन्ध भी एक बडी सख्या मे हैं और प्रकाशन की प्रतीक्षा कर रहे हैं। इन छोटे प्रबन्धो को भी प्रकाशित कराने के लिए विश्वविद्यालय मे एक 'सेकसरिया अध्ययनमाला' का सूत्रपात किया गया है। हम श्री शुभकरण जी सेकसरिया के परम आभारी हैं, जिन्होने अपने स्वर्गीय पिता श्री भोलाराम सेकसरिया के नाम पर इन दोनो ग्रथमालाओ के लिए निधि प्रदान की है और उसी के बल पर ही हम इन ग्रथमालाओ का सूत्र-सचालन कर रहे हैं।

प्रस्तुत पुस्तक 'कनउजी-लोकगीत' 'सेकसरिया अध्ययनमाला' का सातवाँ पुष्प है। इसके लेखक श्री सन्तराम 'अनिल' हैं। इसे इन्होने एम० ए० परीक्षा के लिए थीसिस के रूप मे प्रस्तुत किया था और इस पर इन्हे विश्वविद्यालय द्वारा सर्वश्रेष्ठ प्रबन्ध का स्वर्णपदक प्रदान किया गया। ये मेरे प्रिय शिष्य हैं और प्रतिभावान् तथा अध्ययनशील लेखक हैं।

खडीबोली, व्रज, अवधी, भोजपुरी आदि बोलियो और इनके लोकसाहित्य पर पर्याप्त कार्य हो चुका है, पर 'कनउजी' इस

दृष्टि से अब तक उपेक्षित ही रही है । इस पुस्तक के प्रणयन-द्वारा कनउजी भाषा और उसके लोकसाहित्य के अध्ययन का श्रीगणेश सुचारु रूप मे हुआ है और मुझे आशा है कि अब यह कार्य आगे बढेगा । लेखक ने विद्वानो-द्वारा किए गए लोकगीतो के वर्गीकरण का परीक्षण करके कनउजी-लोकगीतो का एक नवीन रूप मे वर्गीकरण प्रस्तुत किया है। पुस्तक मे कनउजी-लोकगीतो के प्रकार,उनके वर्ण्यविषय, सास्कृतिक चित्रण तथा साहित्यिक मूल्याकन आदि विषयो का प्रतिपादन मौलिक एव विवेचनापूर्ण है । अन्त मे लेखक ने कुछ चुने हुए गीत भी दे दिए हैं, इससे पुस्तक की उपयोगिता और भी बढ गई है । श्री 'अनिल' मेरी बधाई के पात्र है । मुझे आशा है कि हिन्दी-ससार इस कृति को सहृदयता-पूर्वक अपनाकर लेखक को प्रोत्साहित करेगा । पुस्तक को लखनऊ विश्व-विद्यालय से प्रकाशित कराकर पाठको के सामने रखते हुए मुझे बडा हर्ष है । श्री 'अनिल' की सबल लेखनी से अन्य महत्त्वपूर्ण तथा गवेषणात्मक ग्रथो का सृजन हो, यह मेरी मगल कामना है ।

दीनदयालु गुप्त
२१-१०-१६५७

डॉ० दीनदयालु गुप्त
एम० ए०, एल-एल० बी०, डी० लिट्०
प्रोफेसर तथा अध्यक्ष,
हिन्दी तथा भारतीय भाषा-विभाग,
लखनऊ विश्वविद्यालय

प्राक्कथन

हिन्दी की कई बोलियो के लोकसाहित्य का सग्रह तथा वैज्ञानिक अध्ययन किया जा चुका है, पर कनउजी की ओर किसी भी विद्वान् का ध्यान नही गया है। साहित्य के इसी अभाव की पूर्ति के लिये गुरुवर डा० भगीरथ मिश्र मे प्रेरित होकर लेखक ने कनउजी-लोकसाहित्य और भाषा के कार्य का श्रीगणेश किया है।

अध्ययन के लिए सबसे पहली आवश्यकता थी सामग्री के सग्रह की। अत उसे ही पहले समाप्त किया गया। गीत, कहानियाँ, पहेलियाँ और मुहावरो को एकत्र करने मे अनेक कठिनाइयो का सामना करना पडा। ग्रामीण लोग लोकसाहित्य-सग्रह के महत्त्व को नही समझते। अत आग्रह करने पर उत्तर देते है कि 'हमारे गीत और कहानियाँ तो 'गमारू' हैं। आप इनको सुनकर क्या करेंगे" ? वस्तुत ग्रामीण लोगो को इसका महत्त्व समझाना दुष्कर कार्य है। सग्रह-कार्य मे दूसरी कठिनाई पर्दा-प्रथा के कारण उपस्थित होती है क्योकि स्त्रियाँ किसी अपरिचित व्यक्ति के सामने गीत गाने मे लज्जा का अनुभव करती है। यदि पुरुषो और स्त्रियो का सहयोग मिल भी गया तो एक अडचन यह पडती है कि ग्रामीण लोग गीत बोलकर लिखवा नहीं सकते। उन्हे तो गीत तभी याद आते हैं जब वे भावमग्न होकर गाते हैं। अतएव लेखक को सग्रह के लिए गीतगान की सामूहिक आयोजनाओ की व्यवस्था करनी पडी है। ५-६ मास के प्रयत्न के पश्चात् पर्याप्त सामग्री एकत्र हुई। सामग्री के अधिक हो जाने के कारण प्रस्तुत प्रबन्ध को सीमित करना पडा और 'कनउजी-लोकसाहित्य' के स्थान पर 'कनउजी-लोकगीत' विषय रखा गया।

इन गीतो का सग्रह विशेष रूप मे कन्नौज, छिबरामऊ, फर्रुखाबाद

(सदर), शाहजहाँपुर (सदर), बिधूना, डेरापुर तथा बिल्हौर तहसीलो से किया गया है। इसमे अनेक ऐसे भी गीत है जो भाषा और विषय दोनो के थोडे ही हेर-फेर के साथ 'अवधी' और 'ब्रज' मे भी मिलते हैं। यह पता लगाना कठिन है कि इन गीतो की मूल बोली कौन सी है। कुछ ऐसे भी गीत है जो कनउजी-क्षेत्र मे गाये तो जाते हैं, पर उनकी भाषा विशुद्ध 'अवधी' या 'ब्रज' है। इसका कारण यह है कि कन्याएँ विवाह के उपरान्त अपनी ससुराल मे नैहर के गीत ले जाती हैं। नैहर की भाषा से मोह के कारण वे इन गीतो की भाषा मे सहसा परिवर्तन नही करती। इसके अतिरिक्त जिला कानपुर और इटावा के गीतो पर अवधी और ब्रज का स्पष्ट प्रभाव है। जिन गीतो का इस प्रबन्ध मे उपयोग किया गया है उसके लिए लेखक यह तो दावा नही कर सकता कि वे सभी विशुद्ध कनउजी के ही गीत है, पर वह यह अवश्य कह सकता है कि ये गीत कन्नौज-क्षेत्र मे गाए जाते है।

प्रस्तुत प्रबन्ध पाँच अध्यायो मे बाँटा गया है। प्रथम अध्याय मे गीतो की पृष्ठभूमि स्पष्ट करने के लिए कन्नौज के सक्षिप्त इतिहास तथा भौगोलिक दशा पर विचार किया गया है। कनउजी गीतो को समझने के लिए इसी अध्याय मे भाषा का परिचय तथा स्थूल व्याकरण दे दिया गया है। कनउजी की स्वतत्र सत्ता मे विद्वानो को सन्देह है। अत लेखक ने इस सन्देह को दूर करने का यथाशक्ति प्रयत्न किया है। इसके बाद लोकगीत की परिभाषा देकर उनके महत्त्व पर विचार किया गया है।

द्वितीय अध्याय मे विद्वानो द्वारा किए गये लोकगीतो के वर्गीकरण का परीक्षण करके कनउजी-लोकगीतो का एक नवीन वर्गीकरण प्रस्तुत किया गया है।

तृतीय अध्याय मे कनउजी-लोकगीतो के प्रकारो और वर्ण्य विषय का विस्तृत विवेचन किया गया है।

चतुर्थ अध्याय मे लोकगीतो मे सास्कृतिक चित्रण का विवेचन किया गया है। 'सस्कृति' मे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—वर्ग चतुष्टय का समावेश हो जाता है। अत इस अध्याय मे इसी व्यापक अर्थ को दृष्टि मे रखा गया है। सस्कृति के आदर्श और यथार्थ दो रूप होते हैं। अत लोकगीतो मे दोनो का दिग्दर्शन कराया गया है। इस प्रकार इस अध्याय मे सस्कार, सामाजिक, राजनीतिक तथा आर्थिक जीवन—सभी का वर्णन किया गया है।

पचम अध्याय मे लोकगीतो का साहित्यिक मूल्याकन किया गया है। लोकगीतो मे रस परिपाक, भाव-सौन्दर्य, अलकार-विधान, छन्द, लय, तुक आदि विषयो का इसमे विवेचन प्रस्तुत किया गया है। अध्याय के अन्त मे अनेक भाषाओ के लोकगीतो के भाव-साम्य का दिग्दर्शन कराने के पश्चात् प्रबन्ध का विवेचन समाप्त कर दिया गया है।

परिशिष्ट मे चुने हुए प्रतिनिधि लोकगीतो का सग्रह दे दिया गया है जिसमे कि कनउजी पर काम करनेवाले इस सग्रह से लाभ उठा सके।

कनउजी पर अब तक खोज-सम्बन्धी कोई भी कार्य नही हुआ है। अतएव प्रस्तुत प्रबन्ध मे अध्ययन की रूपरेखा और विवेचन मे निजी दृष्टिकोण का प्राधान्य है। प० रामनरेश त्रिपाठी, देवेन्द्र सत्यार्थी डा० सत्येन्द्र और डा० कृष्णदेव उपाध्याय के ग्रन्थो तथा बगला, गुजराती और अग्रेजी के लोकसाहित्य के अनेक ग्रन्थो से लेखक ने लाभ उठाया है।

इस प्रबन्ध के पूरे होने मे अनेक ग्रामीण नर-नारियो, लेखको और विद्वानो से सहायता प्राप्त हुई है, लेखक उन सबके प्रति हृदय से कृतज्ञ है। विशेष रूप से वह लखनऊ-विश्वविद्यालय के हिन्दी-विभाग

के प्रोफेसर तथा अध्यक्ष डा० दीनदयालु गुप्तजी का आभारी है जिनके प्रोत्साहन और औदार्य से यह प्रबन्ध प्रकाशित हो सका है। डा० सरयू प्रसाद अग्रवाल के निर्देशन मे यह ग्रथ लिखा गया अत लेखक उनका हृदय से आभार मानता है। डा०भगीरथ मिश्र ने प्रबन्ध को आद्योपान्त पढकर अनेक बहुमूल्य सुझाव दिए हैं। लेखक उनका कृतज्ञ है। कनउजी भाषा और उसके साहित्य के सम्बन्ध मे यदि साहित्य-प्रेमियो के हृदय मे कुछ भी अभिरुचि जाग्रत हो सकी तो लेखक अपना प्रयास सफल समझेगा।

हिन्दी-विभाग, सन्तराम 'अनिल'
लखनऊ विश्वविद्यालय
दीपावलि, २०१४ वि०

विषयानुक्रम

प्रथम अध्याय

विषय-प्रवेश (१-५२)

द्वितीय अध्याय

कनउजी-लोकगीतो का वर्गीकरण (५५-६६)

तृतीय अध्याय

कनउजी-लोकगीतो के प्रकार और उनके वर्ण्य-विषय
(६९-१२९)

द्वितीय अध्याय

कनउजी-लोकगीतो का वर्गीकरण (५५-६६)

तृतीय अध्याय

कनउजी-लोकगीतो के प्रकार और उनके वर्ण्य-विषय (६९-१२९)

चतुर्थ अध्याय

कनउजी लोकगीतो मे सास्कृतिक चित्रण (१३१-१९४)

पंचम अध्याय

युक्त शरीर को देखकर भयभीत हुई और भाग गई और फलत: ऋषि ने शाप दिया कि इस नगर की सारी कन्याए कुब्जा हो जावे। इसी कारण 'इन्द्रपुर' 'कान्यकुब्ज' नाम से प्रसिद्ध हुआ। 'कन्नौज' और 'कनउज' इसी कान्यकुब्ज[1] के विकसित रूप है।

विश्वामित्र के पिता गाधि के राजा होने के कारण इस नगर को गाधि-पुरी[2] या गाधि-नगर भी कहा गया है। ह्वेनसाग ने अपनी यात्रा-पुस्तक में इसका नाम 'कुसुमपुर' भी लिखा है[3]।

कन्नौज-नगर और साम्राज्य

अब तो 'कन्नौज' केवल नगर मात्र रह गया है, परन्तु प्राचीन काल में 'कान्यकुब्ज' नगर तथा प्रदेश दोनो के लिये अभिहित किया गया है। पौराणिक वर्णनो के अनुसार कान्यक्कुज एक जनपद था जिसके प्रथम शासक अमावसु (इला के पुत्र) के वशज थे। पद्मपुराण के उल्लेख से भी प्रतीत होता है कि 'कान्य-कुब्ज' एक प्रदेश था[4]। महाभारत के समय 'कान्य-कुब्ज' दक्षिण पचाल के अन्तर्गत था जिसकी राजधानी कापिल्य थी। हर्ष के समय में भी यह नगर तथा साम्राज्य दोनो रूप में था। यजुर्वेद, ब्राह्मण ग्रथो, आरण्यको तथा उपनिषदो में देश तथा निवास करनेवाले लोगो के लिये पचाल तथा पाचाल नाम पाया जाता है। परवर्ती सस्कृत-साहित्य तथा 'अगुत्तर-निकाय' में १६ जनपदो मे से पचाल भी एक है।

---

१ 'कान्यकुब्ज, "कण्णउज्ज,'कन्नउज्ज', कनउज, 'कनौज,' 'कन्नौज'।

२ महोदय गाधि पुरम्— शब्द कल्पद्रुम, राजतरगिणी।

३. यात्रा-वर्णन— ह्वेनसाग

४. देवा नागा मनुष्यारच चेत्रेऽस्मिन्सन्ति नारद।
सार्द्धत्रिकोटितीर्थानि कन्याकुब्ज चतुर्युगे। पद्मपुराण (कन्या कुब्ज माहात्म्य पचम अध्याय)

'महोदय'[1] और 'कन्नौज' एक ही है, इसकी विविध प्रमाणो[2] से पुष्टि होती है। कुश द्वारा स्थापित इस कुशस्थल[3] का कान्यकुब्ज नाम किस प्रकार पडा, इसका भी एक मनोरजक इतिहास है[4]। कुश नाम के चन्द्र-वशी राजा की घृतीची अप्सरा से उत्पन्न सौ पुत्रियाँ थी। एक बार वायु-देवता इन कुमारियो को उद्यान में विहार करते हुए देखकर उन पर मोहित हो गए और उन्होने विवाह के लिए प्रस्ताव किया। राजा ने प्रत्येक कुमारी को प्रस्ताव के विपय में बतलाया, परन्तु सवसे छोटी के अति-रिक्त सभी ने विवाह के लिए इनकार कर दिया। देवता को इस वात पर क्रोध आया और उसने शाप दिया कि उस कन्या के अतिरिक्त सभी कुब्जा हो जावें। अत इन्ही ९९ कुब्जा (कुवडी) कन्याओ के कारण इस नगर का नाम 'कन्या-कुब्ज' या 'कान्य-कुब्ज'[5] प्रसिद्ध हो गया।

जैन-ग्रथ 'वृहत्कथा' के अनुसार इन्द्रपुर (इस नगर का प्राचीन नाम) के राजा के द्वारा यमदग्नि की भेंट की हुई कन्या उनके जटा-जूट-

---

१ (अ) कुशनाम तु धर्मात्मा पुरचक्रे महोदयम् — वा० रा० ३६, ६, वाल काड। (व) पदम् पुराण ३-५, १६३ (स) वाल रामायण ३०६ (द) काव्यमीमासा ८ पृष्ठ।

२ 'कान्यकुब्ज महादयम्' अभिधान चिन्तामणि-हेमचन्द्र 'कान्यकुब्ज' महोदयम् — अभिधान रत्नमाला हत्यायुध कृत, शव्दार्थ रत्न समन्वय, वैजयन्ती आदि।

३. 'कुशस्थलम् कान्यकुब्जम्'-अभिधान-संग्रह २।१६१। शव्दकल्पद्रुम हर्ष-चरित, पृष्ठ ६०३, महाभारत— उद्योग पर्व।

४ कुशनामस्तु राजर्षि. कन्या कन्याशत। जनयामास धर्मात्मा घृती-च्याम् रघुनन्दन ॥ वा० रा० ३२-६।

५. ददवाधुना च ता कन्या तम् कुब्जी कृतापरा।
कान्यकुब्जमिति ख्यातम् तत प्रभृति तद् पुरम्।

युक्त शरीर को देखकर भयभीत हुई और भाग गई और फलत ऋषि ने शाप दिया कि इस नगर की सारी कन्याएं कुब्जा हो जावें। इसी कारण 'इन्द्रपुर' 'कान्यकुब्ज' नाम से प्रसिद्ध हुआ। 'कन्नौज' और 'कनउज' इसी कान्यकुब्ज[१] के विकसित रूप है।

विश्वामित्र के पिता गाधि के राजा होने के कारण इस नगर को गाधि-पुरी[२] या गाधि-नगर भी कहा गया है। ह्वेनसांग ने अपनी यात्रा-पुस्तक में इसका नाम 'कुसुमपुर' भी लिखा है[3]।

कन्नौज-नगर और साम्राज्य

अब तो 'कन्नौज' केवल नगर मात्र रह गया है, परन्तु प्राचीन काल में 'कान्यकुब्ज' नगर तथा प्रदेश दोनों के लिये अभिहित किया गया है। पौराणिक वर्णनो के अनुसार कान्यकुब्ज एक जनपद था जिसके प्रथम शासक अमावसु (इला के पुत्र) के वंशज थे। पद्मपुराण के उल्लेख से भी प्रतीत होता है कि 'कान्य-कुब्ज' एक प्रदेश था[४]। महाभारत के समय 'कान्य-कुब्ज' दक्षिण पंचाल के अन्तर्गत था जिसकी राजधानी कांपिल्य थी। हर्ष के समय में भी यह नगर तथा साम्राज्य दोनो रूप में था। यजुर्वेद, ब्राह्मण ग्रंथो, आरण्यको तथा उपनिषदो में देश तथा निवास करनेवाले लोगो के लिये पंचाल तथा पांचाल नाम पाया जाता है। परवर्ती संस्कृत-साहित्य तथा 'अंगुत्तर-निकाय' में १६ जनपदों में से पंचाल भी एक है।

---

१ 'कान्यकुब्ज, "कण्णउज्ज,' कन्नउज्ज', कनउज, 'कनौज,' 'कन्नौज'।

२. महोदयं गाधि पुरम्— शब्द कल्पद्रुम, राजतरंगिणी।

३. यात्रा-वर्णन— ह्वेनसांग

४. देवा नागा मनुष्याश्च क्षेत्रेऽस्मिन्सन्ति नारद।
सार्द्धत्रिकोटितीर्थानि कन्याकुब्ज चतुर्युगे। पद्मपुराण (कन्याकुब्ज माहात्म्य पंचम अध्याय)

वैदिक-काल—

वैदिक-काल में कन्नौज 'पचाल जनपद' के नाम से प्रसिद्ध था। कहा जाता है कि भरतवशी भ्रम्यश्व के पाँच पुत्रो के नाम पर इसका नाम पचाल पडा। पाँच नदियो[1] से सिचित होने के कारण भी इसका नाम पचाल कहा जाता है। यहाँ की तत्कालीन राजधानी कापिल्य थी। इसकी सम्पन्नता का उल्लेख यजुर्वेद मे हुआ है[2]। सुदास[3] के समय पचाल की चरम उन्नति हुई। पचाल के प्रवहण जैबालि प्रसिद्ध दार्शनिक हुए हैं। बृहदारण्यक-उपनिषद्[4] में श्वेतकेतु का इनके पास आने का उल्लेख मिलता है। पचाल के विद्वानो और तत्त्व-ज्ञानियो ने सहिता और ब्राह्मण-ग्रन्थो की रचना में पूर्ण योग दिया है[5]।

महाभारत-काल—

महाभारत-काल में पचाल की प्रसिद्धि बढी। पृषत् की मृत्यु के पश्चात् पचाल के राजा द्रुपद हुए। उन्होने धीरे-धीरे सारे पचाल पर अधिकार कर लिया। महाभारत से ज्ञात होता है कि एक घटना ऐसी घटी जिससे उत्तर-पचाल और दक्षिण-पचाल अलग-अलग हो गए। भारद्वाज आश्रम मे द्रोण और द्रुपद सहपाठी और एक दूसरे के परम मित्र थे। शिक्षा-दीक्षा पाने के पश्चात् द्रुपद द्रुपद-पुर (कापिल्य) के राजा हो गए। द्रोण धनुर्वेद की शिक्षा परशुराम के पास लेने चले गये। वहाँ से लौट-

---

१ गगा, रामगगा, बूढ़ी गगा, यमुना तथा काली नदी।

२ अम्बेऽम्बिकेऽम्बालिके न मानयति कश्चन। ससस्त्यश्वक सुभद्रिकां कम्पिल-वासनीम्। यजु० २८-१८

३ अग्नि पुराण २७७—२० गरुड़-पुराण १—१४०—६।

४ श्वेतकेतुर्हवा आरुणेय. पाचालाना परिषदमाजगाम। स आजगाम जैवालि प्रवहण परिचयमाणम्। बृहदारण्यक १।२

५ वाजसनेयी-सहिता ११—३—२—७

कर द्रोण एक बार द्रुपद के यहाँ पहुचे और कहा, "राजन्, मैं आपका प्रिय सखा द्रोण हू, आपने मुझे पहचान तो लिया ? द्रुपद क्रोध मे आकर बोले "ब्राह्मण, तुम्हारी बुद्धि अभी परिपक्व नही हुई, भला अपना मित्र बतलाते समय तुम्हें कुछ भी हिचकिचाहट न मालूम हुई । राजाओं की निर्धनों से क्या मित्रता ? यदि कभी हो भी जावे तो समय बीतने पर मिट भी जाती है ।" द्रुपद की यह गर्वोक्ति सुनकर द्रोण को अतीव क्रोध आया और वे वहाँ से चल दिए।

एक दिन हस्तिनापुर में अर्जुन आदि राजकुमारो की गेंद एक कुए में गिर गई । सब राजकुमार विवश होकर ताक रहे थे । द्रोण पहुचे और बोले– "धिक्कार है तुम्हारे क्षत्रिय-बल और शस्त्र-कौशल को, कुएं से गेंद नही निकाल सकते", 'देखो", द्रोण ने गेंद को तीर से बेध लिया और एक तीर के ऊपर दूसरा, तीसरा और चौथा बेधते गये। पश्चात् गेंद डोरी की तरह खिचकर ऊपर आ गई । राजकुमारो को इस पर बडा आश्चर्य हुआ । द्रोण को बाबा भीष्म के पास ले गए और गुरु बना लिया । सभी राजकुमारो ने गुरु से धनुर्वेद की पूरी शिक्षा ली । शिक्षा समाप्त होने पर गुरु-दक्षिणा का प्रश्न उपस्थित हुआ । द्रोण ने कहा, "द्रुपद को बन्दी बनाकर मेरे सम्मुख उपस्थित करो, मैं द्रुपद का उसी उत्तर का पाठ पढाना चाहता हू । "बस कौरव राजकुमार द्रुपद को बंदी बनाने के लिये चल दिये, किन्तु असफल रहे । फिर पाडव गये और द्रुपद को बन्दी बना लाये । द्रुपद द्रोण के सम्मुख आकर अत्यन्त लज्जित हुए । मित्रता के योग्य होने के लिये द्रोण ने आधा राज्य दक्षिण-पचाल द्रुपद को दे दिया । दूसरी घटना पाचाली (द्रौपदी) के स्वयवर की है । महाभारत-युद्ध के समय पचाल ने पाडवो का पक्ष लिया था । द्रुपद, धृष्टद्युम्न तथा शिखडी विशिष्ट योद्धा थे । युद्ध के पश्चात् भीम ने अपनी विजय-यात्रा पचाल प्रदेश से ही प्रारम्भ की थी ।

महाभारत का परवर्ती काल—

महाभारत-युद्ध के पश्चात् दर्शन का जोर बढा । भारत के सर्व-

'प्रथम दर्शनशास्त्र के प्रणेता कपिल हुए जिन्होने साख्य का प्रतिपादन किया। यह मुनि जनश्रुतियो के अनुसार काम्पिल्य के उपवनो के बीच किसी आश्रम में निवास करते थे। युद्ध के पश्चात् एक शासक हरि-षेण का वर्णन आता है। ब्रह्मदत्त नामक एक दूसरे सार्वभौम राजा का वर्णन है। ऐसा ही महाउम्मग जातक[1] में एक उल्लेख मिलता है।

जैन-ग्रथो के अनुसार महावीर स्वामी ने जनता को उपदेश देना यही से आरम्भ किया था। जैनियो के १३ वें तीर्थंकर विमलनाथ का जन्म यही हुआ[2] था और वे सदा यही रहे। स्वय ऋषभ-देव ने भी अपना उपदेश काम्पिल्य नगरी में ही दिया था[3]। बौद्ध और जैन-साहित्य में पचाल सम्बन्धी अनेक विवरण मिलते हैं। प्रसिद्ध बौद्ध-ग्रथ 'अगुत्तर-निकाय' में वर्णित १६ महाजनपदो में पचाल का प्रमुख स्थान है। बौद्ध-काल में सकिसा एक बडा तीर्थ स्थान बन गया। यहाँ की प्रसिद्ध बौद्ध-भिक्षुणी उत्पला का नाम बौद्ध-साहित्य में चिरस्मरणीय रहेगा। ऐतरेय-ब्राह्मण की रचना भी पचाल मे ही हुई। प्राय सभी इतिहास-कारो का मत है कि सूत्र-ग्रथो [श्रौत्र, धर्म, गुह्य) की रचना पचाल एव कान्य-कुब्ज प्रदेश में ही हुई। महात्मा बुद्ध के पश्चात् लगभग एक शताब्दी तक पचाल स्वतत्र राज्य के रूप में रहा। चौथी शती में महापद्मनन्द ने उसे अपने अधीन कर लिया। नन्दो के बाद क्रमश मौर्यों और शुग वशो के अधीन यह प्रान्त हो गया। कुषाण और गुप्त राजाओ के पश्चात् मौखरी, गुर्जर, प्रतीहार तथा गहरवाल वशी शासको के अधिकार में पचाल रहा।

यद्यपि कन्नौज का नाम पचाल के प्राचीन विवरणो में निरन्तर आता रहा है और बौद्धकाल मे गगा द्वारा होने वाले व्यापार का केन्द्र

---

१ काम्पिल्य पुर—तीर्थकल्प—(स० २१)

२ (तिलोय परिणिति, अ० २)

३ महापुराण (२६८, ६८१)

रहा है, किन्तु ईसा की छठी शताब्दी में तो इस नगर की समृद्धि इतनी वढी कि न केवल पचाल का ही यह गौरव था, वरन् सारे उत्तरी भारत की राजधानी वन गया।

ईसा पूर्व छठी शताब्दी से कन्नौज के सम्बन्ध में अधिक स्पष्ट बातें मालूम होने लगती हैं। बौद्ध-ग्रथो तथा चीनी यात्री ह्वेनसाग के वर्णनो मे पता चलता है कि भगवान् बुद्ध कान्यकुब्ज में पधारे थे। विहार के अन्दर बुद्ध का दांत भी रखा हुआ था जिसके दर्शन के लिए दर्शको की भीड लगी रहती थी। यह भी कहा जाता है कि भगवान् बुद्ध स्वर्ग मे स्वयमेव कान्यकुब्ज में ही अवतीर्ण हुए और यहीं के प्रसिद्ध स्तूप[1] में ६ मास ठहरकर उन्होंने अनेक व्याख्यान दिये।[2]

पतजलि ने अहिच्छत्री और कान्यकुब्जी-महिलाओ के नाम लिए है। मौर्य-सम्राट् अशोक के वाद उसके पुत्र जलौक ने कान्यकुब्ज-प्रदेश से चारो वर्णो को ले जाकर उन्हें कश्मीर में वसाया। मौर्यो के वाद क्रमश कन्नौज पर शुग, मित्र तथा कुषाण-वशी शासको का आधिपत्य रहा। मौर्य-काल के पश्चात् ५ वी शताब्दी तक कन्नौज का कोई प्रमुख रूप से विवरण नहीं मिलता है।

मौखरी-वश का शासन

ईसा की छठी शताब्दी के मध्य में उत्तरी भारत में मौखरी-वश का प्रादुर्भाव हुआ जिसने कन्नौज को अपना केन्द्र बनाया। इस शाखा के पहले तीन शासक हरिवर्मा, आदित्यवर्मा और ईशानवर्मा गुप्त सम्राटो के सामन्त थे। ईशानवर्मा गुप्त-साम्राज्य के पतन हो जाने पर स्वतत्र हो गए और उन्होंने महाराजाधिराज की उपाधि धारण की। इसने हूण-आक्रमण का मूलोच्छेद कर दिया और एक सुदृढ तथा

१—कीलहार्न-महाभाष्य पृ० ३३।

२—चील कृत--फाहियान की यात्रा।

सुव्यस्थित राज्य की स्थापना की। ईशान्‌वर्मा के प्रपौत्र ग्रहवर्मा तथा थानेश्वर के शासक प्रभाकरवर्धन की पुत्री राज्यश्री के वैवाहिक सम्बन्ध द्वारा भारत के दो प्रसिद्ध राज-वश, मौखरी और वर्धन एक सूत्र मे बँध गए। प्रभाकरवर्धन की मृत्यु के पश्चात्‌ देवगुप्तगौड और शशाक ने कन्नौज पर आक्रमण किया और ग्रहवर्मा युद्ध में मारे गए और राज्यश्री को कारागार में डाल दिया गया। यह समाचार पाकर राज्यवर्धन ने मालवराज को पराजित करके शशाक को घेरा। शशाक ने धोखे से उसे मार डाला। ज्योही यह समाचार कन्नौज पहुँचा, त्योही राज्यश्री निराश होकर आत्मघात करने के लिए विंध्याचल के जगलो की ओर भागी। हर्ष ने जब यह समाचार पाया तो उनके क्रोध की सीमा न रही। उन्होने शशाक को पराजित किया और राज्यश्री को आत्मघात से रोककर उसके शासन को प्रतिनिधि के रूप में चलाया। राज्यश्री के कोई सन्तान न थी, अतएव कुछ समय पश्चात्‌ कान्यकुब्ज के सिंहासन से मौखरी राजाओ का शासन समाप्त हुआ और पुश्यभूति-वश के शासक हर्ष की राजधानी कन्नौज बनी।

हर्ष—

राज्यवर्धन्‌ के बाद उनके छोटे भाई हर्ष राज्य के अधिकारी हुए। हर्षचरित में इस राजा के प्रारम्भिक काल का विस्तृत वर्णन मिलता है इसके अतिरिक्त' मजुश्री, ' शल्यकल्प, आदि ग्रथो से तथा हर्ष के समय के प्राप्त कई अभिलेखो से तत्कलीन इतिहास का पता चलता है। राज्यारोहण के साथ ही हर्ष ने एक विशाल सेना तैयार की और उसकी सहायता से उत्तर और पूर्व के अनेक राज्यो को जीता। राज्यश्री तथा मन्त्रियों के आग्रह से हर्ष को कन्नौज का भी शासन ग्रहण करना पडा। हर्ष ने कुछ वर्षों मे ही अपनी विशाल सेना की सहायता से एक बडे साम्राज्य का निर्माण कर लिया। वर्तमान उत्तर-प्रदेश, बिहार, बगाल,

उडीसा के प्राय सभी राज्य हर्ष के साम्राज्य के अन्तगत ही हो गए। इसके पश्चात् उसने दक्षिण की ओर अभियान किया परन्तु तत्कालीन चालुक्य सम्राट् पुलकेशिन् द्वितीय से उसे पराजित होना पडा।

हर्षवर्धन ने विशाल एव दृढ साम्राज्य की स्थापना तो की ही, उनके समय में साहित्य, कला और धर्म की भी उन्नति हुई। वाण तथा मयूर जैसे रत्न उसकी सभा में विद्यमान थे। वाण का विद्वान् पुत्र भूपणभट्ट, आचार्य दडी, मातग दिवाकर तथा मुनि तुगाचार्य भी हर्ष की सभा के रत्न माने जाते थे। हर्ष स्वय एक अच्छा लेखक था। नालदा के प्रसिद्ध विश्वविद्यालय को भी हर्ष ने सहायता प्रदान की। इसके समय कन्नौज आए हुए चीनी यात्री ह्वेनसाग ने कन्नौज के विषय में लिखा है कि भारत भर में दूसरा कोई भी नगर इतना समुन्नत उसे देखने को न मिला।

हर्ष बौद्ध धर्म के अतिरिक्त अन्य धर्मों का भी आदर करता था। उसकी दानशीलता बहुत प्रसिद्ध है। प्रयाग में गगा यमुना के सगम पर प्रति पाचवें वर्ष वह दान करता था। ह्वेनसग को हर्ष ने बहुत अधिक सम्मानित किया था।

यशोवर्मा—

हर्ष की मृत्यु के पश्चात् यशोवर्मा नामक शासक का पता चलता है। इसके आश्रित कवि वाक्पति के 'गौडवहो' काव्य में यशोवर्मा की अनेक विजय-यात्राओ का उल्लेख मिलता है। यह बडा विद्या-प्रेमी था उसकी सभा में भवभूति जैसे नाटककार सुशोभित होते थे। यह चन्द्रवशी राजा था। कुछ लोग इसे मौखरी-वश का भी वतलाते है। कश्मीर के तत्कालीन शासक ललितादित्य ने यशोवर्मा को पराजित कर कन्नौज पर अपना आधिपत्य स्थापित किया।

कन्नौज के प्रतिहार शासक—

मगध के प्रतापी राजा धर्मपाल का सामन्त कन्नौज का शासन कर

किया है[1]। जयचन्द्र द्वारा राजसूय-यज्ञ और सयोगिता-स्वयम्वर की वात टाड के अतिरिक्त कोई भी प्रसिद्ध इतिहासकार नही मानता। इसका कारण इतिहासकार यह वतलाते हैं कि उस समय न तो स्वयम्वर की ही प्रथा थी और न जयचन्द्र का इतना बडा राज्य ही जो वह राजसूय-यज्ञ करता। 'रभा-मजरी' की रचना जयचन्द्र को नायक मान कर की गई, परन्तु इसमें इसका कुछ भी उल्लेख नही है। कोई भी इतिहासकार इसे नही मानता कि जयचन्द्र ने शहाबुद्दीन गोरी को पृथ्वीराज के विरोध में आक्रमण करने का निमत्रण दिया। इस प्रकार विना किसी सशक्त प्रमाण के जयचन्द्र पर देशद्रोही का अभियोग लगाना सर्वथा अन्यायपूर्ण है। ११९४ ई० में गोरी ने ५० हजार सैनिको को लेकर कन्नौज पर चढाई की। चदावर (जिं० इटावा) के युद्ध में जयचन्द्र ने वहादुरी से सामना किया। और अपनी सेना का सचालन स्वय किया। मुसलमान लेखको के विवरणो से पता चलता है कि चदावर का युद्ध वडा ही भयानक हुआ। जयचन्द्र पराजित हुआ और मारा गया। गोरी कुतुबुद्दीन को भारत का शासक बनाकर लौट गया। इस प्रकार कन्नौज मुसलमानो के अधिकार में चला गया। जयचन्द्र कन्नौज का अन्तिम प्रतापी शासक था।

यवन-काल

११९४ ई० के पश्चात् भारत की राजधानी दिल्ली हुई और शासन-प्रबन्ध गुलाम वादशाहो के हाथ में चला गया[2]। कन्नौज और उसके आसपास के प्रदेश भी गुलामो के अधिकार मे आ गये। परन्तु फिर भी इस समय के राजपूत अपनी स्वतन्त्रता के लिए प्रयत्न करते रहे। १३वीं शताब्दी के मध्य की स्थिति लगभग अराजकता की थी। सारे राज्य में लुटेरो का वोल-वाला था। कम्पिल और भोजपुर इन

१ 'ताम्बूलद्वयमासनञ्च लभते यो कान्यकुब्जेश्वरात्'—'नैषध'

२ R. S Tripathi-History of Kanauj, Page 322.

लुटेरों के मुख्य गढ थे। इनका आतंक यहाँ तक बढा कि स्वयं बलबन को यहाँ आना पडा। उक्त दोनों स्थानों पर किले बनवाकर उसने इन स्थानों को लुटेरों से मुक्त किया। बलबन ने इतना अच्छा प्रबन्ध कर दिया कि साठ वर्ष बाद का वर्णन करता हुआ जियाउद्दीन बर्नी लिखता है कि सडकें चोरों और लुटेरों से खाली थीं।

मुहम्मद तुग़लक के शासन-काल में एक बार फिर इस प्रदेश पर संकट आया। १३४० ई० में विद्रोहियों को दबाने के लिए उसने कन्नौज से लेकर डलमऊ तक का सारा प्रदेश उजाड डाला। जब इब्राहीम लोदी को हराकर बाबर दिल्ली का बादशाह हुआ तो उसने अवध और कन्नौज इन दोनों प्रदेशों को अपने एक मित्र और सम्बन्धी मुहम्मद सुलतान मिर्जा को दे दिया। जब हुमायूँ बादशाह हुआ तो कन्नौज के शासक मुहम्मद सुलतान मिर्जा ने, जो अवध का भी शासक था, अवध मे विद्रोह कर दिया। इस विद्रोह को दबाने के लिए हुमायूँ ने भोजपुर में डेरा डाला और विद्रोहियों को पकड लिया। जब १५३७ ई० हुमायूँ बंगाल में दूर तक बढ गया था उसी समय कन्नौज शेरखाँ (शेरशाह) के हाथों आ गया। चौसा-युद्ध में हारने के बाद हुमायूँ शेरखाँ से बिलग्राम, (कन्नौज के पास) जिला हरदोई मे फिर हारा। हुमायूँ की हार का परिणाम यह हुआ कि शेरशाह का अधिकार दिल्ली पर हो गया। इधर कन्नौज पर इसका प्रभाव यह पडा कि यहाँ पर फर्मूली अफ़गानों का प्रभाव बढ गया।

अकबर के शासन-काल मे इस प्रदेश में अलीकुली खाँ और बहादुर खाँ ने १५६५ ई० और १५६७ ई० में विद्रोह किए। १५६७ ई० में अकबर भोजपुर तक ही आ पाया था कि विद्रोही शेरगढ के किले के घेरे को छोड कर भाग गए। अलीकुली खाँ इलाहाबाद में लडता हुआ मारा गया और उधर बहादुर खाँ पकड कर शाही-आज्ञा से मार दिया गया। अकबर ने साम्राज्य के प्रबन्ध की ओर ध्यान दिया और सारे साम्राज्य

को प्रान्तो में बाँटा और इन प्रान्तो को भी छोटे विभागो मे । आगरा प्रान्त का एक विभाग कन्नौज भी था जिसमें अस्सी परगने या मुहाल सम्मिलित थे ।[1]

जहाँगीर ने १६१० ई० में कन्नौज का शासन मिर्जा अब्दुर्रहीम के हाथो में दिया । उस समय इस प्रदेश में अशान्ति फैली थी । लुटेरो को कठोरता से दबा देने का आदेश रहीम को दिया गया, परन्तु उन्हें यह काम पूरा किये बिना ही दक्षिण जाना पडा । रहीम के बाद इसका शासन पिहानी के मीरन को दिया गया जिसकी मृत्यु १६२० ई० मे हो गई । १६२० ई० से १७०७ ई० तक इस प्रदेश में कोई उल्लेखनीय घटना नही घटित हुई ।

बगश बश

मऊ रशीदाबाद के पठान सरदार मुहम्मद खाँ बगश ने फरुखसियर की कृपा प्राप्त करके अपने को शक्तिशाली शासक बनाया । फर्रुखसियर ने इसे नवाब की पदवी दी । मुहम्मद खाँ ही ने फर्रुखसियर के नाम पर फर्रुखाबाद नगर को बसाया । १७४३ ई० में उसकी मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र कायमखाँ गद्दी पर बैठा । १७५० ई० में राजा नवलराय ने कन्नौज और फर्रुखाबाद पर अधिकार कर लिया । परन्तु कायमखाँ के पुत्र अहमदखाँ ने उसे पराजित किया । नवाबी की यह परम्परा १८५७ ई० की क्रान्ति तक चलती रही ।

फर्रुखाबाद में अंग्रेज

नवाब आसफुद्दौला की अंग्रेजो के साथ १७७५ ई० की संधि के अनुसार कम्पनी की सेना का अवध में रहना निश्चित हुआ था । १७७७ ई० में नवाब ने ६ बटालियन सैनिक, तोपखाना तथा घुड-सवारो की माँग की । अत यह सेना कम्पनी की सेना के साथ फतेहगढ

---

१ सतोषकुमार त्रिपाठी 'वचनेश अभिनन्दनग्रन्थ' में 'दिल्ली में यवन-शासन का प्रारम्भिक काल' पृष्ठ ७४ ।

मे रखी गई। ८ लाख व्यय का रुपया न आने पर वारेन हेस्टिंग्ज ने यहाँ पर रेजीडेंट रख दिया था जो कार्नवालिस के समय वापिस बुला लिया गया। १७७६ ई० में मुजफ्फरजंग की मृत्यु के पश्चात् उत्तराधिकार का प्रश्न आया। समझौते द्वारा नासिरजंग को ५० हजार रुपया वार्षिक देना स्वीकार किया गया, परन्तु अन्य सब बातों में अमीनुद्दौला (संरक्षक) के पास अप्रतिहत अधिकार थे। ४ जून, १८०२ में हेनरी वेलेजली तथा नासिरजंग में संधि हुई जिसके अनुसार नवाब ने अपने अधिकृत सम्पूर्ण-प्रदेश के बदले में एक लाख आठ हजार रुपये वार्षिक-पेंशन लेना स्वीकार कर लिया तथा सारी जागीरों की भूमि, जो मुजफ्फरजंग की मृत्यु के पूर्व से चली आती थी, दे दी।

सन् १८५७ की क्रान्ति

१८५७ ई० की स्वाधीनता की प्रथम भारतीय क्रान्ति में फर्रुखाबाद ने भी भाग लिया और अंग्रेजों के हाथ से लगभग ७ मास तक स्वाधीन रहा। क्रान्ति के कारण वही थे जो सब जगह चल रहे थे। मेरठ के विद्रोह का समाचार लगभग चार दिन बाद फतेहगढ़ पहुँचा और वहाँ के अंग्रेज अधिकारियों ने १० मई को मीटिंग बुलाकर निश्चित किया कि खजाना इत्यादि प्रमुख स्थानों पर सैनिक बढ़ा दिए जावें। १० नं० की नेटिव-इन्फेण्ट्री ने कर्नल ए० स्मिथ की स्वामिभक्ति की शपथ ली थी। फिर भी गुप्तरूप से पता चला कि सैनिक केवल अवसर की बाट जोह रहे हैं। दि० २७ को प्रोबिन को यह सूचना मिली कि अवध के इर्रेगुलर पैदल और घुड़सवार सैनिक जो कानपुर में थे, यहाँ भेजे जा सकते हैं। प्रोबिन ने यह उत्तर दिया कि दसवीं रेजीमेंट पर तभी तक विश्वास किया जा सकता है जब तक कि बाहर के सैनिकों से उनका सम्पर्क न हो। शाहजहाँपुर में विद्रोह सुनकर घटिया घाट की नावों का पुल तुड़वा दिया गया पर २ जून को तीन विद्रोही-रेजीमेंटों ने गंगा पार कर ली। इन समाचारों के फैलने से

कन्नौज प्रदेश का भौगोलिक परिचय

स्थिति

भौगोलिक दृष्टि से कन्नौज प्रदेश २६° और २७° उत्तरीअक्षाश तथा ७९° और ८०° पूर्वी-देशान्तर के मध्य में स्थित है।

नदियाँ

यह प्रदेश गगा और यमुना के दोआब के अतर्गत आता है। भूमि समतल तथा चौरस है। कोई छोटा मोटा भी पहाड नही है। गगा, यमुना, रामगगा, बूढीगगा, काली नदी, ईसन तथा अरिन्द नदियो ने यहाँ की भूमि को उपजाऊ तथा हरा भरा बनाया है। गगा और यमुना ने न केवल इस भूमि को पवित्र ही किया है, वरन् रत्न-प्रसू भी बना दिया है।

भूमि

इस प्रदेश में दुमट, मटियार तथा भुरभुरी तीनो प्रकार की मिट्टी मिलती है और इसी कारण यहाँ सब प्रकार के अन्नो की बहुतायत से उपज होती है। कँकडीली-पथरीली और ऊसर-जमीन का नितान्त अभाव है।

सिंचाई

भूमि की सिंचाई के लिये यहाँ की नदियाँ बहुत ही उपयोगी सिद्ध हुई हैं। नदियो के किनारे की भूमि की सिंचाई नदियो के पानी से की जाती है। इसके अतिरिक्त नदियो से नहरें निकाली गई है जिनमे किनारे से दूर की भूमि को भी सरलता से सीचा जा सकता है। जहाँ नहरें नही है वहाँ कुएँ से सिंचाई की जाती है। जहाँ भुरभुरी मिट्टी होती है वहाँ की खेती को सीचना ही नही पडता और बिना सिंचाई के ही पर्याप्त मात्रा में उपज होती है।

पैदावार

यहाँ की मुख्य पैदावार गेहूं, जौ और चना है। जहाँ मटियार-भूमि है वहाँ धान भी पैदा होता है। भुरभुरी-भूमि वाले स्थानों में मूगफली भी पैदा होती है। इसके अतिरिक्त इस प्रदेश में ज्वार, बाजरा, मक्का, मूग, उडद, अरहर, मटर, लाही, सरसों, तिल, अडी, अलसी आदि भी पैदा होती है। गन्ना, तम्बाकू, आलू, तरबूज खरबूजा, शकरकन्द, गोभी आदि की पैदावार यहाँ के लोगों को समृद्ध बनाये हुये है। यहाँ खरीफ, रबी तथा जायद तीन फसलें होती हैं।

आमों के बाग भी पर्याप्त मात्रा में पाये जाते है। आमों को बाहर भी भेजा जाता है। कन्नौज नगर के आस-पास फूलों की पर्याप्त मात्रा में खेती होती है, क्योंकि कन्नौज में बनने वाले इत्र के लिए इन फूलों की बहुत खपत होती है।

व्यापार

कन्नौज के इत्र का व्यापार न केवल भारत में ही होता है, वरन् वह विदेशों में भी भेजा जाता है।' इसी प्रकार फरुखाबाद में फर्दा की छपाई बहुत अच्छी होती है। इन फर्दों को कई देशों में भेजा जाता है और इस प्रकार फर्दों के व्यापार से फरुखाबाद को लगभग २० लाख प्रति वर्ष का लाभ होता है[1]। यहाँ की तम्बाकू का व्यापार भी सारे देश से होता है। कायमगंज भारत के तम्बाकू के व्यापार के प्रमुख केन्द्रों में से एक है। पीतल के बरतनों के बनाने का फरुखाबाद एक अच्छा केन्द्र है। शकर का अच्छा व्यापार इस प्रदेश में होता है। शाहजहाँपुर में शकर के कई मिल हैं जिनकी बनी हुई शकर प्रान्त के अनेक स्थानों को जाती है। इटावा का घी बडा ही प्रसिद्ध है और यह प्रान्त के

---

1. कमलेशमिश्र—'वचनेश अभिनन्दन ग्रन्थ' में 'फ़र्रुखाबाद जनपद, एक सामान्य पर्यालोचन' लेख, पृष्ठ १६६।

प्रमुख नगरो में व्यापार के लिये भेजा जाता है। इन व्यापारो के अतिरिक्त अन्य अनेको और भी छोटे-मोटे व्यापार यहाँ होते हैं।

जलवायु

यहा पर गर्मी जाडा और बरसात तीन मौसम होते है। गर्मी मे अधिक से अधिक ११२° फारेनहाइट तापमान होता है और जाडो में कम से कम ४०° फारेनहाइट। इस प्रकार न तो यहा भयकर गर्मी ही पडती है न जाडा ही। प्राय आषाढ, श्रावण, भाद्रपद तथा क्वाँर मे काफी वर्षा होती है जाडो मे एक दो बार से अधिक वर्षा नही होती। पश्चिमी तथा पूर्वी दोनो मानसून यहा पर पानी बरसाते हैं।

जनता

यहा की जनसख्या लगभग ४४ लाख है[1] और यहाँ सभी वर्णों के लोग पाये जाते हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, अहीर, कायस्थ, लोधी, कहार, नाई, कुम्हार, चमार, धोबी, धानुक, काछी, कुर्मी, गडरिया, बारी, लुहार, सुनार, बढई, कोरी, जाचक आदि अनेक जातियो के लोग निवास करते हैं। मुसलमान, सिख, ईसाई भी रहते हैं। परन्तु उनकी सख्या अत्यल्प है। समाज मे ब्राह्मणो का स्थात बहुत ऊँचा है। अन्य वर्गों के लोग इन्हे 'पडित जी' या 'महराज' कहकर पुकारते है तथा श्रद्धा से उनका चरण-स्पर्श करते हैं। सभी वर्णों के लोग प्राय खेती ही करने हैं क्यो कि यहा यही मुख्य पेशा है।

९९ प्रतिशत जनता ग्रामो में रहती है। ग्राम भी बहुत छोटे-छोटे होते हैं। खेती करके जीविका-निर्वाह करने के कारण इनका रहन-सहन बहुत ही सादा है।

---

1 सन् १९५१ की जनगणना के अनुसार।

'कनउजी-भाषा'

वैज्ञानिक अध्ययन के लिए विश्व की भाषाओं को कई परिवारों में विभाजित किया गया है। इस विभाजन के अनुसार हिन्दी भारतीय आर्य-परिवार की एक प्रमुख भाषा है। भाषा-शास्त्र की दृष्टि से मध्य-देश की मुख्य बोलियों के समुदाय को ही हिन्दी नाम दिया गया है।[1] हिन्दी को भी 'पश्चिमी हिन्दी उपभाषा' और पूर्वी हिन्दी उपभाषा'—दो भागों में बांटा गया है। इन 'पश्चिमी हिन्दी उपभाषा' वर्ग के अन्तर्गत 'खड़ीबोली,' 'बांगरू,' 'ब्रज,' कनउजी' और 'बुन्देली' पांच उपरूप हैं।[2]

ऐतिहासिक दृष्टि से 'कनउजी' का विकास वैदिक संस्कृत > पांचाली पालि > पांचाली प्राकृत > अपभ्रंश से हुआ है।

'कनउजी' का नामकरण—

'कनउजी' भाषा का नामकरण आधुनिक फर्रुखाबाद जिले में स्थित कन्नौज नगर के नाम पर हुआ है। प्राचीन भूगोल के अनुसार कन्नौज न केवल नगर का ही नाम था, वरन् जो क्षेत्र इसके अधीन थे, उन्हें भी कन्नौज कहा जाता था[3]। इस प्रकार राजधानी और राज्य दोनों एक ही नाम के थे। आज जो 'कनउजी' या 'कन्नौजी' शब्द का प्रयोग होता है, उसका आशय है—प्राचीन कन्नौज-साम्राज्य में बोली जानेवाली भाषा। कन्नौज संज्ञा से हिन्दी—'ई' प्रत्यय लगाकर 'कन्नौजी' शब्द बनाया गया है।

---

१. डा० धीरेन्द्र वर्मा० हिन्दी भाषा और लिपि, पृष्ठ ४७

२. डा० ग्रियर्सन लिंग्विस्टिक सर्वे आफ इण्डिया भाग ६, खण्ड १, पृष्ठ १

३. वही, पृष्ठ ३८२

इस भापा के 'कन्नौजी'[१] 'कन्नौजी'[२] और 'कनोजिया'[३]—तीन नामो का उल्लेख मिलता है। 'कन्नौज' को यहाँ की भाषा बोलनेवाले लोग 'कनउज' कहते हैं। अत इस भाषा को 'कनउजी' कहना ही समुचित है। पर, साहित्यिक खडी वोली मे इस नगर के नाम का उच्चारण 'कन्नौज' है। अत इस दृष्टि से इसे 'कन्नौजी' भी कहा जा सकता है।

'कनउजी' का क्षेत्र-विस्तार—

कनउजी' का क्षेत्र 'व्रज-भापा' और 'अवधी' के वीच का पडता है। यह भापा उत्तर मे 'कुमायूनी', पूर्व मे 'अवधी', दक्षिण मे 'बुन्देली' और पश्चिम मे 'व्रज' से घिरी हुई है।

अपने विशुद्धरूप मे 'कनउजी' फरुखावाद, शाहजहाँपुर, इटावा[४] जिलो मे तथा पश्चिमी कानपुर और हरदोई के कुछ भागो मे वोली जाती है। कानपुर जिले के पूर्वी भाग मे 'अवधी' और दक्षिणी भाग मे 'वुदेली' का प्रभाव है। हरदोई जिले की सडीला तहसील के लिए कहना कठिन है कि वहाँ की भापा 'कनउजी' है अथवा 'अवधी।' यहाँ की भापा को वास्तव मे 'मिश्रित भापा' कहना चाहिए[५]। जिला पीलीभीत की भापा के रूपो मे 'व्रज-भापा' का प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है[६]। मोटे रूप से कहा जा सकता है कि 'कनउजी' के क्षेत्र के अन्तर्गत

---

१. डा० धीरेन्द्र वर्मा, ग्रामीण हिन्दी, पृष्ठ १२
२. डा० ग्रियर्सन, लिग्विस्टिक सर्वे आफ् इण्डिया भाग ६, खण्ड १ पृष्ठ १
३ फर्रुखावाद डिस्ट्रिक्ट गजेटियर, पृष्ठ १२१ (१६११ सख्या)
४ डा० ग्रियर्सन. लिग्विस्टिक सर्वे आफ् इण्डिया, भाग ६, खण्ड १ पृष्ठ १
५ वही, पृष्ठ ३६५
६. वही, पृष्ठ ४००

फरुखाबाद, शाहजहांपुर, हरदोई, कानपुर, इटावा और पीलीभीत—छ जिले आते हैं[1]।

जनसख्या तथा क्षेत्र-फल—

सन् १९५१ की जनगणना के अनुसार 'कनउजी' बोलनेवालो की सख्या लगभग ४४ लाख है और यहाँ का क्षेत्रफल कुल मिलाकर ७,७६१ वर्गमील हैं। जिलावार जनसख्या तथा क्षेत्रफल निम्न प्रकार से हैं।

जिला	जनसख्या	क्षेत्रफल (वर्ग-मील)
फर्रुखाबाद	१०,९२,६८१	१,६६०
इटावा	९,७०,६०५	१,६८८
शाहजहांपुर	१०,०८,३७८	१,७६०
पीलीभीत	४,०८,४२८	१,३४३
तहसील—		
अकबरपुर (कानपुर)	१,८२,८९७	३६८
डेरापुर (कानपुर)	३,०८,४८०	४०३
शाहाबाद (हरदोई)	३,१८,८४५	५३९
	४३,७८,३७४	७,७६१

'कनउजी' की विशेषताएँ—

१ 'ब्रज', 'कनउजी' और 'अवधी' में मुख्य भेद यह है कि साहित्यिक 'खडीबोली' के सज्ञा, विशेषण तथा क्रियाओ के 'आकारान्त' रूप इन तीन भाषाओ में क्रमश 'औकारान्त', 'ओकारान्त'[2] तथा 'अकारान्त' या 'आकारान्त' हो जाते है। 'खडीबोली' के 'घूरा', 'बडा' और 'गया' 'ब्रज' में 'घूरौ', 'बडौ' और 'गयौ', 'कनउजी' में 'घूरो',

---

१. ग्रियर्सन: लिंग्विस्टिक सर्वे श्राफ इण्डिया भाग ६ खण्ड १ पृष्ठ ८२—८३

२. वही, पृष्ठ ८-८३

'बडो' और 'गओ' तथा 'अवधी' में 'घूर', 'बडका' और 'गा' हो जाते है। अन्य उदाहरणो को लेकर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि जिन शब्दो के खडी बोली में 'आकारान्त' रूप हैं वे 'कनउजी' में 'ओकारान्त' हो जाते हैं। इस नियम के कुछ ही अपवाद है।

२ क्रिया के भविष्य - निश्चयार्थ के रूपो के लिए 'खडीबोली' में—'ग' प्रत्यय लगाकर रूप-रचना होती है, पर 'कनउजी' में इस काल के लिए— 'ग' प्रत्यय का प्रयोग किसी भी क्षेत्र में नही मिलता[1] वरन् इसके लिए—'ह' प्रत्यय प्रयुक्त होता है। 'ब्रज' के रूप चलुगो के लिए 'कनउजी' में 'चलिहौं' पाया जाता है।

३ लड़िका शब्द के—'आ' का एक वचन विकृत-रूप-ए कनउजी में नही मिलता[2]। 'लडके ने दूध पी लिया' के स्थान पर 'लडिका ने दूध पी लओ' होगा। इस वाक्य में 'लडिका' शब्द ज्यो का त्यो बना रहा।

४ मध्य-'ह' का लोप हो जाता है[3]। यह प्रवृत्ति फरुखाबाद के दक्षिणी-भाग तथा इटावा में पाई जाती है। 'ब्रज' का रूप 'जाहि' और 'लेहु' 'कनउजी' में क्रमश 'जाय' और 'लेउ' होते हैं।

५ 'त्' अन्त्य भूतकालिक कृदन्तो के वाद 'खडीबोली' के 'था' के 'कनउजी' मे थो या 'तो' रूप हो जाते है। पर 'थो' या 'तो' का प्रयोग विकल्प से ही होता है, क्योकि जात् हतो, कहत् हतो—ऐसे रूप भी 'कनउजी' में मिलते हैं।

६ सकेत वाचक सर्वनाम 'यह' 'वह' के 'ई', ऊ एव 'जो', 'वो' रूप मिलते हैं।

---

१. डा० धीरेन्द्र वर्मा· ब्रजभाषा, पृष्ठ ६७

२. डा० ग्रियर्सन लिंग्विस्टिक सर्वे ग्राफ इण्डिया भाग ९, खण्ड १, पृष्ठ ८२

३ वही, पृष्ठ ८३

७ व्यञ्जनान्त संज्ञाओं में कहीं कहीं 'उ' जुड़ जाता है। यह प्रवृत्ति 'ब्रज' में भी है, पर 'कनउजी' में यह अधिक मात्रा में पाई जाती है[1]।

८ व्यञ्जनान्त संज्ञाओं तथा क्रिया के बाद हरदोई और शाहजहाँपुर में—'इ' जुड़ जाती है[2]। जैसे दाल>दालि, कहत<कहति, जात है<जाति हइ।

९ 'कनउजी' में 'लडका चला गया' के लिए 'लड़िका ने चलो गओ' प्रयोग मिलता है[3]। इस प्रकार का प्रयोग आदर्श हिन्दी के नियमों के विरुद्ध है और इसे डा० धीरेन्द्र वर्मा ने 'कनउजी' की व्यक्तिगत विशेषता मानी है[4]।

'कनउजी' और 'ब्रजभाषा'

डा० ग्रियर्सन ने 'कनउजी' की स्वतन्त्र-सत्ता को अस्वीकार करते हुए कहा है कि 'कनउजी' वास्तव में 'ब्रजभाषा' का ही एक रूप है और इसको पृथक् स्थान सर्वसाधारण मे पाई जानेवाली भावना के कारण दिया गया है[5]। इसी को आधार मानकर डा० धीरेन्द्र वर्मा ने भी 'कनउजी' को स्वतन्त्र बोली न मानकर[6] उसे 'ब्रज-भाषा' का ही एक उपरूप बतलाया है। 'कनउजी' के ब्रजभाषा के उपरूप होने के सम्बन्ध में उन्होंने निम्न कारण दिये हैं[7] —

---

१. डा० ग्रियर्सन, लिंग्विस्टिक सर्वे आफ इंडिया। भाग ९, खंड १, पृष्ठ ८९

२ वही, पृष्ठ ८२

३. वही, पृष्ठ ८२

४. डा० धीरेन्द्र वर्मा: ब्रजभाषा, पृष्ठ ३४

५. डा० ग्रियर्सन: लिंग्विस्टिक सर्वे आफ इंडिया भाग ९ खंड १ पृष्ठ १

६. डा० धीरेन्द्र वर्मा ब्रजभाषा पृष्ठ ३४

७. वही, पृष्ठ ३४

१ 'कनउजी' की ओकारान्त' सम्बन्धी विशेषता के लिए उन्होने कहा है कि 'ओकारान्त' शब्द ग्रियर्सन के अनुसार 'ब्रज' के पूर्वी-क्षेत्रो में भी मिलते हैं। इस तर्क के उत्तर में कहा जा सकता है कि 'ब्रज' मे तो 'ओकारान्त रूप' केवल पूर्वी-भाग में 'कनउजी' के सीमान्त जिलो मे पाए जाते हैं। अत इन रूपो पर 'कनउजी' का प्रभाव हो सकता है। दूसरी ओर 'कनउजी' में 'ओकारान्त' की प्रवृत्ति सर्वत्र पाई जाती है। अत यह 'कनउजी' की ही विशेपता है।

२ 'गओ', 'लओ', 'दओ' और सहायक-क्रिया के भूतकाल के रूप 'हतो' 'व्रज' में भी मिलते हैं[1]। इसका भी उत्तर यह है कि यह रूप 'व्रज' में सर्वत्र न मिलकर केवल सीमान्त-जिलो में उपलब्ध होते हैं। अत ये प्रयोग भी 'कनउजी' से लिए हुए हो सकते है। 'जौ' और 'बौ' के लिए भी यही कहा जा सकता है।

३ 'ह' के लोप को उन्होने केवल 'कनउजी' की ही विशेषता नही मानी है। ठीक है, पर इस दृष्टि से 'कनउजी' 'व्रज' से प्रभावित तो नही कही जा सकती।

४ व्यञ्जनान्त शब्दो मे 'इ', 'उ' जुड जाने को उन्होने 'अवधी' का प्रभाव माना है, हो सकता है कि यह 'अवधी' का ही प्रभाव हो। पर इसका आशय यह तो नही हो सकता कि 'कनउजी' 'ब्रज' का उपरूप है।

यह वात अवश्य ही मानी जा सकती है कि 'कनउजी' और 'व्रज' सगी वहनें है।

प्राचीन काल से ही 'कान्य-कुब्ज' की भाषा ने आसपास के प्रदेशो पर प्रभाव डाला है। प्राकृत और अपभ्रश-काल में व्रज तथा वुन्देलखण्ड कन्नौज-साम्राज्य के अन्तर्गत थे। अत इन प्रदेशो की भाषाओ पर कन्नौज की प्राकृत और अपभ्रश ने पर्याप्त प्रभाव डाला। पर कन्नौज के साम्राज्य के नष्ट हो जाने तथा 'व्रज' के कृष्ण-भक्ति-आन्दोलन के

---

1 डा० धीरेन्द्र वर्मा : व्रज-भाषा, पृष्ठ ३३

कारण 'व्रज' ने 'बुन्देली' और 'कनउजी' पर आधिपत्य जमा लिया। 'व्रज-भाषा' से अधिक प्रभावित होते हुए भी 'कनउजी' की स्वतन्त्र-सत्ता तो है ही। पर 'व्रज', 'कनउजी' और 'बुन्देली' में इतना अधिक साम्य है कि तीनों को अलग-अलग भाषा न कहकर एक भाषा के तीन रूप कहना अधिक समीचीन है।

उपभाषाएँ

(१) इटावा की 'कनउजी'—

इटावा के दक्षिणी-भाग में चम्बल और यमुना का दोआब है। इस भूभाग में 'बुन्देली' की उपबोली 'भदौरी' बोली जाती है। जिले के शेष सभी भागों की भाषा 'कनउजी' है। इटावा के उत्तर पश्चिम में जिला मैनपुरी है, जिसकी भाषा 'व्रज' है। उत्तर में फर्रुखाबाद है और पूर्व में कानपुर। इन दोनों जिलों में 'कनउजी' बोली जाती है। इन जिलों से घिरे होने के कारण इटावा की 'कनउजी' पर 'व्रज' और 'भदौरी' का प्रभाव स्वाभाविक ही है। पर समग्र-रूप से देखने पर कहा जा सकता कि वहाँ की भाषा पर्याप्त मात्रा में विशुद्ध 'कनउजी' है[1]।

यहाँ की 'कनउजी' 'व्रज' और 'भदौरी' दोनों से प्रभावित है। जिस भू-भाग की भाषा अपेक्षाकृत 'व्रज' से अधिक प्रभावित है उस भाषा को 'पचरुआ' कहते हैं[2]। जहाँ अपेक्षाकृत 'भदौरी' का अधिक प्रभाव है, वहाँ की भाषा का कोई अलग से नाम नहीं है[3]। सीमा की दृष्टि से उसे इटावा के दक्षिणी-पश्चिमी भाग की 'कनउजी' कहना उपयुक्त होगा।

---

१. डा० ग्रियर्सन लिंग्विस्टिक सर्वे आफ इंडिया भाग ९, खंड १, पृष्ठ ३९०

२. वही, पृष्ठ ३९०

३. वही, पृष्ठ ३९०

(क) 'पचरुआ'—

सेंगर नदी द्वारा इटावा लगभग दो बराबर भागो मे विभाजित हो गया है। यह नदी उत्तर-पश्चिम से दक्षिण-पूर्व की ओर यमुना के समानान्तर बहती है। यदि चम्बल और यमुना के दोआब को छोड़ दिया जावे, तो सेंगर और यमुना के बीच के भाग के दक्षिणी-पश्चिमी और यमुना के पार का भाग, उत्तरी-पूर्वी—दो भाग हो जाते है। इस उत्तरी-पूर्वी भाग का स्थानीय नाम 'पचार' है तथा स्थानीय अविकारी यहाँ की भाषा को 'पचरुआ' कहते है। 'पचरुआ' पर दक्षिणी-पश्चिमी भाग की भाषा की अपेक्षा 'ब्रज' का प्रभाव अधिक है और 'भदौरी' का कम[1]।

'पचरुआ' की कुछ स्थानीय विशेषताएँ ये हैं —

१ कुछ ऐसे शब्द जो आदर्श 'कनउजी' मे निरनुनासिक है, यहाँ सानुनासिक हो जाते हैं। उदाहरणार्थ—'कें', 'कों', 'सें', 'तें', 'बाँय'।

२ व्यजनो का समीकरण हो जाता है—'परदेश', 'पद्देस'[2],

३ वहाँ के लिए इस स्थान की भाषा मे 'जुआ', शब्द पाया जाता है।

४ 'ई', 'इउ' तथा 'ऊ' के लिए यहाँ 'जू' तथा 'वू' पाया जाता है। 'जू' और 'वू' के विकारी रूप 'जा' और 'वा' हैं।

५ कर्त्ताकारक का चिह्न 'नें' 'भदौरी' से प्रभावित है[3]।

६ पूर्वकालिक क्रिया 'कें' 'भदौरी' से प्रभावित है[4]।

(ख) दक्षिणी-पश्चिमी इटावा की 'कनउजी'—

'पचरुआ' और दक्षिणी-पश्चिमी भाग की बोली मे अन्तर केवल

---

१ डा० ग्रियर्सन लिंग्विस्टिक सर्वे आफ इण्डिया भाग ९, खड १, पृष्ठ ३९०

२. वही, पृष्ठ ३९०

३ वही, पृष्ठ ३९०

४ वही, पृष्ठ ३९०

इतना ही है कि 'बुन्देली' की उपभाषा 'भदौरी' का इन पर अपेक्षाकृत अधिक प्रभाव है[1]।

अन्य पुरुष (सर्वनाम) के विकारी रूप 'वा' का प्रयोग यहाँ होता है, 'वा' का नहीं। फलत कर्त्ताकारक के रूप 'वह' के साथ-साथ 'वा' का भी प्रयोग होता है। भूतकाल की अकर्मक क्रिया के लिये भी कर्त्ताकारक की विभक्ति, 'ने' का प्रयोग यहाँ होता है। जैसे—'अच्छे लडिका ने चलो'। वस्तुत संस्कृत के मुहावरा 'तेन चलितम्' का ही यह रूप है[2]

(२) शाहजहाँपुर की 'कनउजी'—

हरदोई और खेरी जिले के पश्चिम मे जिला शाहजहांपुर स्थित है। यहा की भाषा आदर्श 'कनउजी' से बहुत ही अधिक साम्य रखती है और वस्तुत इसकी बहुत ही कम स्थानीय विशेषताएँ हैं[3] —

१ आदर्श 'कनउजी' मे कर्म तथा सम्प्रदान-कारक का चिह्न 'को' है, पर यहाँ की 'कनउजी' मे 'का' है। उदाहरण—'हमका दइदेउ'।

२ आदर्श 'कनउजी' मे अधिकरणकारक का चिह्न 'मे' है, पर इसका चिह्न 'मा' और 'महियाँ' है।

३ 'उइ' के स्थान पर 'आहि'[4] का प्रयोग खेरी की 'अवधी' के प्रभाव के कारण हो सकता है।

४ भूतकाल की अकर्मक-क्रिया का प्रयोग भी आदर्श 'कनउजी' से नितान्त भिन्न है—'लरिका ने चलो'।

(३) पीलीभीत की 'कनउजी'—

शाहजहाँपुर के उत्तर मे जिला पीलीभीत है। पास ही मे 'ब्रज-

---

१. ग्रियर्सन : लिंग्विस्टिक सर्वे आफ इंडिया भाग ६, खंड १, पृष्ठ ३६२
२ वही, पृष्ठ ३६२
३ वही, पृष्ठ ३६८
४ वही, पृष्ठ ३६८

भाषा' बोले जानेवाले जिला बरेली के कारण यहाँ की 'कनउजी' 'ब्रज' से प्रभावित हैं। यहाँ की भाषा मुख्य-रूप से 'कनउजी' है, पर कही-कही विकल्प से 'ब्रज' के रूप भी इसमे मिल जाते हैं। उदाहरणार्थ 'कनउजी' 'थो' का प्रयोग बडा ही व्यापक है, पर कही-कही 'ब्रज' का रूप 'हो' भी देखने को मिलता है। इसी प्रकार के अपवादो को छोडकर यहाँ की बोली ठीक वही है, जो शाहजहाँपुर की [1]।

(४) सीमान्ती 'कनउजी'—

(क) हरदोई की 'कनउजी'—

जिला हरदोई गगा के बाँये किनारे शाहजहाँपुर के पूर्व मे स्थित है। अवध का केवल यही एक ऐसा पश्चिमी जिला है, जिसकी भाषा 'अवधी' न होकर 'कनउजी' है[2]। यद्यपि स्थानीय अधिकारी यहाँ की भाषा को तीन-चार प्रकार की बतलाते हैं, पर यह अन्तर 'अवधी' के मिश्रण के आधार पर ही है[3]। इस जिले के पूर्व मे उन्नाव तथा लखनऊ और उत्तर मे खेरी है, जिन सबकी भाषा 'अवधी' है और इसीलिये यह स्वाभाविक है कि स्थानीय 'कनउजी' मे मिश्रण हो जावे। यह मिश्रण बहुत थोडा है। हाँ, सडीला तहसील मे बहुत अधिक है।

यहाँ की 'कनउजी' की स्थानीय विशेषताएँ ये है —

१ 'अकारान्त' पुल्लिग शब्दो के 'अकारान्त' कर देने की इसमे प्रधान-प्रवृत्ति है। उदाहरणार्थ—'भरतु', 'खेतु', 'एकु' और 'हमु'।

२ व्यजनान्त-शब्दो का 'इकारान्त' रूप मे प्रयोग की भी यहाँ बलवती प्रवृत्ति है। यह बात अवश्य है कि यह यहाँ की मुख्य विशेषता

---

१ डा० ग्रियर्सन · लिग्विस्टिक सर्वे आफ इण्डिया भाग ६, खण्ड १, पृष्ठ ३६८

२ वही, पृष्ठ ३६४

३ वही, पृष्ठ ३६२

है, पर शाहजहांपुर, पीलीभीत, कानपुर सभी स्थानों में यह किसी न किसी रूप में अवश्य पाई जाती है।

३ 'उसे' के स्थान पर 'तेहि' तथा अधिकरण कारक 'परदेसै' ऐसे प्रयोग हैं जिन पर 'अवधी' का प्रभाव है।

४ 'अवधी' के प्रभाव के कारण 'लगो' का 'लागो' तथा 'में' का 'मा' रूप यहां मिलता है।

(ख) पूर्वी हरदोई (संडीला) की भाषा—

तहसील संडीला तीन ओर से उन्नाव, लखनऊ तथा सीतापुर जिलों से घिरी है, जिनकी भाषा 'अवधी' है। इसी कारण 'अवधी' ने यहां की भाषा को बहुत अधिक प्रभावित किया है और इस प्रकार 'अवधी' का मिश्रण यहां सर्वाधिक है। पर यहा की भाषा पर कुछ प्रभाव 'कनउजी' ने भी अवश्य डाला है[1]।

'आकारान्त' पुल्लिंग के संज्ञा, विशेषण तथा कृदन्तों का 'आकारान्त' रूप ही बना रहता है, आदर्श 'कनउजी' की भांति 'ओकारान्त' नहीं होता। 'हतो' कनउजी-रूप है पर 'अवधी' के प्रभाव के कारण यहां 'हता' हो जाता है।

यहां की भाषा के कुछ रूप इस प्रकार हैं —

आदर्श 'कनउजी'	संडीला की भाषा
'गओ'	'गा', 'गवा'
'दओ'	'दीन्ह'
'कहन लगो'	'कह लाग'[2]

(ग) कानपुर की 'कनउजी'—

इटावा, फर्रुखाबाद, उन्नाव, फतेहपुर, हमीरपुर और जालौन जिलों

---

१. डा० ग्रियर्सन: लिंग्विस्टिक सर्वे आफ इंडिया भाग ९, खंड १, पृष्ठ ४११

२. वही, पृष्ठ ४११

'कनउजी का स्थूल व्याकरण'

सज्ञा की रूपरचना—'कनउजी' मे सज्ञा के मुख्यत दो ही रूप होते हैं—मूल तथा विकारी। कुछ सज्ञाओ मे मूल-रूप के एक वचन के रूप से वहुवचन का रूप भिन्न होता है, पर ऐसी सज्ञाएँ बहुत कम ही हैं।

सज्ञा के विविध रूप—

	पुल्लिग		स्त्रीलिग	
	ह्रस्वान्त	दीर्घान्त	ह्रस्वान्त	दीर्घान्त
एक वचन				
कर्त्ता	घर, घरु	जनो	बात	घोडी
विकारी	घर, घरु	जनो	बात	घोडी
बहु वचन				
कर्त्ता	घर, घरु	जने	बातैं	घोडी
विकारी	घरन, घरनु घरनि	जनेन	वातन	घोडिन

मूलरूप एकवचन—हिन्दी अकारान्त-सज्ञा 'कनउजी' मे मूल रूप एक वचन मे 'ओकारान्त' हो जाते हैं और इसमे 'ब्रज' की 'औकारान्त' सज्ञाओ का नितान्त अभाव है।

मूलरूप वहुवचन—'ओकारान्त' सज्ञाओ के वहुवचन रूप मे 'ओ' के स्थान पर 'ए' हो जाता है[1] जनो>जने, काँटो>काँटे। पर व्यजनान्त स्त्रीलिग सज्ञाओ के अन्त मे ऐं जोडा जाता है—ईंट>ईंटैं[2]।

विकारी-रूप एक वचन—'ओकारान्त' सज्ञाओ मे 'ओ' के स्थान पर 'ए' हो जाता है, जैसा कि मूल रूप वहुवचन मे होता है—घूरो>घूरे। उदाहरण—'कूरा घूरे मैं डारि आवो'।

---

१. डा० धीरेन्द्र वर्मा. ब्रज-भाषा, पृष्ठ ४८

२ वही, पृष्ठ ४८

विकारी रूप बहुवचन—व्यंजनान्त संज्ञाओं में 'अन्' जोडकर विकृत रूप बहुवचन बनता है[1]। दाम्>दामन्, बात>बातन्, खेत्>खेतन्।

लिंग—'कनउजी' में संज्ञा, सर्वनाम तथा विशेषण के स्त्रीलिंग तथा पुल्लिंग दो ही रूप होते हैं। छोटे-छोटे जानवर और पतिंगों के सम्बन्ध में लिंग के किसी निश्चित सिद्धान्त पर आधारित रूप नहीं होते[2]। 'जुगनू' 'झिंगुरी' स्त्रीलिंग हैं जबकि 'सारस' और 'बगुला' पुल्लिंग।

प्राणियों की द्योतक संज्ञाओं के सहगामी स्त्रीलिंगरूप बनाने के लिए व्यंजनान्त संज्ञाओं में 'इन्' प्रत्यय लगाया जाता है—जाट्>जाटिन। 'अकारान्त' संज्ञाओं में 'अ' के स्थान पर 'ई', 'ईकारान्त' संज्ञाओं में 'ई' के स्थान पर 'इन्' जोडकर पुल्लिंग से स्त्रीलिंग रूप बनाए जाते हैं—लडिका>लडिकी, धोबी>धोबिन।

वचन—आदर्श-हिन्दी की तरह 'कनउजी' में भी दो ही वचन होते हैं—एक वचन और बहुवचन। एक वचन से बहुवचन बनाने की प्रक्रिया का उल्लेख संज्ञा के मूल और विकारी-रूपों के विवेचन के प्रसंग में किया जा चुका है। 'कनउजी' में आदरार्थ विशेषण और क्रिया के बहु-वचन के रूप एक वचन की संज्ञा के साथ भी प्रयोग में लाये जाते हैं। 'कनउजी' में बडी ही महत्त्वपूर्ण बात यह है कि इसमें सर्वनाम के बहु-वचन के रूपों का प्रयोग सर्वथा एक वचन के लिए भी होता है। एक वचन के रूपों का प्रयोग तो अब बच्चों अथवा समाज के निम्न-स्तर के लोगों के लिए ही रह गया है।

सर्वनाम—

सर्वनाम की रूपरेखा निम्न प्रकार है—

पुरुष वाचक सर्वनाम

एक वचन	उत्तम पुरुष	मध्यम पुरुष	अन्य पुरुष
कर्त्ता	'मैं'	'तू,' 'तै', 'तैं', 'तुइ'	'वह', 'यहि', 'उहि' 'वा' 'वउ', 'उओ', 'ऊ'

1. डा० धीरेन्द्र वर्मा : ब्रजभाषा पृष्ठ २८ 2. वही, पृष्ठ ४८

विकारी	'मो'[१]	'तो'[२]	'उहि', 'वहि', 'वा', 'वा'
कर्म, सम्प्रदान	'मोहि'	'तोहि', तोय'[3]	'उसै'
सम्बन्ध	मेरो, मोरी, 'मेरी', 'मोरी'	तेरो, तेरी, तोरो, तोरी	

बहुवचन

कर्त्ता	'हमु', 'हम'	'तुम' 'तुम्ह'[४]	'वै', 'वै' "वे ' 'वे'
विकारी	'हमु', 'हम'	'तुम'	'उन'
कर्म, सम्प्रदान	'हमैं'	'तुम्हैं', 'तुमैं'', 'तुमहि'	'उन्हैं' 'उनै'
सम्बन्ध	'हमारे', 'हमारो' 'हमारे', 'हमरे', 'हमरो', 'हमरे'	'तुमारे', 'तुम्हारो' 'तुम्हारे', 'तुमारो' 'तुमारो',	

निकटवर्ती निश्चयवाचक सर्वनाम—'कनउजी' मे ये रूप निम्न प्रकार से पाये जाते है —

कर्त्ता, एक वचन—'यहु', 'यिहु', 'इहु, 'जउ', 'जहु', 'जू'[५] 'इआ,[६]' 'इओ'।

विकारी रूप—'जा', 'या', 'ई', 'एहि', 'जाहि', 'ज्याहि'।

कर्म, सप्रदान—'इसै', 'जाय'।

कर्त्ता, वहुवचन—'जै', 'जइ'।

---

१ डा० धीरेन्द्र वर्मा : व्रज-भाषा पृष्ठ ५५

२ वही, पृष्ठ ६७

३ वही, पृष्ठ ६७

४ वही, पृष्ठ ६७

५ इटावा में मिलता है।

६ डा० धीरेन्द्र वर्मा व्रज-भाषा पृष्ठ ४७२

विकारी-रूप—'इन'

कर्म, सम्प्रदान—'इन्हें', 'इनै' 'याहि', 'जाहि'।

सम्बन्ध-वाचक-सर्वनाम —

कर्त्ता कारक, एक वचन—'जो', जौन', 'जौनु', 'जउन', 'जउनु'।

विकारी-रूप—'जेहि', 'जा'।

कर्म, सम्प्रदान—'जिसै'।

कर्त्ता, बहुवचन—'जो', 'जौन', 'जौनु', 'जउन', 'जउनु'।

विकारी-रूप—'जिन'।

कर्म, सम्प्रदान—'जिन्हें', 'जिनै', 'जिनइ', 'जिनहिं'।

प्रश्न-वाचक-सर्वनाम—'कौन'

कर्त्ता, एक वचन—'कौन', 'कौनु', 'कउन', 'कउनु', 'को'।

विकारी-रूप—'केहि', 'का'।

कर्म, सम्प्रदान—'किसै'।

कर्त्ता, बहुवचन—'को', 'कौन', 'कौनु', 'कउन', 'कउनु'।

विकारी-रूप—'किन'।

कर्म, सम्प्रदान—'किन्हें', किनै।

अनिश्चय-वाचक सर्वनाम—

कर्त्ता एक वचन—'कोई', 'कोउ', 'कौनौ', कउनौ'।

विकारी-रूप—'कौनौ', 'कउनौ', 'किसऊ'।

विकारी-रूप' बहुवचन—'किनऊ'।

पर-सर्ग.—

कर्त्ता—नें', 'नै'।

कर्म, सम्प्रदान—कों' 'का' कौं', 'क',[1] 'कउ',[2] 'कहा'[3]।

---

१ पूर्वी इटावा में।

२ शाहजहाँपुर में।

३. कानपुर में।

अधिकरण—'मैं', 'पै', 'मा',[1] 'मह', 'महिआँ',[2] 'मइहाँ'।

करण तथा अपादान—'से', 'सैं', 'ते', 'तें', 'सन',[3]।

सम्बन्ध—'को', 'की', 'के'।

केवल भूतकाल मे सकर्मक धातु के कर्त्ता के पश्चात् ही 'नैं' परसर्ग आता है। 'कनउजी' मे 'कौ' रूप साधारणत प्रयोग मे आता है, पर शाहजहाँपुर मे यही 'कौ' 'कउ' का रूप धारण कर लेता है। हरदोई तथा कानपुर जिलो मे अवधी-रूप 'का' भी मिलता है और कानपुर तथा शाहजहाँपुर मे इसके लिए कही-कही 'कइहाँ' या 'कहिआँ' रूप भी मिल जाते हैं। शाहजहाँपुर, हरदोई और कानपुर मे अधिकरण के लिए साधारणत 'मा' प्रचलित है पर कही कही 'महिआ' या मइहा भी प्रयुक्त होते है। कभी कभी आवश्यकतावश 'मैंको' 'पैसें', 'मैंते' आदि सयुक्त-परसर्गों का प्रयोग भी पाया जाता है[4]।

क्रिया

क्रिया की काल-रचना मे दो प्रकार के रूप पाये जाते है। पहला प्रकार तो वह है जिसमे पुरुष का अर्थ क्रिया के रूप मे सन्निहित रहता है और दूसरा प्रकार वह जिसमे पुरुष का भाव क्रिया के रूप मे नही सन्निहित रहता, अर्थात् कृदन्ती काल[5]। यह प्रवृत्ति न केवल 'कनउजी' की ही है वरन् सभी आधुनिक भारतीय आर्य-भाषाओ की है।

'व्रज' के समान 'कनउजी' मे भी मूलकाल तीन हैं—१ वर्तमान-निश्चयार्थ। २ भविष्य-निश्चयार्थ। ३ आज्ञार्थ। कालरचना मे कृदन्ती रूपो का भी योग रहता है और ये दो प्रकार के हैं—१ वर्तमान-

---

१ शाहजहाँपुर, हरदोई और कानपुर में।

२ 'महिआँ' या 'मइहाँ' का प्रयोग कानपुर में कहीं कहीं होता है।

३ यह प्रयोग केवल कानपुर और हरदोई में होता है।

४ डा० धीरेन्द्र वर्मा . व्रज-भाषा पृष्ठ ८७।

५ वही, पृष्ठ ६४।

कालिक कृदन्त २. भूतकालिक कृदन्त। ये कृदन्तीरूप विशेषण की भाँति भी प्रयुक्त होते हैं। इनके अतिरिक्त क्रियार्थक-संज्ञा और पूर्वकालिक-कृदन्त के पृथक्-पृथक् रूप होते हैं[1]।

वर्तमान निश्चयार्थ के रूप— चलनो'

	एक वचन	बहु वचन
उत्तम पुरुष	चलउँ	चलैं
मध्यम पुरुष	चलै	चलौ
अन्य पुरुष	चलै	चलैं

भविष्य-निश्चयार्थ—इस काल में 'ब्रज' तथा 'खड़ीबोली' के रूपों में 'ग' प्रत्यय लगाकर तथा अवधी में 'ब' प्रत्यय के योग से रूप रचना होती है। 'कनउजी' में इन प्रत्ययों का योग न होकर 'ह' प्रत्यय लगाया जाता है। 'ग' प्रत्यय के रूपों में लिंग-भेद से अन्तर पड़ता है पर 'ह' प्रत्यय के रूपों में नहीं। भविष्य-निश्चयार्थ के रूप इस प्रकार हैं[2]—

	एक वचन	बहु वचन
उत्तम पुरुष	'चलिहौं'	'चलिहैं'
मध्यम पुरुष	'चलिहै'	'चलिहौ'
अन्य पुरुष	'चलिहै'	'चलिहैं'

आज्ञार्थ—इस काल में मध्यम पुरुष एकवचन के रूप धातुओं के समान ही चलते हैं तथा बहुवचन में 'औ', प्रत्यय लगता है[3]।

	एक वचन	बहुवचन
मध्यम पुरुष	'चलु', 'चल'	'चलौ'
अन्य पुरुष	'चलै'	'चलैं'

१ डा० धीरेन्द्र वर्मा, ब्रजभाषा पृष्ठ ६४।
२ वही, पृष्ठ ६४।
३ डा० धीरेन्द्र वर्मा: ब्रजभाषा पृष्ठ ६८

क्रिया 'होनो'[1] के रूप—

वर्तमान-निश्चयार्थे—	एक वचन	बहुवचन
उत्तम पुरुष	'हौं'	'है'
मध्यम पुरुष	'है'	'हौ'
अन्य पुरुष	'है'	'हैं'

भविष्य-निश्चयार्थ—

उत्तम पुरुष—	'हुइहौं'	'हुइहैं'
मध्यम पुरुष—	'हुइहै'	'हुइहौ'
अन्य पुरुष—	'हुइहै'	'हुइहैं'

आज्ञार्थ—

मध्यम-पुरुष	'हो'	'होउ'

कृदन्ती काल—'कनउजी' मे क्रिया की रूप रचना मे कृदन्तो का अत्यधिक महत्त्व है। यहाँ कुछ कृदन्ती-रूप प्रस्तुत किए जाते हैं—

	एक वचन	बहुवचन
भूत-सभावनाथ	'होतो'	'होते'
भूतकालिक-कृदन्त	'हतो'	हते' (सभी पुरुषो मे पुल्लिग रूप)
	'हती'	'हती' (सभी पुरुषो मे स्त्री लिंग रूप)

अधिकतर कानपुर तथा कही-कही शाहजहाँपुर तथा हरदोई मे भूतकालिक कृदन्त के निम्नलिखित रूप भी मिलते हैं[2]—

स्त्री लिग तथा पुल्लिग दोनो मे

	एक वचन	बहुवचन
उत्तम पुरुष	'रहौं'	'रहइ'

१ डा० धीरेन्द्र वर्मा, व्रजभाषा, पृष्ठ १०७

२ वही, पृष्ठ १०६

मध्यम-पुरुष	'रहइ'	'रहउ'
अन्य-पुरुष	'रहइ'	'रहइ'

निम्नलिखित रूपों का प्रयोग भूतनिश्चयार्थ के अर्थ में होता है—

	एक वचन	बहुवचन
पुल्लिंग	'भओ'	'भए'
स्त्री लिंग	'भई'	'भई'

पूर्वकालिक-कृदन्त—'कनउजी', मे व्यंजनान्त धातुओं में—'इ' प्रत्यय तथा 'आकारान्त' एवं 'ओकारान्त' धातुओं में—'य' जोड़कर पूर्वकालिक-कृदन्त बनते हैं। जैसे—'चलि,' तथा 'खाय'। हरदोई तथा कानपुर में पूर्वकालिक 'कर' का 'कै' रूप उपलब्ध होता है।

गीत तथा कहावतें आती हैं[१] । लोक-गीत अँग्रेजी शब्द 'फोक-साग' का हिन्दी रूपान्तर है । अत लोक-वार्ता के अन्तर्गत आने के कारण आदि-मनुष्य अथवा अर्द्ध-सभ्य-मनुष्य के हृदय से नि सृत स्वाभाविक भावो की अभिव्यक्ति को 'लोक-गीत' कहा जा सकता है । शिक्षित तथा सभ्य मनुष्य की सगीतमयी तथा कलापूर्ण अभिव्यक्ति को कविता कहा जाता है, 'लोक-गीत' नही । शिक्षा और सभ्यता की लोक-गीत से स्वाभाविक शत्रुता है और इस लोक-वाणी में मस्तिष्क नही वरन् हृदय है ।

लोक-गीत अशिक्षित ग्रामीण जनता के भावुक तथा सवेदनशील हृदय के वे स्वाभाविक उद्‌गार है जो सगीत की बलवती धारा के रूप मे प्रवाहित हो उठते हैं । सगीत इनमें प्राण-प्रतिष्ठा करता है । इसी से कहा जाता है कि हृदय के उद्रेक से युक्त कला पूर्ण-सगीत ही लोक-गीत है ।

'लोक-गीत' मे छन्द का आग्रह नही होता और छन्द के स्थान पर लय ही उसमे माधुर्य और रमणीयता की सृष्टि करती है । अत सगीत लोक गीतो की अपरिहार्य आवश्यकता है । इन लोक-गीतो को पढने मे वह आनन्द नही आता जो सुनने में । जब हम खेतो में काम करती हुई किसी ग्राम-बाला या चक्की पीसती हुई किसी युवती के कोमल एव मधुरकण्ठ से नि सृत सगीतमय भावो को सुनते हैं तो क्षण भर के लिए हमारा हृदय भी साधारणीकरण की अवस्था में उसी के साथ झूमने लगता है और हमें ब्रह्मानन्द सहोदर की प्राप्ति होती है । लोक-गीत कण्ठ मे गाने के लिए और हृदय से आनन्द लेने के लिए है । आकाश में भरा हुआ शब्द जब गीत के रूप मे प्रकट होता है तब मानव के चिरजीवी भाव साकार हो उठते हैं[२] । काव्य को रसात्मक-वाक्य

---

१ Encyclopaedia Britainca Vol. IX Page. 446

२ धीरे वहो गगा, ग्रामुख-ग्रग्रवाज । (पृष्ठ ६ देवेन्द्र सत्यार्थी)

कहने में विभिन्न विद्वान् एक मत नहीं है, पर लोक-गीतों की रसात्मकता पर सभी विद्वानों की स्वीकृति है। लोकगीतों में रस के आधिक्य के कारण यही कहना पडता है कि ये मानो रस के कभी न छीजनेवाले सोते हैं। इनकी एक-एक पंक्ति में, एक-एक शब्द में, रस व्यंजित होता है।

लोकगीतों में जन-जीवन के हर्ष और विषाद, आशा और निराशा सुख और दुख की अभिव्यक्ति होती है। इनमें कल्पना भी अपना काम करती है, रस-वृत्ति और भावना भी और नृत्य की हिलोर भी, पर ये सब खाद है। लोक गीत हृदय के खेत से उगते है। सुख के गीत उमंग के जोर से जन्म लेते हैं और दुख के गीत तो खौलते हुए लहू मे पनपते है और आंसुओं के साथी बनते हैं[1]।

लोकगीतों की कई विशेषताएं है। सबसे बडी विशेषता है इनकी स्वाभाविकता मे सुसस्कृत शृगार के स्थान पर जगल का-सा प्राकृतिक-सौन्दर्य का होना। इनका प्रकृति से सीधा सम्बन्ध है। ये गीत प्रकृति के उद्गार है। इनमे अलकार नहीं, केवल रस है। छन्द नहीं, केवल लय है, लालित्य नहीं केवल माधुर्य है। प्रकृति जब तरग मे आती है, तब वह गान करती है। उसके गीतो मे हृदय का इतिहास इस प्रकार व्याप्त रहता है, जैसे प्रेम में आकर्षण, श्रद्धा मे विश्वास और करुणा मे कोमलता। प्रकृति के गान में मनुष्य-समाज इस प्रकार प्रतिबिम्बित होता है जैसे कविता मे कवि, क्षमा में मनोबल और तपस्या मे त्याग। प्रकृति सगीतमय है। ग्रह-गण एक नियति कक्ष मे फिरकर उसी सगीत का कोई स्वर सिद्ध कर रहे हैं। झरनों का अविराम-नाद, पत्तो का मर्मर-ध्वनि, चचल-जल का कल-कल, मेघ का गर्जन, पानी का छमाछम बरसना, आधी का हाहाकार, कलियो का चटकना, विक्षुब्ध-समुद्र का

1 सत्यार्थी, धरती गाती है—पृष्ठ १०७।

महारव, मनुष्य की भिन्न-भिन्न भाषाएँ और विचित्र उच्चारण, खग, पशु, कीट, पतग आदि की बोलियाँ, यह सब उसी सगीत के मन्द्र और तार, स्वर और लय हैं। वज्रपात काम है और नदियो का प्रवाह मूर्छना। लोकगीत प्रकृति के उसी महासगीत के अश हैं[१]।

'लोकगीतो' की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है। पण्डितो की बँधी प्रणाली पर चलनेवाली काव्यधारा के साथ-साथ सामान्य अपढ जनता के बीच एक स्वच्छ और प्राकृतिक भाव-धारा भी गीतो के रूप में चलती रहती है[२]। लोकगीत जीवन्त-काव्य है। यह कभी मिटता नहीं, पर जैसे-जैसे सामान्य जनभाषा में परिवर्तन होता जाता है वैसे-वैसे ही इन गीतो की भाषा भी बदलती जाती है, पर भाव वही बने रहते है। इसीसे कहा जा सकता है कि वस्तुत लोकगीत न तो पुराना ही होता है और न नया ही। यह उस जगली पेड के समान है जिसकी जडे भूत की गहराई मे हैं और जो नित्य नवीन शाखाओ, पत्तियो और फलो को उत्पन्न करता है[३]। काल का प्रभाव इन पर पडता अवश्य है, परन्तु इससे वाह्य रूप मे ही परिवर्तन होता है। भाषा का आवरण धीरे-धीरे वदल जाता है, पर भीतरी प्राण-तत्त्व मे कोई अन्तर नही होता[४]।

लोक-गीतों का महत्त्व

लोकगीत साहित्य की अमूल्य एव अनुपम निधि है। इनमे हमारे समाज की एक-एक रेखा, सामयिक-वोध की एक-एक अवस्था, सामूहिक विजय-पराजय, प्रकृति की गतिविधि, वृक्ष, पशु-पक्षी और मानव के

---

१ रामनरेश त्रिपाठी कविता कौमुदी-ग्रामगीत पृष्ठ ६६

२ रामचन्द्र शुक्ल . हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ ७२४-२५

३ Encyclopaedia Britanica Vol IX Page 448 (Ed XIV.)

४. सूर्यकरण पारीक राजस्थानी-लोकगीत, पृष्ठ २।

पारस्परिक सम्बन्ध, बलि, पूजा, टोने-टुटके, आशा-निराशा, मनन और चिन्तन सबका बड़ा ही मनोहारी वर्णन मिलता है। अत इन लोकगीतों का बहुत अधिक महत्त्व है और वह इस प्रकार है —

१—साहित्यिक	२—ऐतिहासिक
३—सांस्कृतिक	४—धार्मिक तथा पौराणिक
५—नैतिक	६—भौगोलिक
७—आर्थिक	८—भाषा तथा भाषा-विज्ञान-संबंधी

१—साहित्यिक-महत्त्व—

यद्यपि लोकगीत सबल-भावों के सहज-उद्रेक होते हैं और उनमें गुण, दोष, अलंकार और छन्द के नियमों का पालन नहीं किया जाता तो भी वे साहित्य की कोटि में आते ही हैं। इनके सृजन में शास्त्रीयता पर बल नहीं दिया जाता तथापि इनमें कहीं-कहीं कला, रस-परिपाक और अलंकार के अच्छे उदाहरण मिल जाते हैं। अत साहित्यिक दृष्टि से भी इनका कम महत्त्व नहीं है। लोकगीत के साहित्यिक स्वरूप का वर्णन करते समय इस विषय पर विशद विवेचन किया जावेगा।

२. ऐतिहासिक-महत्त्व—

लोक-गीतों में इतिहास की प्रचुर-सामग्री भरी पड़ी है, जिनके सम्यक् अध्ययन से हमारे इतिहास की नई-नई खोजें हो सकती हैं। उन गीतों में स्थानीय इतिहास का पुट बड़ा गहरा होता है और जिनके उद्घाटन से हमारे विलुप्त अथवा विस्मृत इतिहास पर पूर्ण प्रकाश पड़ता है। 'आल्हा-गीतों' में ऐतिहासिक सामग्री मिलती है और 'गोपीचन्द-भर्थरी' आदि गीतों के लिये भी यही बात है। इनके अतिरिक्त कथाओं को लेकर अनेक गीत हैं, जिनसे इतिहास पर धुंधला प्रकाश पड़ता है।

३. सांस्कृतिक-महत्त्व—

लोक-गीतो में सामाजिक अवस्था का वर्णन पर्याप्त मात्रा मे उपलब्ध होता है। समाज के अध्ययन की बहुमूल्य सामग्री इन गीतो मे उपलब्ध है। इतिहास के बडे-बडे ग्रथो मे राजनीतिक युद्धो और सन्धियो का वर्णन भले ही मिल जावे परन्तु किसी जाति की संस्कृति जानने के लिये उस जाति के लोकगीतो का अध्ययन आवश्यक हो जाता है। भारतीय लोक-जीवन का सफल चित्रण यहाँ के लोकगीतो के बिना अध्ययन के नही हो सकता[१]। इन लोकगीतो मे मनुष्य के रहन-सहन, आचार-विचार, खान-पान, रीति-रिवाज आदि का सच्चा चित्र मिलता है। इनका महत्त्व इसीलिए नही कि इनके सगीत और वर्ण्य-विषय मे जनता का वास्तविक जीवन प्रतिबिम्बित होता है, प्रत्युत इनमे नृ-विज्ञान के अध्ययन की प्रामाणिक एव ठोस सामग्री भी उपलब्ध होती है। मध्य-प्रदेश की 'करमा' जाति के एक गीत मे उल्लेख है कि यदि तुम मेरे जीवन की सच्ची कहानी जानना चाहते हो तो मेरे गीतो को सुनो[२]। लोकगीतो मे जन्मभूमि की गौरवशाली और यशस्वी आत्मा की पुकार निहित है। इनमें विशाल-सस्कृति का उज्ज्वल इतिहास अभिव्यक्त हुआ है। लोक-गीतो में विभिन्न सस्कारो का भी उल्लेख होता है। कनउजी लोक-गीतो में 'सास्कृतिक-चित्रण', अध्याय में इस पर विस्तारपूर्वक विचार किया जायगा।

१—No picture of India can convey more forcibly and clearly to our minds the manners and habits and psychological depth of her inner life than insight into these songs; Devendra Satyarthi—The Nest of singing words' Modern Review Sep 1934

२. वेरियर इलविन 'फोक सांग्स श्राफ मैकलहिल्स'—इन्ट्रोडक्शन पृष्ठ १६।

४ धार्मिक तथा पौराणिक महत्त्व—

प्रत्येक जाति में उसके धर्म और नियम-पालन के लिए एक विधान होता है। उसी के अनुसार वह जाति आचरण करती है। परन्तु लोक-जीवन में लोकगीतो की इतनी महत्ता है कि किसी भी जाति के ये गीत विधान से भी कही अधिक महत्त्वपूर्ण होते है[1]। इनमें व्रत, देवीदेवता पूजा आदि का उल्लेख होता है। इनके अध्ययन से ज्ञात होता है कि शिव, विष्णु, ब्रह्मा, इन्द्र, सूर्य आदि देवताओं को लोग किस प्रकार पूजते है और साथ ही साथ इस बात की भी हमें सूचना मिलती है कि रहन-सहन और खान-पान ने भी धर्म का स्थान ले लिया है।

धार्मिक-जीवन के साथ पुराण-शास्त्र (माइथालाजी) के वर्णन की भी इन गीतो में कमी नही होती। कुछ गीतो में शिवजी के दूसरे विवाह और तुलसी के पार्वती की सपत्नी होने का उल्लेख मिलता है। हिन्दू-पुराण-शास्त्र के लिए ये दोनो नई कल्पनाएं है। सीता के सास-ननद द्वारा पीटे जाने, वन्ध्या होने के कारण निकाले जाने, राम के हल जोतने और सीता के फटे कपड़े पहनने का उल्लेख भी लोकगीतो में हुआ है। अत लोक-कवि की यह कल्पनाएँ भी मौलिक है।

५ नैतिक महत्त्व—

लोकगीतो में लोकोत्तर तथा दिव्य नैतिक-अवस्था का वर्णन मिलता है। सतीत्व का इनमे बडा ही सुन्दर आदर्श उपस्थित किया गया है। स्त्रियों की 'किरिया' द्वारा परीक्षा और उसमें सती सिद्ध होना तो अनेक गीतो का प्रतिपाद्य-विषय है। स्त्री का पति, ससुर, ननद तथा जिठानी से क्या व्यवहार होना चाहिए, इसका अनेक गीतो में उल्लेख हुआ है। स्त्री को यदि असह्य प्रसव-पीड़ा होती है तो उसका कारण, पूज्य जनो का अनादर करना और यदि सुन्दर पुत्र का

1. फ्लेचर, १७०६ ई० में दिया गया एक भाषण।

वह जन्म देती हैं तो पूज्य लोगो के साथ सद्व्यवहार करना, बतलाया जाता हैं।

६ भौगालिक-महत्त्व—

भौगोलिक स्थिति का चित्रण भी हमें लोकगीतो मे उपलब्ध होता है। इनमें व्यापार के लिए 'परदेश' जाने और वहाँ से बारह वर्ष में आने का उल्लेख मिलता हैं। गीतो में बनारस की साडी, महोबा का पान, दिल्ली के वैद्य का स्थान-स्थान पर उल्लेख आता है। यह वास्तव मे आर्थिक-भूगोल है। भिन्न-भिन्न स्थानो का वर्णन किसी न किसी प्रसग में किया जाता है और आल्ह-खण्ड में कन्नौज, महोबा, दिल्ली, विठूर, नरवरगढ आदि नगरो तथा वेतवा, गगा आदि नदियो के नाम आते हैं। 'सोहर' तथा विवाहगीतो में मथुरा, अयोध्या, जनकपुर आदि नगरो के नाम का आना साधारण ही है।

७ आर्थिक-महत्त्व—

गीतो मे खाने के लिए वर्तन, पीने के लिए लोटा, केश-सज्जा के लिए कघी—सभी वस्तुएँ सोने की ही होती हैं। दूध से स्नान करने का उल्लेख तो साधारण सी बात है। ज्योनारो मे विभिन्न पक्वान्नो का वर्णन होता है, परन्तु दूसरी ओर कुछ गीतो में स्त्री को साधारण भोजन भी प्राप्त नही होता। इससे सिद्ध होता है कि तत्कालीन समाज की आर्थिक-दशा उन्नत थी और लोग धनधान्य से पूर्ण एव सुखी थे। परन्तु कही-कही रोटियो के भी लाले थे, यह भी कहा जा सकता है।

८ भाषा तथा भाषाविज्ञान सम्बन्धी महत्त्व—

भाषा की दृष्टि से जव हम लोक-गीतो का अध्ययन करते ह तो हमे ज्ञात होता हैं कि ये अमूल्य निधियो से भरे पडे है। इनकी भाषा जीवन्त होती है। यदि इनके कुछ मुहाविरे और उपादेय शब्द शिष्ट-भाषा में गृहीत हो जावे तो उनमे वहुत जीवन और वल आ जावे।

'हाथ हलाउत जात,' 'हँथिरिया पै आम जमाना,' 'हाँक लगाना' आदि मुहाविरे तथा 'निहुरना,' 'बिसूरना,' 'झखना', 'हूलना' आदि शब्दो का हिन्दी में स्थान मिलने से अभिव्यक्ति मे शक्ति आएगी। विभिन्न लोक-गीतो की भाषा की शब्दावली के ग्रहण करने से हमारी भाषा समृद्ध होगी। आज जो पारिभाषिक शब्दावली की समस्या है उसका भी बहुत कुछ समाधान हमारी बोलियो मे ही है। डा० वासुदेवशरण अग्रवाल का कथन है कि—प्रचण्ड शक्तिशालिनी हिन्दी भाषा की विभूति का विशाल मदिर जनपदीय भाषाओ को उखाड़कर नहीं बन सकता, वरन् इस पचायतनी प्रासाद की दृढ जगती मे सभी भाषाओ और बोलियो के सुगढ प्रस्तरो का स्वागत करना होगा[1]।

लोक-गीतो में आए हुए शब्दो की व्युत्पत्ति का पता लगाने पर भाषा-शास्त्र की अनेक गुत्थियाँ सुलझाई जा सकती है। इनमे व्यवहृत शब्दो के द्वारा हिन्दी के कुछ शब्दो के विकास की परम्परा को हम वैदिक-संस्कृत तथा प्राचीन आर्य-भाषा से जोड सकते है। बहुत से बोली के ऐसे शब्द है जो शिष्ट-हिन्दी मे नहीं मिलते। (उदाहरण के लिए जूना,[2] ईंडुरी,[3] कठेंगर[4] तथा पिलछुआ[5] ऐसे ही शब्द है।) इन शब्दो के अतिरिक्त भाषा के विकास तथा परिवर्तन के अध्ययन के लिए भाषा-विज्ञान में ग्रामीण भाषाओ की बहुत आवश्यकता होती है और लोकगीतो में ग्रामीण भाषा का प्रतिनिधि रूप मिलता है। अत भाषा-विज्ञान की दृष्टि से भी लोक-गीतो का बहुत बडा महत्त्व है।

इस प्रकार लोकगीतो का कई दृष्टियो से महत्त्व है। हमारी इन अमूल्य निधियो को शिक्षा और सभ्यता नाश कर देने के लिए तुली है।

---

१ डा० वासुदेवशरण, अग्रवाल,

२ जूना (रस्सी)

३. द्रुपद्

४. काष्ठागंध

५. प्लाक्ष

जब चक्की ही नही रहेगी और उसका स्थान आधुनिक आटा पीसने की मशीन ले लेगी तो फिर चक्की के गीतो को स्त्रियो के स्थान पर क्या मिस्त्री गायेगा ? इधर पाठशाले विभिन्न जातियो के गीतो को आत्मसात् किये ले रहे हैं और कन्या-पाठशालाएँ नीरस, लक्ष्यहीन, प्रभाव-रहित, निर्जीव और हृदय को स्पर्श न करनेवाली तुकबन्दियो के बदले कन्याओ से उनके मधुर उपदेश-प्रद और लय-युक्त गीतो को लेकर उन्हें विस्मृति के हवाले कर रही है। अब ऐसी स्थिति मे भी यदि हम गाफिल रहें तो हमारा सर्वनाश ही है। इसलिए लोक-गीतो की इस सक्रमणकालीन अवस्था मे हमे इनकी रक्षा के लिए सतत प्रयत्नशील हो जाना चाहिए। इनके सग्रह से हम अपने राष्ट्र की अमूल्य थाती की रक्षा कर सकेंगे।

कनउजी लोक-गीतों का सामान्य परिचय

सस्कार गीतो को छोडकर सामान्यतया अन्य सभी कनउजी लोक-गीत कथात्मक होते है। यह बात अवश्य है कि किसी गीत मे अत्यन्त लघु और किसी गीत मे बहुत लम्बी कथा होती है। कहने का आशय यह नही है कि सस्कार गीतो में कथा होती ही नही। हाँ, इतना अवश्य कहा जा सकता है कि बहुत थोडे ही कथात्मक सस्कार-गीत है। ईश्वर की वन्दना सम्बन्धी भजन, देवी के जस आदि भी कुछ गीत ऐसे होते हैं जिनमे किसी प्रकार की भी कथा नही होती।

कनउजी लोक-गीतो को समग्र रूप से देखने पर हम इस निश्चय पर पहुंचते हैं कि इनमे शृगार-रस की उतनी प्रधानता नही जितनी भोजपुरी, लोक-गीतो मे है। शृगार के भी अच्छे से अच्छे गीत उपलब्ध होते है, परन्तु उनकी सख्या बहुत थोडी है।

करुण-रस के गीतो का तो कनउजी मे बहुत ही बाहुल्य है, भाई और बहन का पारस्परिक प्रेम और हृदय को द्रवित कर देनेवाली

करुणा के जितने गीत कनउजी में हैं कदाचित् उतने अधिक गीत और किसी जनभाषा में नहीं मिलते। स्त्री की ससुराल में दुर्दशा, बाँझ स्त्री का नारकीय-जीवन तथा विधवा की असहाय अवस्था सम्बन्धी अनेक गीत उपलब्ध होते हैं। पूर्वी बोलियों में विषादान्त गीत भी मिलते हैं, परन्तु कनउजी में ऐसे गीतों का सर्वथा अभाव है। कुछ ऐसे भी गीत हैं जो पूर्वी-बोलियों के गीतों एवं वस्तु-कथा से बिलकुल मिलते हैं परन्तु अन्त में थोड़ा हेर-फेर हो जाता है। एक बाँझ से सम्बन्धित गीत है। अवधी और भोजपुरी में बाँझ काठ का बालक बनवाती है और उससे प्रार्थना करती है कि वह बोल कर माता के हृदय को प्रसन्न करे परन्तु काठ का बालक कहता है कि यदि मैं दैव का गढ़ा होता तो बोलकर सुनाता। इस प्रकार यह गीत विषादान्त है। परन्तु कनउजी में यही गीत प्रसादान्त रूप धारण कर लेता है। आगे सोहर गीतों में उसका उल्लेख किया गया है।

गीतों के आकार की दृष्टि से भी हमें बड़ी ही मनोरंजक विषमता मिलती है। इस प्रदेश का सबसे छोटे आकार का गीत 'बिरहा' है। इसमें केवल दो ही पंक्तियाँ होती हैं। दूसरी ओर हम देखते हैं कि इतने बड़े गीत भी होते हैं जो पन्द्रह-पन्द्रह दिन तक गाये जाने पर भी समाप्त नहीं होते। 'आल्हा,' 'ढोला' 'चन्दैना' आदि इन बड़े गीतों की कोटि में आते हैं। वस्तुतः इन गीतों को प्रबन्ध-गीत कहना चाहिए। कुछ संवादात्मक गीत भी कनउजी में मिलते हैं। इनमें नाटकीयता पर्याप्त-मात्रा में होती है। गीतों में काम करते समय या बेगार समय में एक पक्ष कुछ गाता है और फिर दूसरा पक्ष उसका उत्तर देता है।

यहाँ के कुछ गीतों में पंक्ति के आरम्भ तथा अन्त में कुछ ऐसे शब्द भी होते हैं जिनका गीत के अर्थ से कोई सम्बन्ध नहीं होता। ये गीत की स्वर-साधना में सहायक होते हैं। आरम्भ में 'कि एजू' या 'कि अरे रामा' और अन्त में 'हो हरी,' 'हो रामा' आदि लगा दिया जाता है। कनउजी

लोक-गीतो में वीभत्स और भयानक-रसो के गीतो का नितान्त अभावहै। सवसे अधिक गीत करुण-रस के मिलते हैं।

कनउजी लाक-गीतों के गायक—

कनउजी लोक-गीतो की सच्ची गायिकाएँ स्त्रियाँ है। ऐसी कोई भी स्त्री नहीं होती जो किसी उत्सव या सस्कार में सवके साथ गीत न गावे। प्रकृति ने स्त्रियो को मधुर कण्ठ दिया है, अत वे इसका सदुपयोग क्यो न करें ? स्त्रियाँ प्राय सामूहिक रूप से गीत गाती है। ऐसा कोई भी गीत नही है कि जिसे केवल एक स्त्री ही गावे। होली, फाग आदि ही कुछ ऐसे गीत होते है जिन्हे पुरुप सामूहिक रूप से गाते हैं। अन्यथा गीतो के विशेपज्ञ ही उन्हे गाते है और अन्य लोग सुनते हैं। आल्हा, ढोला आदि के गायक तो वहुत वडे विशेपज्ञ माने जाते हैं। उनको दूर-दूर से बुलाकर गायन का आयोजन होता है। कुछ ऐसे भी लोग होते है जिनकी भिक्षा-वृत्ति होती है। ये लोग गीत गाकर सुनाते है और भिक्षा प्राप्त करते हैं। खजडी, वीन या चिमटा आदि वाजो का ये लोग प्रयोग करते है। सामान्यतया स्त्री और पुरुप सभी के गीतो मे ढोलक, मजीरा, झीका आदि वाद्ययत्र प्रयोग मे लाये जाते हैं, परन्तु कुछ ऐसे गीत भी होते है जिन्हें विना वाजा के ही गाया जाता है। चक्की के गीत, निरवाही, रोपाई और कटाई के गीत इसी श्रेणी में आते हैं। देवी के गीत-गाते समयस्त्रियाँ नाचती भी हैं।

कनउजी लोक-गीतो का सक्षेप मे सामान्य परिचय यहाँ प्रस्तुत किया गया है। विस्तार से अगले अध्यायो मे इनका विवेचन किया जायगा।

द्वितीय अध्याय

(कनउजी लोक-गीतों का वर्गीकरण)

कनउजी लोकगीतों का वर्गीकरण

लोकगीतों के वर्गीकरण की पद्धति—

लोकगीतों के वैज्ञानिक अध्ययन के लिए उनका वर्गीकरण करना परमावश्यक है। गीतों के भेदों अथवा प्रकारों की विविधता के कारण वर्ग-विभाजन बड़ा ही कठिन हो जाता है। फिर भी कुछ निश्चित सिद्धान्तों के आधार पर यहां वर्गीकरण करने का प्रयत्न किया जाएगा। नीचे दिए गए सिद्धान्तों के आधार पर लोक-गीतों का वर्गीकरण किया जा सकता है —

१ रसानुभूति की प्रणाली से।

२ रागों की दृष्टि से।

३ कथानक के आधार पर।

४ अवसर की अनुकूलता की दृष्टि से।

१ रसानुभूति की दृष्टि से—लोकगीतों की सर्वप्रमुख विशेषता उनकी रसात्मकता है। उनमें प्रवाहित होनेवाली रस की अविरल धारा श्रोता तथा पाठक को साधारणीकरण की अवस्था में पहुंचा देती है। रस की प्रधानता की दृष्टि से रखकर विभिन्न रसों के अनुसार इनके विभाग अलग बनाये जा सकते हैं। रसों की संख्या दस है[1] और

---

१. प्राचीन काव्य-शास्त्रियों ने रस की संख्या ९ मानी है। पर हिन्दी में 'वात्सल्यरस' को भी मान्यता मिल चुकी है। अतः इस प्रकार रसों की संख्या दस हुई।

लगभग सभी रसो से पूर्ण लोकगीत पाए जाते है। अत इनके दस वर्ग वनाए जा सकते हैं।

२ रागो की दृष्टि से —सभी लोक-गीत गेय होते हैं और किसी न किसी राग में ही गाए जाते है। अत अनेक रागो के आधार पर समस्त लोक-गीतो का वर्गीकरण किया जा सकता है।

३ कथानक की दृष्टि से —शिष्ट-काव्य की भाँति लोक-गीतो के भी कथानक की दृष्टि से दो भाग किए जा सकते है —मुक्तक और प्रवन्ध। जिन लोक-गीतो की कथा अत्यन्त लघु और क्षीण होती है और जिनका प्रत्येक छद स्वतत्र होता है उन्हें हम मुक्तक की कोटि में रख सकते हैं। जिन गीतो में विस्तृत कथा के साथ ही साथ पूर्व से सम्वन्ध भी रहता है और प्रत्येक वस्तु और घटना का विस्तृत चित्रण होता है, उन्हें प्रवन्ध-गीत कहा जा सकता है। अत इस सिद्धान्त के आधार पर लोक-गीतो के दो वर्ग होते है।

४ अवसर की अनुकूलता की दृष्टि से —सभी लोक-गीत सभी अवसरो पर नही गाए जा सकते। जब कोई सस्कार होता है तो इस अवसर पर केवल सस्कार-गीत ही गाये जाते हैं। किसी व्रत अथवा पर्व के अवसर पर उसी व्रत अथवा पर्व के गीत गाये जाते है। जाति-गीत भी किसी विशिष्ट समारोह में ही पाये जाते है और इसी भाँति चक्की पीसने, रोपनी करने तथा मेले जाने के समय तत्सम्वन्धित काम-काज के गीत ही गाये जाते है। इस सिद्धान्त के आधार पर जो विभाजन किया जाता है, उसमें प्रत्येक गीत किसी न किसी वर्ग में अवश्य आ जाता है।

कनउजी लोक-गीतों का वर्गीकरण

उपर्युक्त सभी सिद्धान्तो के आधार पर 'कनउजी लोकगीतो' का वर्गीकरण किया जा सकता है। नीचे हम 'अवसर की अनुकूता' के अनुसार उन्हें छ वर्गों में वाँट सकते हैं —

१ संस्कार—गीत   २ ऋतु-गीत
३ व्रतगीत   ४ पर्व-गीत
५ काम-काज करते समय गाए जानेवाले गीत
६ जाति-गीत

इन वर्गों पर विस्तार से कहने के पूर्व अन्य विद्वानों के लोकगीतों के वर्गीकरण पर विचार करना अप्रासंगिक न होगा।

पं० रामनरेश त्रिपाठी का वर्गीकरण—हिन्दी के लोकगीतों के क्षेत्र में सर्वप्रथम तथा सर्वप्रमुख कार्य करनेवाले पं० रामनरेश त्रिपाठी हैं। उन्होंने लोकगीतों को ११ वर्गों में बाँटा है[1] —

१—संस्कार-सम्बन्धी-गीत
२—चक्की और चरखे के गीत
३—धर्म गीत।
४—ऋतु सम्बन्धी गीत।
५—खेतों के गीत।
६—भिखमंगों के गीत।
७—मेले के गीत।
८—जाति-गीत।
९—वीर-गाथा।
१०—गीत-कथा।
तथा ११—अनुभव के वचन।

उपरोक्त विभाजन पर विचार करने से स्पष्ट हो जाता है कि यह वर्गीकरण वैज्ञानिक नहीं है क्योंकि धर्म-गीत और संस्कार-गीत को एक ही वर्ग में रखा जा सकता है[2]। भिखमंगों के गीत, जाति-गीत को

1 पं० रामनरेश त्रिपाठी : कविता कौमुदी 'ग्रामगीत', पृष्ठ ६१
२. संस्कार धर्म के ही अंग होते हैं अतः संस्कार गीत तथा धर्म-गीतों को एक ही कोटि में रख देने से कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिये।

कोटि मे आते हैं क्योकि भीख माँगने वाली जातियाँ ही इन्हें गाती हैं। मेले के गीत राह चलते चलते गाये जाते हैं अत उन्हें काम-काज के गीतो मे अन्तर्भुक्त किया जा सकता है। यही बात चरखा और चक्की के गीतो के लिये भी है। खेती के गीतो तथा अनुभव के वचनो मे पूर्ण रूप से बौद्धिकता होती है अत वे गीत की कोटि मे आते ही नही। वीर-गाथाएँ तथा गीत-कथाएँ जैसे आल्हा और ढोला विशेष रूप से वर्षा-ऋतु मे गाये जाते हैं अत इनको हम ऋतुगीत-वर्ग मे रख सकते हैं। इस प्रकार हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि गीतो का ११ वर्गो मे विभाजन अनावश्यक है।

प० सूर्यकरण पारीक ने 'राजस्थानी लोक-गीत' पुस्तक मे गीतो का क्षेत्र-विस्तार दिखलाते समय इन गीतो को उनतीस वर्गों मे विभक्त किया है[1]। वह वर्गीकरण भी वैज्ञानिक नही है क्यो कि पारीक जी के वर्गीकरण मे किसी क्रम अथवा पद्धति को नही अपनाया गया है। उन्होने और, हास्य और शृगार-रस के गीतो को तीन श्रेणियो मे रखा है जिन्हें एक ही श्रेणी मे रखा जाना चाहिए। इसी प्रकार भाई बहन और पति-पत्नी-सम्बन्धी गीतो को सस्कार गीतो अथवा ऋतु गीतो मे रखा जा सकता है। विभिन्न सस्कारो के गीतो के भी उन्होने कई वर्ग बनाए है जिन्हे सस्कार-गीत वर्ग मे रखने मे कोई असुविधा नही हो सकती।

पारीक जी के पश्चात् हम डा० कृष्णदेव उपाध्याय के वर्गीकरण को देखते है। इन्होने लोक गीतो को ५ प्रधान भागो मे विभक्त किया है।[2]

१—सस्कारो की दृष्टि से।
२—रसानुभूति की प्रणाली से।

---

१ पारीक राजस्थानी लोक गीत पृष्ठ २२—२९।

२. डा०कृष्णदेव उपाध्याय भोजपुरी लोक साहित्य का अध्ययन—१२८

३—ऋतुओं और व्रतों के क्रम से।

४—विभिन्न जातियों के प्रकार से।

५—क्रिया-गीत के आधार पर।

'रसानुभूति की प्रणाली' गीतों के वर्गीकरण का सिद्धान्त हो सकता है, 'वर्ग' नहीं क्योंकि अन्य सभी वर्गों के गीतों में भी रस होता है। यदि हम उसे अलग से भी मान लें तो वर्गीकरण की वैज्ञानिकता समाप्त हो जाती है। और उसमें अतिच्छादन (overlapping) का दोष आ जाता है। इन पांच वर्गों के अतिरिक्त वे चरखे के गीत, मेले के गीत और अनुभव के वचनों को प्रकीर्णक श्रेणी में रखते हैं[1]। 'प्रथम तो प्रकीर्णक श्रेणी ही वैज्ञानिक विभाजन नहीं और दूसरे इस श्रेणी में जिन गीतों को उन्होंने रखा है उनमें से चरखे के गीत तो 'क्रिया-गीतों' में रखे जा सकते हैं क्योंकि ये गीत चरखा चलाते समय गाये जाते हैं। इसी प्रकार मेले के गीत भी क्रिया गीतों में अन्तर्भुक्त हो सकते हैं। अनुभव के वचन गीतों की कोटि में आते ही नहीं अतः उनका 'प्रकीर्णक-श्रेणी' का रखना अनावश्यक ही है।

अवसर की अनुकूलता के अनुसार जो गीतों के छः भेद हैं, उन पर अब क्रमशः विचार किया जायेगा।

१ संस्कार-गीत—

संस्कारों का महत्त्व प्रत्येक जाति में है, क्योंकि संस्कारों के साथ ही मनुष्य का विकास होता है। भारतीय लोगों के लिए इन संस्कारों का महत्त्व और भी अधिक है। धर्म भारत का प्राण है और धर्म के ही अंग हैं। गीतों के बिना कोई संस्कार नहीं होता, यहाँ तक कि

१ डा० कृष्णदेव उपाध्याय : भोजपुरी लोक साहित्य का अध्ययन—१६८।

हैं उन्हें 'मुण्डन के गीत' कहा जाता है। इस प्रकार के गीतो की सख्या भी 'कनउजी' में वहुत कम है।

यज्ञोपवीत के गीत—यज्ञोपवीत मस्कार अन्य सस्कारो में अत्यधिक महत्व का है। यद्यपि यह सस्कार अब विशेपरूप से ब्राह्मणो क्षत्रियो तक ही सीमित रह गया है परन्तु फिर भी इस समय गाये जाने वाले गीतो की सख्या पर्याप्त है। इस समय गाये जाने वाले गीतो को 'वरुआ' कहते हैं। यज्ञोपवीत में अनेक लोकाचार होते है और 'कनउजी' में इनके विपय मे भी अनेक गीत मिलते है।

बिवाह के गीत—विवाह जीवन की अवतारणा से प्रकृत-सम्बन्ध रखता है। इससे स्त्री और पुरुप का वह सम्बन्ध स्थापित होता है जिससे वे सृष्टि की परम्परा को आगे बढावें। मानव-प्रकृति प्रजनन-क्रिया की समृद्धि के लिये सदैव उत्सुक रहती है जिससे उसकी परम्परा अविच्छिन्न रहे। यही कारण है कि समस्त-सृष्टि मे प्रजनन-क्रिया के लिये सौन्दर्य और आकर्षण का प्रदर्शन होता रहता है। इसी से प्रत्येक मनुष्य विवाह जैसी घटनाओ की ओर विशेष आकर्पित होता है। यही कारण है कि विवाह-सस्कार वहुत ही महत्त्वपूर्ण और प्रधान सस्कार वन गया है। इस अवसर पर जो विवाह को धार्मिक-कृत्य मानते हैं, वे तो हर्प प्रकट करने के लिए गीत गाते ही हैं, परन्तु जिनका विवाह के लिए धार्मिक दृप्टिकोण नही है, वे भी इसे सामाजिक समझौता मानकर गीतो द्वारा अपने आनन्द की अभिव्यक्ति करते है। विवाह के अवसर पर अनेक लोकाचार तथा विधि-विधानो का मम्पादन होता है। अत इनमे मम्वन्ध रखनेवाले अनेकानेक प्रकार के गीतो की उपलब्धि होती है। विवाह गीतो का सूत्रपात' फलदान (तिलक) के गीतो से होता है। इसके वाद घना, मण्डप, माडवे, तेल चढने, पूरन-पूरने, कपडे पहनने, मौर पहनने, कुआँ व्याहन, निकरौसी, जेवनार, परछन, भाँवर आदि अवसरो पर विभिन्न गीत गाये जाते हैं। इन लोकाचारो के वीच-

बीच में ऐसे भी गीत गाये जाते हैं जिन्हें 'गारी' कहते हैं, इनमें मुख्यतः अश्लीलता होती है और जिनका कि उद्देश्य मनोरंजन होता है। इसके अतिरिक्त इस संस्कार में घोड़ा, घोड़ी, बन्ना बन्नी आदि गीतों की भरमार रहती है। विवाह के सम्पन्न हो जाने पर लड़की की विदा होती है और इसके भी गीत पाए जाते हैं। यह गीत बड़े ही करुण एवं मार्मिक होते हैं। जिन जातियों में विवाह के समय विदा नहीं होती उनके यहाँ 'द्विरागमन' गौना के समय इन गीतों को गाया जाता है।

ऊपर 'संस्कारों के गीत' वर्ग में आने वाले गीतों का स्थूल रूप से परिचय दिया गया है। ये गीत ही विभिन्न संस्कारों में गाये जाते हैं।

२—ऋतु-गीत

भारतीय जनता प्रकृति की पुजारिन है। प्रकृति का जैसा सौन्दर्य भारत में देखने को मिलता है वैसा अन्यत्र नहीं। अतः ऋतु और महीनों में जो परिवर्तन हुआ करते हैं उनका निरीक्षण तथा उनसे आनन्द की अनुभूति कौन ऐसा भारतीय है जो न करे? विभिन्न ऋतुओं के आने पर हृदय उल्लसित हो उठता है। इस आनन्द की अभिव्यक्ति इनकी लोकगीतों में संचित है। चैत मास हमारे वर्ष का आरम्भ का मास है। इस मास में वसन्त अपने पूर्ण यौवन में होता है। मादक वायु बहती और पुष्पों से पूर्ण वनस्पतियाँ मादकता भर देती हैं। कोयल की कूहू कूहू तथा भ्रमरों का गुंजार एक दिव्य वातावरण की सृष्टि करती है। ऐसे समय स्त्री पुरुष अपने को गीत गाने से नहीं रोक सकते। उनके गीत वातावरण के अनुकूल होते हैं। इस समय के गीतों को 'चैता' कहते हैं, इसके पश्चात् ऋतुगीतों में [illegible] आता है और [illegible] होते हैं। [illegible] गीत [illegible] में स्त्रियों के गान हैं और [illegible] 'कजली' कहा जाता है। ये गीत [illegible] गाए जाते हैं। इसी वर्षा ऋतु में बारहमासा भी गाया जाता है जो स्त्री और पुरुष दोनों का ही गान है। 'बारहमासा' में बारह महीनों का वर्णन [illegible]

वणन होता है। इसके पश्चात् ऋतु-गीतो मे 'फाग' उपलब्ध होते है। कन्नौज में इन गीतो की सख्या बहुत अधिक है। यह गीत फागुन मास में गाया जाता है। विविध वाद्य-यन्त्रो को बजाकर जब ये गीत गाये जाते है, तो इनके सुनने का लोभ अपने को सभ्य कहने वाले नागरिक भी सवरण नही कर पाते। कन्नौजी-प्रदेश मे वर्पा-ऋतु मे 'आल्हा गीत' का भी बहुत प्रचलन है। एक आल्हा गानेवाला बुला लिया जाता है जिसे 'अल्हवई' कहते है और सारा गाव बैठकर सुनता है।

३. व्रत-गीत—

व्रतो के अवसर पर गाये जानेवाले गीत व्रत-गीत कहलाते है। इन गीतो का सम्बन्ध केवल स्त्रियो से है। स्त्रियाँ व्रत रखती हैं और इन्ही अवसरो पर गीत भी गाती है। तीज (हरतालिका व्रत), हरछठ, करवाचौथ, नवरात्र आदि व्रतो मे गीत गा गाकर अपने मनोवाञ्छित फल को प्राप्त करना चाहती है। इसके अतिरिक्त रात्रि मे जागने के व्रत का भी स्त्रियाँ अनुष्ठान करती है और देवी के मदिर मे एकत्र होकर रात्रि भर जागती हैं। रात्रि मे यदि वे शान्त होकर बैठे तो सम्भवत जागना कठिन हो जावे। अत वे गीत गाती हैं। यह गीत देवी के गीत होते है और इन्हे 'रतिजगे' के गीत भी कहते ह।

४ पर्व-गीत—

हमारे समाज मे अनेक पर्व मनाए जाते है। पर्व हर्ष के प्रतीक होते हैं। अत यह आवश्यक हो जाता है कि इन अवसरो पर गीत भी गाए जावें। पर्वों को त्योहार भी कहा जाता है। अत इसके अन्तर्गत 'होली' आ जाती है। होली गीत फाग से सर्वथा भिन्न है। होली मे रग, मिलने का उत्साह, हास्य, मनोविनोद आदि बातें होती हैं। मनोविनोद की मात्रा तो इतनी बढती है कि वह अश्लीलता का रूप धारण कर लेती है। अनेको ऐसी गालियाँ गाई जाती हैं जिनको

सभ्य और वयोवृद्ध लोग सुनने में घृणा का अनुभव करते हैं। होली के अतिरिक्त धर्म-गीतों में गंगा स्नान के जाने के लिए कातिकी, नहँगी और दशहरा के समय के गीत मिलते हैं। इन गीतों में गंगा के महत्त्व का गुणगान होता है। गंगा के महत्त्व के अतिरिक्त अनेक भजन आदि भी इन गीतों के अन्तर्गत आते हैं।

५ काम-काज करते समय गाए जानेवाले गीत—

काम करने या राह चलते समय गाये जानेवाले गीतों को काम-काज के गीत कह सकते हैं। इस प्रकार के गीतों को अंग्रेजी लोक-साहित्य के मर्मज्ञों ने 'ऐक्शन्-सांग' कहा है। इन लोक-गीतों के प्रचार करनेवाले बहुत बड़े मनोवैज्ञानिक होंगे, तभी तो उन्होंने काम करते समय गीतों के गाने का प्रचार करवाया जिससे काम करनेवाला गीत में अपना ध्यान बँटाकर थकान की ओर ध्यान ही न दे। यह मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि किसी वस्तु की ओर ध्यान देने से उसकी अधिकता का अनुभव होता है और न ध्यान देने पर मानो उसकी अधिकता बहुत कम हो जाती है। श्रम के बोझ को श्रमिक अनुभव न करें और अपना कार्य प्रसन्नता-पूर्वक करें, इस दृष्टि से यह गीत बहुत ही महत्त्वपूर्ण हैं। काम करने के समय गाये जानेवाले गीतों को चक्की के गीत, रोपा के गीत, निरवाही के गीत, राह चलने के गीत, कोल्हू के गीत, चरखा के गीत आदि श्रेणियों में रख सकते हैं। काम-काज के गीतों का लक्ष्य मनोविनोद होता है और यही खेल खेलने का भी, अतः खेल खेलते समय गाये जानेवाले गीतों को भी इसी वर्ग में रख सकते हैं। इन गीतों में बच्चों के खेल-गीत—'टेसू,' 'सुअटा' 'निवम्ना-निवम्नी' आदि भी आते हैं।

६—जाति-गीत—

साधारणतया ये सभी गीत सभी जातियों द्वारा गाए जाते हैं, परन्तु कुछ ऐसे गीत भी हैं जिन पर कुछ जातियों का एकाधिकार होता है।

अत वर्गीकरण करते समय इन गीतो को 'जाति-गीत' कहा गया है। अधिकतर ऐसे गीतो की पहँचान कि वे किस जाति के है, उनमे वर्णित जाति-विशेप के कार्य-क्षेत्र कौर सामाजिक-रीति-रिवाज आदि से होती है। इन गीतो मे जाति के क्रम से अलग-अलग राग भी होते हैं। रागो की दृष्टि से कहारो, चमारो, धोबियो, तेलियो, अहीरो और धानुको के गीत अधिक महत्त्वपूर्ण हैं।

इस अध्याय मे 'कनउजी लोकगीतो' का वर्गीकरण और सक्षिप्त परिचय दिया गया है। अगले अध्याय मे गीतो के प्रकार और वर्ण्य-विषय पर विस्तृत-विवेचन किया जायगा।

तृतीय-अध्याय

'कनउजी लोक-गीतों के प्रकार और वर्ण्य-विषय'

'कनउजी लोक-गीतों के प्रकार और वर्ण्य-विषय'

'सोहिलो' शब्द का प्रयोग हुआ है। एक शब्द 'सोभर' भी इसके लिए प्रयुक्त होता है जिसका अर्थ भी जच्चा के रहने का स्थान है। 'सोहर' शब्द का प्रयोग किन्ही-किन्ही गीतो मे हुआ है —

'बाजे अनद वधाये उठन लगे 'सोहर' हो'

'सोहर' के स्थान पर कही-कही 'मगलचार' का भी प्रयोग किया गया है। जैसे —

'सखि गावौ मगलचारु आजु आली भये ललना'।

रामचरितमानस मे भी तुलसीदासजी ने रामजन्म पर मगल-गीतो के गाये जाने का उल्लेख किया है। साहित्यिक-हिन्दी में भी 'सोहरो' की रचना हुई है। तुलसीदास जी ने रामललानहछू नामक ग्रथ की रचना इसी 'सोहर' छन्द में की है। वस्तुत इन गीतो में 'सोहर' छन्द के प्रयोग के कारण ही इसका नाम 'सोहर' पड गया है। तुलसी दासजी ने जो 'सोहर' लिखे है वे तुकान्त है और मात्राओ का एक निश्चित-क्रम है। उदाहरण के लिए नीचे कुछ सोहर दिये जाते है —

'मोचिनि बदन सकोचिनि हीरा माँगन हो।
पनही लिहे कर सोभित सुन्दर आँगन हो।
बतिया कै सुघर मलिनियाँ सुन्दर गातहि हो।
कनक रतनमनि मौर लिहे मुसकातहि हो।
नयन बिसाल नउनियाँ भौ चमकावइ हो।'।
देइ गारी रनिवासहि प्रमुदित गावइ हो [1]।

परन्तु कनउजी लोक-गीतो में पाये जानेवाले 'सोहर' अतुकान्त होते है। कुशल लोककवि ने छन्द-शास्त्र के नियमो की कोई चिन्ता नहीं की फिर भी इसकी टेक रागात्मिका-वृत्ति से ओत-प्रोत है। सोहर की रचना स्त्रियो द्वारा ही हुई है। इसी हेतु इनमें स्त्री-सुलभ-कोमलता

१—तुलसी—ग्रथावली (राम लला नहछू)

वहुत अन्तर तो मिलता ही है। इन कामना-गीतो में दो गीत महत्त्वपूर्ण हैं। एक गीत में पुत्रहीन स्त्री पुत्र के अभाव में गगा में डूबने के लिए एक लहर माग रही है। अत गगा उसकी कामना को पूरा करने के लिए वरदान देती हैं कि उसके पुत्र होगा। घर जाकर पुत्र के लिए उसे ऐसा 'उछाह' होता है कि वह नौ मास तक पुत्र की प्रतीक्षा नही करती और वढई से काष्ठ का पुत्र वनवाती है। वह सूर्य से प्रार्थना करती है कि, "हे सूर्य देवता ! काष्ठ के पुत्र मे प्राण डाल दो जिससे कि इसे लेकर उठू बैठू और सोऊँ"। नौ मास बीतने पर उसके पुत्र उत्पन्न होता है और पति, सास, ननद, देवर आदि सम्पूर्ण परिवार के लोग जो उसका निरादर करते थे, आदर करने लगते है। इन्ही भावो को लेकर पूर्वी बोलियो में भी गीत (अवधी और भोजपुरी) प्रचलित है। परन्तु ऊपर के कथानक को लेकर दो गीत पाये जाते हैं। कविता-कौमुदी मे सगृहीत ग्राम-गीतो का प्रथम 'सोहर' हमारे गीन के आधे अश तक अर्थात् वरदान प्राप्त करने तक मिलता है और उसके पश्चात् यह दो चरण लेकर समाप्त हो जाता है —

गगा गहवरि पिअरी चढइवै होरिल जव होइहँइहो।
गगा देहु भगीरथ पूत जगत जस गावइ हो।

कनउजी और अवधी के गीत का विपय किस प्रकार मिलता है, इसे दिखाने के लिए दोनो गीतो को उद्धृत किया जाता है —

अवधी-गीत

गगा जमुनवाँ के विचवाँ तेवइवा एक तपु करइ हो।
गगा अपनी लहर हमे देतिउ मैं मँझधार डूवित हो।
की तोहि सास ससुर दु ख कि नैहर दूरि वसै।
तेवई ! की तोरे हरि परदेस कवन दुख डूवहु हो।
गगा ! ना मोरे सास समुर दुख नाही नैहर दूरि वसै।
गगा ! ना मोरे हरि परदेस कोख दुख डूवव हो।

इसके आगे वे पक्तियाँ आती हैं जो ऊपर कहे कनउजी गीत मे मिलती है। नीचे दोनो को दिया जा रहा है—

अवधी

मोरे पिछवरवाँ बढइया वेगि ही चलि आवहु हो।
बढई गढि देहु काठे के बलकवा मैं जिया बुझावउँ मन समुझावउँ हो।
काठे का बालक गढि दिहलै अँगने घरि दिहलहँ हो।
वावुल मोरे अँगने रोइ न सुनावउ मैं बाँझिनि कहावउँ हो।
देव गढल जो मैं होतेउँ रोइ सुनउतेउँ हो।
रानी बढई के गढल होरिलवा रोवन नहि जानइ हो।

कनउजी (उत्तराश)

अरि आई बना बढई के तीर औ सवद सुनावै हो।
बढई तुम मोरे देउर जेठ कहो मेरो करि देव रे।
काठ को पूत गढि देव तौ उइ का खिलइयैं हो।
अरि नहाय धोय के ठाढी और सुरज मनामैं हो।
सुर्ज काठ पूत जिउ डारौ तौ एइ कौ खिलामैं हो।
अरि बीते जो नौ दस मास तो होरिल सवद सुनामैं हो।
वाजन लागे बाजे उठन लागे सोहर हो।
धनि धनि गगा तुम्हें हो मेरो मान बढाय दओ हो।
अब तौ सास वह कहि बोलैं ननद कहै भउजी हो।
अरि सजना जच्चा कहि बोलैं तौ छतिया सिराइ गई हो।

अवधी-गीतो से तुलना करने के पश्चात् हमे ऐसा प्रतीत होता है कि कनउजी गीत मे दो गीत जुड गए है। वाह्यदृष्टि से माना भी जा सकता है कि इसमे दो सूत्र जोडे गए हैं परन्तु आन्तरिक रूप से वह एक ही है। प्रारम्भ से अन्त तक एक समान भावधारा प्रवाहित होती रहती है। कनउजी-गीत विषय की दृष्टि से ब्रज-गीत से मिलता जुलता है। इसमें इस प्रदेश के कोमल भावो और कोमल कल्पना का

२—दोहद-गीत—स्त्री के गर्भवती होने पर उसको अनेक वस्तुओ के खाने की अभिलापा होती हैं । इस अभिलाषा को ही 'दोहद' कहा जाता है । यह अभिलाषा इतनी तीव्र होती है कि पत्नी अपने पति से दुष्प्राप्य वस्तुओ को भी मगा कर अपनी इच्छा पूरी करना चाहती है । पति उसकी अभिलापा को पूरी भी करता हैं । यो तो गीतो मे अनेक वस्तुओ का उल्लेख मिलता है पर उनमे 'नौरगिया' का विशेष रूप से वर्णन आता हैं । एक गीत मे पति पत्नी से पूँछता है कि उसका मन जिस फल मे लगा है उसी को लाया जावे । पत्नी 'नौरगिया' फल मागती है । पति कठिन परिस्थितियो मे पडता हुआ अपनी स्त्री को वही फल खिलाता हैं । गीत मे वर्णन इस प्रकार है —

रनिया कौन फलन मन लागो कौन फल लामैं रे ।
सकल वस्त मेरे घर मैं एकौ नहि भावैं रे ।
मोरे नौरगिया की साघ 'नौरगिया' लइ आवौ रे ।
राजन भये घोडा असवार 'नौरगिया, लेन गये हैं रे ।
एक नौरगिया टोरी नौरगिया पेंडे वाधो है रे ।
कहौ की के हो तुम वेटा कौन केरे नाती हो रे ।
कौन छैल व्रजनारि नौरगिया लेन आए हो रे ।
अपने ददुलि के वेटा आजुलि के नाती हैं रे ।
अपनी वना व्रजनारि नौरगिया लेन आये है रे ।
सासु हमारी वोले वोल वोले हैं वोलैं रे ।
वहुअरि ऐसे फनन मन लागो कि पूता वधाये हैं रे ।
(इसी प्रकार जिठानी ननद आदि)
भोर भओ पो फाटी चिरइया जो वोली हैं रे ।
जल्दी खोलो तो चनन किवरिया हाँथ-मुह धोवो नौरगिया की चोखो रे
पहिले चिखावो अपनी मइया अउर सगी वहिनी को रे ।
राजा तिनकी जुठन हम खाय सचत मुँह देखैं है रे ।

चौथी पीर जब आई मैंने दिउरा की गोद बुझाई बाँधि लई मूठी
सुमिरि भगवान ।
पचईं पीर जब आई मैंने सजना की गोद बुझाई लगाय लओ गरे मैं
गरे लगाओ सजन ने होरिलवा ने सबद सुनाओ जुडाय गयो जिअरा
सुमिरि भगवान ।

प्रसव से सम्बन्ध रखनेवाले गीतो मे यह भी वर्णन होता है कि जब गर्भवती स्त्री पीडा से व्याकुल होती है तो सास, जिठानी, देवरानी तथा ननद से प्रार्थना करती है कि ये उसकी पीडा बँटा ले। इसके बदले मे वह सास को हसुली, जिठानी को बाजूबन्द, देवरानी को दर्पण, ननद को कठा देने का वचन देती है। पुत्र के जन्म होने पर जब वह स्वस्थ होती है तो कहती है "पीडा बँटाने मे मेरे लिए किसी ने कुछ भी नही किया। मुझे जो पुत्र की प्राप्ति हुई है वह तो दैव की कृपा से न कि तुम्हारे कारण ?[1] किसी-किसी गीत में यह भी वर्णन मिलता है कि स्त्री पीडा से अत्यधिक व्याकुल है। उदरस्थ बालक से शीघ्र ही जन्म लेने का अनुरोध किया जाता है। इसके उत्तर मे बालक कहता है कि मैं जन्म तब लूगा जब मुझे वचन दिया जावे कि जन्म लेते ही मुझे सोने के खप्पर में स्नान कराया जावेगा, रेशम मे बुने पलँग पर सुलाया जावेगा और ओढने बिछाने के लिए सुन्दर वस्त्र दिये जायँगे। गीत में उसे वचन दिया जाता है और तब कही बालक जन्म लेता है। ऐसे भी गीत पाये जाते है जिनमें उल्लेख मिलता है कि अधिक पीडा होने का कारण स्त्री का गुरुजनो के साथ दुर्व्यवहार है। उसने सास और ननद का आदर नही किया, ससुर और जेठ की लाज नही की। इस समय तो ईश्वर से प्रार्थना करने पर ही उसे मुक्ति मिल सकती है।

४ जन्ति के गीत—प्रसव से सम्वन्ध रखने वाले ऐसे गीत भी होते है जिनमें गर्भ के कारण स्त्री के क्रुश और पीत शरीर यष्टि का

---

१ 'तुमने सासु जी का कीनो हमैं होरिल राम ने दीनो'

प्रस्तुत किया है। सीता के वनवास का कारण लोकापवाद था पर लोक-कवि चित्र के प्रसग को लेकर वनवास करवाता ह । गीतो की तुलना करने पर ज्ञात होता है कि कनउजी-गीत ब्रज की भाति तपस्वी द्वारा सीता के आश्वस्त होने तक ही नही समाप्त हो जाता वरन् उसमे लव-कुश का जन्म, रोचन भेजने, राम के सीता के पास आने और सीता के पृथ्वी में समा जाने की कथा भी आ जाती है । कनउजी गीत बुन्देली से मिलता जुलता है ।[1]

६—नेग क गात—लोक जीवन में नेग का बडा ही महत्त्व है । कोई भी सस्कार क्यो न हो, नेग के विना काम नही चलता । विविध सम्वन्धी तथा 'परजा' बिना नेग के काम नही करते । सोहरो में भी नेग का उल्लेख वहुत अधिक मिलता है । इनमें सास, जिठानी, ननद, देवर, 'धनकुन' आदि के नेग माँगने के अनेक प्रसग आते हैं । जब वालक उत्पन्न हाता है तो नारा काटने के लिए 'धनकुन' नेग माँगती है, उसे मनमाना नेग मिलता है । इसी प्रकार सास, जिठानी, ननद आदि को भी । परन्तु कही-कही कोई स्त्री यह भी कहती है कि 'हे पति धन लुटाने से क्या लाभ ? सास का नेग मेरी माता से करवा देना और सास को लौटा देना ।" गीत इस प्रकार है —

हम तो अकेली सइया सब ना लुटाय दीजो ।
सास जो आवे सइया द्वारे ते लौटाय दीजो ।
सास को नेग मेरी अम्मा ते कराय लीजो ।
जिठनी जो आमैं सइया द्वारे ते लौटाय दीजो ।
जिठनी को नेग मेरी भउजी ते कराय लीजो ।

---

१ ब्रज, बुन्देली और पूर्वी में प्रचलित इस गीत क अन्तर तथा साम्य का दिग्दर्शन डा०सत्येन्द्र न 'ब्रज लोक साहित्य का अध्ययन' ग्रंथ में कराया ह । कनउजी गीत की कथा का बुन्देली से साम्य देखने क लिए उपरोक्त पुस्तक के १३७-४० पृष्ठ देखिए ।

द्वारे से जेठा उटिला पठओ उटिलौ न लेय वह दाई ।
द्वारे से दिउरा घुडिला पठओ घुडिलौ न लेय वह दाई ।
द्वारे से सइया मोहरें पठई मोहरौं न लेय वह दाई ।

जन्म के अतिरिक्त अन्य सस्कारो मे भी नेग के गीत गाये जाते है, जिनका उल्लेख अन्यत्र किया जायेगा।

७ **जच्चा के नखरे के गीत**—पुत्र के जन्म देने पर स्त्री के हर्ष और उत्साह का पारावार नही रहता। उसे इस का गर्व है कि 'हमने जाये हैं नन्दलाल, धिया नहि जाईहे'। अत यह बात स्वाभाविक है कि वह इस अवसर पर वात-वात मे मनौती ले। स्त्री को इस वात की चिन्ता है कि उसने असह्य-पीडा को सहन करके पुत्र को जन्म दिया है परन्तु पुत्र फिर भी पति का ही कहलायेगा। अत वह सास ननद आदि से इस वात का दावा करती है कि 'दरद तौ हमने सही पिया के लाल कइसे कहामैं'। इस प्रकार वह रूठ करके, पुत्र से उसीका नाम चले, ऐसा सब लोगो से मनवाना चाहती है। स्त्री का रूठना ही नही, गीतो मे इस वात का भी उल्लेख मिलता है कि जव उसे चरुआ का पानी और पीपर तथा 'हरोरा' आदि पीने को दिया जाता है तो वह नखरे दिखलाती है और पीने से मना कर देती है। सास-ससुर जेठ-जिठानी और ननद उसे मनाती है तो वह नही मानती और कहती है कि—

पीपरि करुई कसइली वहुत वकठइली ललना।
गेहुआ वरन मोरी देही जरद हुइ जइयैं रे।
कपुर वरन मोरी जिभिया जरद हुइ जइयैं रे।

इसी प्रकार अन्य गीत भी पाये जाते हैं जिसमे जच्चा को विभिन्न प्रकार से मनौती की जाती है पर वह रूठती तथा नखरे ही दिखाती चली जाती हैं। अन्त मे जव पति डडा दिखाता है तो तत्क्षण ही 'पीपर' उठाकर पी लेती है

बइठो बइठो बिरन घर आपने बधइया राजा बीर की ।
तुम जोड़ के असिल गुलाम बवइया राजा बीर की ।

अन्य बधायेगीतो मे भी ऐसे ही मिलते-जुलते विषय का वर्णन मिलता है।

'सोहर' के प्रकारो और उनके वर्ण्य-विषय के विवेचन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि 'सोहर' सुखान्त और दु खान्त दोनो प्रकार के होते हैं। 'मैथिली लोक-गीत' के सम्पादक श्री राम इकबाल सिंह ने लिखा है कि झूमर में निराशा के दिलसोज आँसू दिल को बेचैन करते है। 'सोहर' सुखान्त होता है, और इसमें आशा की निर्बन्ध-निर्झरिणी टेढी नागिन सी बल खाती, बिजली सी बल खाती हुई चली गई है[1]। इस कथन से स्पष्ट है कि उनके मत से सोहर दु खान्त होते ही नही। परन्तु तथ्य कुछ और ही है। अवधी, भोजपुरी और मैथिली सोहरो मे 'काष्ठ के पुत्र बनवाने वाला' दु खान्त-सोहर मिलता है। यदि यह कहा जाय कि कनउजी और व्रज मे दु खान्त-सोहर नही मिलते तो समीचीन भी है। इस प्रकार हम देखते है कि भाव-धारा की दृष्टि से पूर्वीगीतो की अपेक्षा कनउजी-सोहर व्रज के 'सोहरो' से अधिक साम्य रखते है। वे प्राय सुखान्त होते हैं।

जन्म के अन्य गीत—

जन्म के गीतो मे 'सोहर' का स्थान ही महत्त्वपूण है। ऊपर जैसा वर्णन किया जा चुका है, इसमे करुणा, हास, उत्साह आदि भावो और विविध प्रसग के द्वारा बडी उत्कृष्ट कोटि की रससृष्टि की गई है। परन्तु जन्म के अन्य गीत केवल औपचारिक है। जब कोई कार्य होता है तो उनमे किसका क्या हाथ रहता है? इसी का वर्णन इन गीतो मे विशेष रूप से मिलता है। इस कोटि मे 'चरुआ के गीत' नारा छीनने

---

1 रामइकबाल सिंह 'मैथिली लोकगीत'। पृष्ठ ५०।

किमी मदिर मे होता है । अत वहा ढोलक आदि ले जाने मे असुविधा होती है ।

इस सस्कार मे भाग लेने के लिए बुआ (पिता की वहन) बहन तथा अन्य सम्बन्धियो को भी निमन्त्रण दिया जाता है, इसका वर्णन इन गीतो मे मिलता है । इनमे इन्द्र भगवान् से बुआ-फूफा, वहन-वहनोई प्रार्थना करते है कि वे पानी न वरसावे, जिससे कि सुविधापूर्वक सस्कार मे सम्मिलित हुआ जा सके । कुछ गीतो मे यह भी वर्णन होता है कि बाबा, दाई, ताऊ, ताई, पिना, माता, चाचा, चाची आदि वालक को जघा पर वैठाये हुए हैं और दान दे रहे है —

झड्ले हैं आम अमिलिया अउर जभिरिया अउर जउन के खेत
झलरिया मोरी पावनी रे ।

जथइया वइठे आजा उनके ठाडे मुन्ना राम एहो आजा आगे लुटनी पसारे ।
मुडावौ आजा झालरि रे ।

दाई उनकी जाग वइठारे झलरी मुडा मैं रे ।

(इसी प्रकार अन्य भी)

'झलरी' मुड़ने के समय (केश-कर्तन के समय) बुआ और वहिन का काम वालो को एकत्र करके अचल मे रखना होता है । इस सम्वन्ध मे भी गीतो मे वर्णन मिलता है कि बुआ और वहन नेग माग रही हैं और वालक के वावा, पिता आदि जीभरकर नेग दे रहे है ।

यज्ञोपवीत के गीत—

यज्ञोपवीत-सस्कार मे प्रचलित गीतो को 'जनेऊ के गीत' अथवा 'वरुआ' कहते हैं । अव यह सस्कार प्रधानतया ब्राह्मणो के यहा और सामान्यतया क्षत्रियो के यहा किया जाता है । अत इन गीतो का इन्ही दो वर्णो मे प्रचलन है । इतना होते हुए भी आश्चर्य

की वात यह है कि इसके पर्याप्त-मात्रा मे गीत उपलब्ध होते हैं ।

जनेऊ होने के कारण माता पिता की प्रसन्नता, स्वय ब्रह्मचारी की प्रसन्नता तथा सस्कार के विविध विधि-विधानो एव कृत्यो का वर्णन इन गीतो मे मिलता है । कही वर्णन मिलता है कि दशरथ राम के जनेऊ के लिए चिन्तित हैं और वशिष्ठ जी से प्रार्थना करते हैं कि राम आठ वर्ष के हो गए हैं, उन्हें जनेऊ पहनने के लिए वहुत वडी साध है । जनेऊ पहनने की उत्सुकता को देखिए —

रामचन्द्र वरुआ भुइ लोटि जाय जनेऊ के कारन ।

जनेऊ के विभिन्न विधि-विधानो की तैयारी मे सभी लोग व्यस्त भी दिखलाए गए ह । कही कोई मूज चीरता हुआ तो कही जनेऊ के लिए सूत कातता हुआ, कही कोई पलाश-दण्ड काटता हुआ तो कही लगोटी तैयार करता हुआ दिखाई देता है । किसी गीत में जनेऊ के समय क्या-क्या विधि-विधान होता है, इसको वतलाने के लिए एक ऐसे पात्र की योजना की जाती है जो पूँछता है कि अमुक का जनेऊ कहाँ हो रहा है ? इसका उत्तर दिया जाता है कि अमुक-अमुक कार्य जहाँ होता हो वही समझो कि यज्ञोपवीत सस्कार सम्पादित हो रहा है । विधि-विधानो के वर्णन करने की यह वडी सुन्दर प्रणाली है । देखिए —

गलिन-गलिन पण्डित घूमैं हाथ मैं पोथी लये ।
कउन वखरी राजा जसरथ राम को जनेउआ ।
बासन धोती सुखत हुइऐ वरुआ जेंउत हुइयैं, पडित वेद पढ़ैं रे ।
अंगना मैं ढोल धमाका दई जइसे गरजैं रे ।

इसी प्रकार नाई, कहार, कुम्हार, वढई आदि पूँछते है और उनको भी यही उत्तर दिया जाता है । एक गीत में कपास के वोने से ओटने, धुनने, चरखा चलाने, सूत कातने और जनेऊ वनाने तक की प्रक्रिया का वर्णन मिलता है । जनेऊ के समय सव सम्वन्धी वुलाये जाते है । वहन-वहनोई,

पर पहुँचते हैं कि इनके वर्ण्य-विषय में बहुत समानता है। विवाह प्रथाओ में तो बहुत अतर मिलता है परन्तु जनेऊ-प्रथा सब प्रदेशो मे लगभग एक सी ही प्रचलित है।

नहछू के गीत—

कन्नौजी-क्षेत्र में 'नाखुरो' (नहछू) विवाह के पहले होता है। इसी दिन पैर के नाखून प्रथम बार काटे जाते है। यह सस्कार भी बडी धूम-धाम से मनाया जाता है परन्तु इसे स्वतत्र-सस्कार नही कहा जा सकता। वास्तव में यह सस्कार विवाह-सस्कार का एक अगमात्र ही है। "नाखूरे" के गीतो में वर्णन मिलता है कि इस सस्कार में सभी सम्बन्धियो को निमन्त्रित किया जाता है। माता-पिता धन-धान्य लुटाते है। "नाखुर" करते समय का वर्णन बडा ही सुन्दर होता है, देखिए —

पतरी पतरी अगुरिया नउनिया गोरी।
करत राम जी को नाखुरो हो घूंघट खोली।
नउआ तो कहे नउनिया मे इउ सब थोरी।
राम औ लछिमन को नाखुरो लिएँ हम घोडी।

कही-कही 'नहछू' विवाह के बाद भी होता है[1]। शिष्ट-काव्य मे भी नहछू-सस्कार का वर्णन किया गया है। इस विषय का तुलसीदास का 'रामलला नहछू' उत्कृष्ट कोटि का ग्रथ है।

विवाह के गीत—

विवाह का महत्त्व और उसकी विविध प्रथाओ का विस्तृत वर्णन 'सास्कृतिकचित्रण' नामक अध्याय मे किया जायेगा। इन विविध प्रथाओ के समय सैकडो गीत गाये जाते हैं। इन गीतो का वर्ण्य-विषय अत्यन्त विस्तृत है। इनमे बालविवाह, वृद्धविवाह, विषमविवाह और दहेज की विषम-समस्याओ पर भी लोक-कवि ने

१–रामनरेश त्रिपाठी · कविता कौमुदी (ग्राम गीत) पृष्ठ २४०

वुआ और फूफा आदि का बुलाना अपरिहार्य है ही। इन गीतो में यह भी वर्णन मिलता है कि ये लोग जब सस्कार में भाग लेने के लिए चलते हैं तो मार्ग में वर्षा होने लगती है और उन बेचारो के 'सोरा सिंगार,' जनेऊ मे सम्मिलित होने की साध के कारण भीग जाते है।

जनेऊ हो जाने पर ब्रह्मचारी भिक्षा माँगता है क्योकि उसको वेदाध्ययन के लिए काशी जाना है। वह अपनी मातामही, माता, चाची, भाभी आदि से कहता है कि मुझे सत्तू और लड्डू दे दो, मैं 'काशी वनारस' वेद पढने जाऊँगा[1]। ये लोग निर्धनता के कारण असमर्थता प्रकट करते हैं और कहते हैं कि हम लड्डू और सत्तू कहाँ से लायें, तुम घर ही में वेद पढलो। एक ब्रह्मचारी की लगोटी और जनेऊ पर प्रश्न किया जाता है कि —

किन जादई है पीरी लगुटिआ
किन इउ जनओ कराओ।
आजा मेरे दई है पीरी लगुटिया आजी ने जनओ कराओ।
(इसी प्रकार पिता, माता, चाचा, चाची आदि भी)

कनउजी गीतो में लडकी के विवाह में ही मण्डप छाये जाने का उल्लेख है पर मैथिली लोक-गीतो में जनेऊ में भी मण्डप छाया जाता है। यह उस प्रदेश की विलक्षण प्रथा है —

हरिअर वसवा कटाएल मारव छायव रे।
आज मोर लाल के जनेउआ केहि-केहि नेवतव रे[2]।

अवधी, भोजपुरी, राजस्थानी, गुजराती, वगाली और उडिया के जनेऊ के गीतो से कनउजी-गीतो की तुलना करने पर हम इस निष्कर्ष

---

१ लावौ न आजी मोरी सतुआ औ दुइ लड्डुआ
काली बनारस जैयें वेद पढ़ि अइयें।

२ रामइकबाल सिंह राकेश'—मैथिली लोकगीत, पृष्ठ ६७।

पर पहुँचते है कि इनके वर्ण्य-विषय में बहुत समानता है। विवाह प्रथाओ में तो बहुत अतर मिलता है परन्तु जनेऊ-प्रथा सब प्रदेशो में लगभग एक सी ही प्रचलित है।

नहछू के गीत—

कन्नौजी-क्षेत्र में 'नाखुरो' (नहछू) विवाह के पहले होता है। इसी दिन पैर के नाखून प्रथम बार काटे जाते है। यह सस्कार भी बडी धूम-धाम से मनाया जाता है परन्तु इसे स्वतत्र-सस्कार नही कहा जा सकता। वास्तव में यह सस्कार विवाह-सस्कार का एक अगमात्र ही है। "नाखुरे" के गीतो में वर्णन मिलता है कि इस सस्कार में सभी सम्बन्धियो को निमन्त्रित किया जाता है। माता-पिता धन-धान्य लुटाते है। "नाखुर" करते समय का वर्णन बडा ही सुन्दर होता है, देखिए —

पतरी पतरी अगुरिया नउनिया गोरी।
करत राम जी को नाखुरो हो घूंघट खोली।
नउआ तौ कहे नउनिया से इउ नव थोरी।
राम औ लछिमन को नाखुरो लिएँ हम घोडी।

कही-कही 'नहछू' विवाह के बाद भी होता है[1]। शिष्ट-काव्य मे भी नहछू-सस्कार का वर्णन किया गया है। इस विषय का तुलसीदास का 'रामलला नहछू' उत्कृष्ट कोटि का ग्रथ है।

विवाह के गीत—

विवाह का महत्त्व और उसकी विविध प्रथाओ का विस्तृत वर्णन 'सास्कृतिकचित्रण' नामक अध्याय मे किया जायेगा। इन विविध प्रथाओ के समय सैकडो गीत गाये जाते हैं। इन गीतो का वर्ण्य-विषय अत्यन्त विस्तृत है। इनमे बालविवाह, वृद्धविवाह, विषमविवाह और दहेज की विषम-समस्याओ पर भी लोक-कवि ने

१—रामनरेश त्रिपाठी : कविता कौमुदी (ग्राम गीत) पृष्ठ २४०

अपने उद्‌गार प्रकट किए हैं। वर को खोजने के लिए पिता की परेशानी तथा विदा के समय के जो चित्र इन गीतो मे खीचे गए हैं, वे बडे ही मार्मिक हैं। इन गीतो मे एक ऐसी प्रथा का भी उल्लेख है जो आजकल यूरोप मे प्रचलित है, यह है वर का कन्या की खोज करना और उसके कुटुम्बियो से अपनी ओर से प्रस्ताव करना। कनउजी मे ऐसे गीत भी पाये जाते हैं जिनमे वर तपस्वी का वेश धारण करके कन्या के आगन मे बैठकर तपस्या करता है और उसके माता पिता आदि के पूंछने पर कहता है कि मैं तुम्हारी कन्या का वरण करना चाहता हूँ। विवाह के गीतो मे कही-कही कन्या सुन्दर और अपने अनुरूप वर के ढूंढने की प्रार्थना करती है तो कही उसकी माता अपने पति को कन्या के लिए वर खोजने के लिए प्रेरित करती है। कही बारात के आने और बाजा बजने का उल्लेख होता है तो कही माता जामाता को समझाती है कि वह उसकी पुत्री को किसी भी प्रकार का कष्ट न दे। इन गीतो मे विवाह की सजधज और ज्योनार का भी बडा ही अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन मिलता है[1]।

विवाह गीतों के भेद—विवाह के गीतो मे दो प्रकार के गीत पाये जाते हैं। एक तो वे हैं जो वधू के घर मे गाये जाते हैं और दूसरे वर के घर मे। कन्या-पक्ष के गीत करुण-रस से पूर्ण होते हैं। इसका कारण है कि माता पिता को बडी चिन्ता यह है कि उनकी कन्या, जिसको उन्होने पाल-पोस कर इतना बडा किया है, एक अपरिचित व्यक्ति के साथ चली जायेगी। उन्हे उसके जाने का इतना शोक नही है जितना यह सोचकर कि जाने पर वहा उसे सुख भी मिलेगा अथवा नही ? दूसरी ओर वर-पक्ष के अधिकाश गीतो मे शोभा-सजावट और धूम धाम का वर्णन मिलता है। इसका कारण भी यह है कि वर, उसके पिता तथा माता को इस बात की प्रसन्नता और उत्साह है कि उन्हे

---

1 परिशिष्ट में 'ज्योनार गीत' देखिए।

'वहू' की प्राप्ति होगी । नीचे दोनो पक्षो मे गाये जाने वाले गीतो के प्रकार दिये जाते है —

कन्या—पक्ष

१—पीली चिट्ठी के गीत ।
२—फलदान के गीत ।
३—भात मागने के गीत ।
४—घना के गीत ।
५—मण्डप गाडने के गीत ।
६—तेल चढने के गीत ।
७—पितृ-निमन्त्रण तथा देवता-निमन्त्रण के गीत ।
८—माय मँथरा के गीत ।
९—मण्डप छाये जाने के गीत ।
१०—द्वार-चार के गीत ।
११—चढावे (वस्त्राभूपण मागने और पहनने के गीत)
१२—भावरो के गीत ।
१३—कन्यादान के गीत ।
१४—द्वार रोकने के गीत ।
१५—वाती मिलाने के गीत ।
१६—ज्योनार के गीत ।
१७—कलेवा के गीत ।
१८—गारी ।
१९—वन्नी ।
२०—घोडी ।
२१—नकटा ।

वर—पक्ष

१—वरीक्षा के गीत ।
२—फलदान के गीत ।
३—भात मागने के गीत ।
४—घना के गीत ।
५—मण्डप गाडने के गीत ।
६—तेल चढाने के गीत ।
७—पितृ-निमन्त्रण तथा देवता-निमन्त्रण के गीत ।
८—'माय-मँथरा' के गीत ।
९—पुरइन पूरने के गीत ।
१०—मौर पहँनने के गीत ।
११—वस्त्र पहनने के गीत ।
१२—'निकरौसी' के गीत ।
१३—'नूनराई' उतारने के गीत ।
१४—उवटन के गीत ।
१५—कगन छुडाई के गीत ।
१६—मौर सिराने के गीत ।
१७—गारी ।
१८—वन्ना ।
१९—सोहाग-रात के गीत ।

अत अधिकाश गालियो मे अश्लीलता तथा फूहडपन का ही बोलबाला रहता है । उनमे यौनसकेतो की भरमार होती है। इनमे पुरुष के गुप्तअगो और उनकी विविध क्रियाओ तक का निर्लज्जता-पूर्ण वर्णन किया जाता है । विविध-वर्जित तथा अनुचित सम्बन्धो का प्रसग लाकर गाली देना तो सामान्य ही बात है ।

'ज्योनार'—ज्योनार-गीत भी भोजन करते समय गाये जाते है । इनमे शिष्टता का पूर्णरूप से निर्वाह होता है । विशेषरूप से भोजन के चोष्य, चर्व्य, लेह्य और पेय सभी प्रकार के पदार्थों के नाम इस अवसर पर गिनाये जाते है । इस श्रेणी मे आनेवाले किसी-किसी गीत मे इन पदार्थों की सख्या ७०-८० से ऊपर निकल जाती है[1], जब कि भारतीय भोजन के ५६ प्रकार ही बतलाये जाते है । भोज्य-पदार्थों मे फर्रुखाबाद की मिठाई, इत्र, बालूशाही आदि के वर्णन से जान पडता है कि यह गीत बहुत पुराने नही है ।

'बन्नी'—विवाह के विविध गीतो मे से 'बन्नी' भी एक प्रकार का गीत है और ये गीत पर्याप्तमात्रा मे उपलब्ध होते हैं । इनका प्रधान विषय है विवाह के लिए सजी हुई कन्या का वर्णन । कन्या सुन्दर रेशमीवस्त्र पहने है और विविध आभूषणो से सुसज्जित है। रुनुक-झुनक चल रही है । किसी-किसी गीत मे वर की बुराई भी मिलती है । वर सुन्दर नही है अत माता-पिता तथा अन्य सम्बन्धी वर को लौटा देना चाहते हैं परन्तु 'बन्नी' कहती है कि वह विषपान करके मरजाएगी —

मेरी लाडो रूप सरूप सामरो वर पाओ ।
छज्जा ऊपर माया बोली वर दीजी लौटाय ।
परदा भीतर लाडो बोली खाय जहर मरि जांय
भँउरी डारौ ये ही वर तें ।

---

१ परिशिष्ट देखिए ।

कुछ गीतो मे वर्णन मिलता है कि वर नदी के उस पार है और इस पार आने के लिए नाव चाहता है। उसके उत्तर मे कहा जाता है कि न तो यहाँ नाव है और न नाविक। यदि लाडली की चाह हो तो वर महाशय ही चले आवें —

नदिया किनारे दूल्हा ऐसो असवार है रे।
डारी नाव नवइया दूल्हा चले आमें रे।
ना मोरी नाव नवइया औ नाही खिवइया है रे।
होय लाडिली चाह दूल्हा चले आमें रे।

इन 'बन्नी' गीतो मे वर-वधू के पुर्वानुराग का भी वर्णन मिलता है। परन्तु उसके प्रेम मे सयम है जो भारतीय नारियो का विश्व-प्रसिद्ध गुण कहा गया है। जब प्रेमी स्त्री का स्पर्श करना चाहता है तो वह कहती है —

ना छुइओ दूल्हा ना छुइओ दूल्हा अबै तौ हम हैं कुआरि।
जब हमरे दादुलि सकलपैं तबही हुइबो तुम्हारि॥

'घोड़ी'— यह भी कन्या-पक्ष का गीत होता है। इन गीतो की सख्या बहुत कम है। इसमे उस घोडी की चाल, सजधज, बनाव-शृगार आदि का वर्णन होता है, जिस पर बैठकर दूल्हा ब्याहने जाता है —

बन्ना की घोडी तेज बन मैं अकेली ठाडी।
गरे तुम्हारे सोने को तोडा चमकै सम्हारै तेरी ठाडी।
अग तुम्हरे मखमल की चुलिया झगा सम्हारे तेरी ठाडी।

'बनरा'—बन्नी कन्या-पक्ष का गीत है और 'बन्ना वर-पक्ष का। पर कोई कडा नियम नही है कि अपने पक्ष के गीतो का ही गान किया जाय। दोनो पक्षो के गीत दोनो पक्षो मे गाये जा सकते है। 'बन्ना' गीतो मे वर के रूप रग और नाज-नखरे का वर्णन होता है। बन्ने के सिर पर चीर, कान मे नन्हे मोती गले मे सोने का तोडा, हाथो मे

स्वर्ण के ककण, अग मे केसरिया जामा, पैरो मे मखमली जूते, घोडी पर चढा हुआ तथा भाइयो की जोडी साथ मे—यह है उसकी एक झाँकी। कही वर भागा जा रहा है और लोगो से पुकार कर कहा जा रहा है कि पकडो-पकडो! इस प्रकार बन्ना के गीतो मे विविधभाव होते है। कुछ आधुनिक गीतो मे गान्धी का नाम भी आया है। चरखा कातने और कपडा बुनने का भी उल्लेख हुआ है—

'दिल्ली मैं सोर भओ भारी बन्ना मेरो गान्धी भओ है।
आजा तौ उइको चरखा चलावै आजी बिनै गजी गाढा बन्ना मेरो ।

'नकटा'—विवाह दाम्पत्य-जीवन की भूमिका है। अत इस समय गाये जाने वाले गीतो मे वर-वधू के भावी दाम्पत्य-जीवन के विषय मे चर्चा होनी स्वाभाविक ही है। इस प्रकार दाम्पत्य-जीवन के समस्त गीतो का विवाह-गीतो मे ही अन्तर्भाव हो जाता है। इन गीतो को 'नकटा' कहा जाता है।

पत्नी एक गीत मे पति को उपालम्भ देती हुई कहती है कि—

सइयाँ साँझ के निकरे है आए भोर भए।
कउने विलमाए कउने के बस मैं परे।
लउगन विलमाए जइफर वस मैं परे।
लउगन कटवइऐं जइफर कलम करे।
महलन ऊपर रनियाँ रूप-सरूप धरे।
रनियाँ मरवइऐं वलमा वस मैं करे।
पतिया लिखि भेजो नइहर खवरि करैं।
भइया चढि आमैं वलमा पै मार परैं।

ऐसे भी अनेको गीत है जिनमे पति से पत्नी प्रार्थना करती है कि वह परदेश न जावे। वह सदैव उसके साथ ही रहना चाहती है। इसी-लिए कहती है कि—

चाकरी मति जइओ पिया प्यारे।
पाँच रुपइया की तुम्हरी चाकरी दस दीवो कलदार
घरै में परे रहिओ मेरे प्यारे।

कभी-कभी ऐसा वर्णन भी मिलता है जिसमे पत्नी कहती है कि मैं चक्की पीसकर, चरखा कातकर कमाऊँगी और हम दोनो यही चैन की वशी वजाएँगे। परदेश जाने मे वहुत ही दुख है। जव पति परदेश चला जाता है तो पत्नी के लिए जीवन भार हो जाना है। यद्यपि उसके लिए वैभव तथा समृद्धि है परन्तु प्रियपति के विना सव व्यर्थ ही है। महल भी उसके लिए भीपण झकार करते हैं —

ठाडे महल झहनायं अकेले राजा राम विना।

विरहिणी की पति के वियोग मे वडी ही वुरी स्थिति हो जाती है। उसका खाना पीना सव कुछ व्यर्थ है क्योकि पति पास नही है —

नैनन जन ढुरि जायरे जव सुधि आवै पिया की।
सोने के थारन भुजना परोसे भुजना परे अलसाय रे
जव सुधि आवै वलम की।
सोने के गडुआ गगा जल पानी गडुआ परे अलसाय रे
जव सुधि आवै वलम की।
पाना पचासो को विरिया लगाई विरिया परी अलसाय रे।
जव सुधि आवै वलम की।
चुनि-चुनि कलिअन सेजा विछाई सेजा परी विलखाय रे
जव सुधि आवै वलम की।

पत्नी पति से वियुक्ता है। वह प्रिय पति की प्रतीक्षा मे सारी रात जागती है और उसके साथ ही रात भर दीपक भी जलता है। सध्या से वह प्रतीक्षा करती है और प्रात काल हो जाता है पर वह निर्मोही फिर भी नही आता। उसके हृदय मे उद्गार फूट पडते हैं —

सेजडिया सूनी स्याम नहिं आये।
हरे हरे दिअना दीप के जराए सिगरी रात, स्याम नहिं आए।
पूरब तरइया पछिम गई है चन्दा गओ पिछवारे, स्याम नहिं आए।

इस गीत मे न तो स्त्री आह भरती है और न कराहती है। वह सीधा सादा वर्णन करती है कि प्रतीक्षा करते-करते प्रात काल हो गया पर वह आया नही। इसी कारण तो उसकी वेदना की यहाँ चरम सीमा है।

बिदा के गीत—जब लडकी की विदा होती है तो उस समय भी गीत गाये जाते हैं। कनउजी मे इन गीतो को बिदा के गीत की सज्ञा दी गई है। इस अवसर के राजस्थानी गीतो को 'ओलूँ', भोजपुरी के गीतो को 'गवना' और मैथिली-गीतो को 'समदाउनि' कहा गया है। इन गीतो मे पुत्री के प्रति माता-पिता का प्रेम उमड पडता है और पुत्री के 'नइहर' छोडने के मोह के कारण अश्रुपात देखकर पुरुषो की आँखें भी छलछला पडती हैं। विवाह के अन्य गीतो मे आनन्द, उल्लास एव परिहास का वर्णन होता है, केवल 'विदा के गीत' ही ऐसे होते है जिनमे घोर-विषाद की छाया पडी होती है। माता विदा के समय लडकी का रोना नही देख सकती। अत वह उसको सोती हुई ही भेज देती है। एक गीत मे इसका मार्मिक वर्णन किया गया है —

आम नीम तरे ठाडी बेटी, माया कलेवा लये ठाडि हैं रे।
खाय न लेव मोरी बेटी परदेसिन तुम्हारो कलेवा बडी दूरि रे।
सोउत बेटी की डुलिया फदामैं सोउत करैं असवार है रे।
इक बन नागी दुसरो बन नागो तिसरे मैं पहुँची जाय है रे।
परदा खोलि जब बेटी जू देखो छूटो नइहर को देस है रे।
तो मइके को कोई नाईं बाप को कोई नाईं।
ए हो मारि कटारि मरि जाउ तो मइके को कोई नाईं रे।

कही भाई अपनी वहन की पालकी के डण्डे को पकड़कर रोता दिखाई पडता है तो कही वहिन अपने भाई, माता, पिता और वहिनो के वियोग के दुख से दुखी होकर रोती, कलपती और सिसकती हुई पाई जाती है। एक गीत मे लडकी, उसके भाई और माता के दुख को मार्मिक अभिव्यक्ति हुई है। माता को इस वात का दुख है कि उसने व्यर्थ मे पुत्री को जन्म दिया क्योकि आज वह जामाता के घर जा रही है। गीत का साराश यह है। 'कोने आतर' मे गुडिओ को तथा रोती हुई सहेलियो को मैने छोड दिया। अपने पिता के घर को छोडकर ससुर के साथ जा रही हूँ। छोटे भाई ने पालकी का डडा पकड कर कहा कि "वहन कहाँ जा रही हो।" "अपने पराये और पराये अपने होते है, यही कलियुग का व्यवहार है।" पुत्री को भेजकर पिता वापस आए हैं। सारा घर तथा आँगन रोता दिखाई देता है। वज्र सा हृदय फटता क्यो नही ? "मेरा घर और आगन भर गया है। मेरा पुत्र वहू ले आया है। मैं पुत्री को जन्म नही दूगी क्योकि उसे जामाता ले जाता है। मैं तो 'नितउठि' पुत्र को जन्म दूंगी क्योकि वह वधू लावेगा।"

सुहाग-रात के गीत—विदा के वाद वधू ससुराल पहुँचती है और वहाँ पर सोहाग-रात मनाई जाती है। सोहाग-रात के भी अनेको गीत मिलते हैं। इन गीतो मे पति-पत्नी यही कामना करते है कि उनके मिलन की यह रात्रि वहुत वडी हो जावे। उसमे सूर्य से प्रार्थना की गई है वे उदित न हो और चन्द्रदेव से प्रार्थना की जाती है कि वे रात्रि को वढा दें ——

आज सुहाग की राति चन्दा तुम उइओ।
चन्दा तुम उइओ सुरज जिनि उइओ।
मोरे हिरदै विरम जिनि करिजो मुरग जिनि वुलिजो।
आज चन्दा करो वडी राति चन्दा तुम उइओ।

सुहाग-रात विवाह सस्कार की चरम परिणति है अत इसके पश्चात् विवाह के गीत भी समाप्त हो जाते है।

ऋतु तथा पर्व-गीत

'फाग'—वसन्त ऋतु के फाल्गुन मास मे गाये जाने वाले गीतो को 'फाग' और 'होरी' कहते है। जिस प्रकार सावन के गीतो में स्त्रियो के कण्ठ से स्वर-लहरी प्रवाहित होकर वातावरण को और भी आद्र बना देती है उसी प्रकार 'होली' का गीत पुरुष के कण्ठ से नि सृत होकर वसन्त के उन्माद को द्विगुणित कर देता है। इस अवसर पर गीत पर गीत फूट पडते है। रात और दिन लोगो को 'फाग' के गाने की ही धुन सवार हो जाती है। फाग का प्रधान-विपय राधा-कृष्ण का होली खेलना है जिसमे अबीर गुलाल और पिचकारी का विशेप रूप से उल्लेख होता है। इन गीतो में राधा-कृष्ण के प्रेम और क्रीडा का वणन भी मिलता है। कुछ गीतो मे शिव का नाम भी आ जाता है। सभवत होली के समय भग का प्रयोग शिव का होली से सम्बन्ध होने के कारण ही आया है। इस अवसर पर राधा-कृष्ण और शिव का सयोग अस्वाभाविक नही हैं, क्योंकि तीनो ही प्रजनन और यौन-पक्ष के प्रतीक है। राधा-कृष्ण ने तो प्रजनन को मूर्त रूप दे दिया है और शिव ने इसको दार्शनिक रूप। होली वास्तविकता मे फसल का पर्व है। इसमे सृजन का तत्वदर्शन होता है। यही कारण है कि होली मे नग्नता और अश्लीलता का भी प्रदर्शन हाता है।

होली के समय गाये जानेवाले गीतो की दो श्रेणियां होती है। एक तो इस अवसर के क्रीडा-विलास की, और दूसरी ओजपूर्ण गीतो की। होली मे महाभारत, रामायण के विविध युद्धो की कथा का बडा ही ओज-पूर्ण वर्णन होता है। इसमे सीता-वनवास और लक्ष्मण-शक्ति आदि मार्मिक-स्थलो की भी कमी नही रहती। कुछ होलियो मे उपदेश भी रहता है।

इन होली के गीतो मे सबसे बडी विशेषता यह है कि इनका एक स्वतन्त्र राग होता है। इसके गाने की विधि भी बडी विचित्र होती है। गीत मे सम्मिलित होने-वाले सब लोग एक साथ ही गाते हैं। ढोलक और 'झीका' दो ही वाद्य-यन्त्र पर्याप्त होते हैं। इस गान को सामूहिक गान (कोरस) कहा जा सकता है।

क्रीडा-विलास की होलियाँ अनेको मिलती हैं। उनमे से एक यहाँ पर दी जाती है —

होरी खेलि रहे नन्दलाल मथुरा की कुज-गलिन मे।
अरे कहाँ ते आईं राधा प्यारी अरे कहाँ ते आये नन्दलाल,
अरे कहाँ ते आये गोपी ग्वाल,
मथुरा की कुज-गलिन मे।
अरे पूरब ते आईं राधा प्यारी अरे दखिन ते आये नन्दलाल,
अरे पछिम ते आये गोपी ग्वाल,
मथुरा की कुज-गलिन मे।
अरे रग तो लाईं राधा सखि प्यारी अरे पिचकारी नन्दलाल,
अरे भरि भरि मारैं गोपी ग्वाल,
मथुरा की कुज-गलिन मे।

क्रीडा-विलास मे देवर और भाभी के रगगुलाल खेलने का भी उल्लेख होता है। ओजपूर्ण होलियो मे वीर-रस की सृष्टि की जाती है। भीम और कीचक के युद्ध का एक प्रसग दिया जाता है —

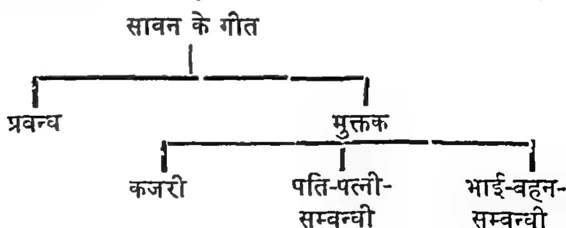
ताल बजाय भिम्म दहलानो—ताल बजाय भिम्म दहलानो हर।
ताल बजाय भिम्म दहलानो बादर सो घहरानो।
फूलो अग भओ जब दूना तब कीचक घबरानो। ताल हर।
भिम्मा जोधा यो उठि बोलो भेद न तुमने जाना।

लडि ले आज तू अधम अभिमानी तोरो काल नियरानो ।
दोनों लडत मस्त जइसे हाथी भुज गहि भिम्मा तानो ।
अइसी पटकि मारी धरती मे कढत प्रान कीचक ठहनानो ।
नौबतराय कहैं कर जोरी भेद न केऊ जानो ।
बाहर गाँव लहास लइ डारी भिम्मा बदलो भेस जनानो''

होली के अवसर पर गाये जाने वाले गीतो मे कुछ ऐसे गीत होते हैं जिन्हे 'कबीर' कहते हैं । इनमे यौन-सम्बन्धो को लेकर अश्लीलता का प्रदर्शन होता है । स्त्रियां भी होली गाती है, परन्तु उनके गीतो मे साधारण राग ही होता है ।

सावन क गीत—श्रावण मास बडा ही मनोरम होता है । श्याम-मेघो का गर्जन सुनकर मोर कूक उठते है । कभी घटा उमडती है, कभी दामिनी दमकती है और बूंदे इस प्रकार रिमझिम-रिमझिम करती हुई गिरती है मानो सगीत की 'मूर्छना' हो रही हो । दादुर अपना अलग राग अलापते है और झिल्ली अपनी झनकार सुनाती है । चारो ओर हरीतिमा ही दृष्टिगोचर होती है । प्रकृति की ऐसी सुन्दर पृष्ठभूमि मे ही सावन के गीत गाये जाते है । स्थान-स्थान पर झूले पड जाते हैं और स्त्रियां झूला झूलती है । इस महीने को गीतो का महीना कहा जाय तो अत्युक्ति नहीं होगी[1] ।

सावन के विविध गीतो का हम निम्नाकित विभाजन कर सकते हैं—



---

१ डा० सत्येन्द्र ब्रज लोक साहित्य का अध्ययन पृष्ठ ३०६ ।

प्रवन्ध-गीत वडे ही रोचक होते हैं। इनमे किसी मे तो छोटी कथा होती है और किसी मे वडी। अधिकाश गीत स्त्री और पुरुप के परस्पर मम्वन्धो के हैं। प्रधान-विपय तो कोई कहानी होती है और प्रारम्भ किसी उद्यान अथवा कुआँ के दृश्य से कराया जाता है। मुगलो के अत्याचार, पति का भ्रष्टाचारी होना, सौत की ईर्ष्या आदि इन कथाओ का विपय होता है। 'चन्द्रावली'[1] का प्रसिद्ध वृत्त भी इन गीतो मे मिलता है। इन गीतो मे पति का दक्षिण 'चाकरी' करने के लिए जाने का उल्लेख भी मिलता है। इससे सिद्ध होता है कि इन गीतो की रचना मराठो के उत्कर्प के समय हुई थी। इन गीतो मे एक विशेपता और है कि इन 'रोमासो' के अधिकाश नायक काम करनेवाले सेवक अथवा व्यवसायी जैसे धोवी, नाई, सुनार तथा बनजारे आदि निम्नस्तर के लोग ही होते हैं। एक गीत मे तो राजा की वेटी का वनजारे से प्रेम और उमके साथ भाग जाने का उल्लेख हुआ है।

कजरी—सावन के गीतो मे कजरी मुक्तक-गीत होता है। घिरनेवाले मेघो की कालिमा के कारण ही इसका नाम कजली पडा है। भारतेन्दु ने मध्य-भारत के एक दादूराम राजा के वृत्त से सम्वन्धित होने के कारण इसका नाम 'कजली' कहा है। डा० ग्रियर्सन का मत है कि श्रावण तथा भाद्रपद के शुक्ल पक्ष तृतीया का नाम—जिन दिन यह गीत गाया जाता है—ही कजली तीज है। इस नाम से भी इसकी उत्पत्ति मानी जाती है[2]। कजली को हिंडोला गीत भी

---

१. चन्द्रावली की कथा को लेकर 'व्रज', 'कनउजी', 'अवधी' और 'भोजपुरी' सभी में गीत मिलते हैं। यह कहना कठिन है कि मूल रूप में यह कहाँ का गीत है।

२ डा० ग्रियर्सन—ज० ए० सा० वं० भाग ५३ खण्ड १ (१८८४) पृष्ठ २३७।

कहते हैं। इस गीत मे ऋतु की शोभा का वर्णन वडा ही सुन्दर मिलता है। रिमझिम-रिमझिम फुहार पड रही है, झिलमिल-झिलमिल वायु वह रही है, नारगी की डाल हिल रही है तथा कोयल कूक रही है—

रिमझिम परै फुहार औ बुंदियाँ टपकि रही।
झिलिमिलि वहै बयारि पवन झलि डोलि रही।
डोलै नौरगिया की डार कोइलिया कुहुकि रही।
गरजै घटा घनघोर मुरइला कूकि रहे।

कजली का वर्ण्य-विषय प्रेम है। इसमे शृगार के उभय-पक्ष की झाँकी मिलती है। एक गीत मे वर्णन है कि पत्नी पति के पास है, उसके लिए वह नाना प्रकार के व्यजन तैयार किये बैठी है और अपने पति से खाने के लिए आग्रह कर रही है। भोजन करने के पश्चात् वह पति को शय्या पर सुलाना चाहती है —

कि अरे रामा हीरा जडी सन्दूक मोतिन की माला हे हारी।
कि अरे रामा जेमौं ननद जू के भइया तुम्हारे परैं पइयाँ हे हारी।
कि अरे रामा सोने के गड्आ गगाजल पानी रामा हे रामा।
कि अरे रामा पिऔ ननद जू के भइया तुम्हारे परैं पइयाँ हे हारी।
कि अरे रामा पाना पचीसी की विरिया लगाई रामा हे रामा।
कि अरे रामा रचौ ननद जू के भइया तुम्हारे परैं पइयाँ हे हारी।
कि अरे रामा फूलनवारी की सेजा लगाई रामा हे रामा।
कि अरे रामा सोवौ ननद जू के भइया तुम्हारे परे पइयाँ हे हारी।

यह तो शृगार के सयोग-पक्ष का वर्णन हुआ। अव वियोग-पक्ष का भी कुछ उल्लेख करना होगा। वियोगिनी-स्त्री पति की प्रतीक्षा करती है। मेघ वरसने आगए परन्तु उसके पति नही आए अत वह कहती है —

स्याम नहिं आए आई स्याम वदरिया[1]

---

१ इस पक्ति को सूरदास की दो निम्नपक्तियों से मिलाइये—

वरु ये वदराऊ बरसन आये।
अपनी अवधि जानि नन्दनन्दन गरजि गगन घन छाये।

एक वियुक्ता-स्त्री स्वप्न मे अपने पति को देखती है कि वह 'जोगी' हो गया। वह अपने पति के साथ रहना चाहती है अत अपने यौवन और सुकुमारता की चिन्ता न करके स्वय भी जोगिन बन जाना चाहती है और सखि से कहती है—

सपने मे सखी सइयाँ जोगी भए हमऊ जोगिन हुइ जाय।
जोगी के लाले-लाले कपडा हो जोगी के लम्बे-लम्बे केस।
जुगिया बजावै सोने की किंगिरी जोगिन गावै मल्हार।
हमऊँ जोगिन हुए जाय।

सावन के गीतो मे करुणा की भावना भी कूट-कूट कर भरी गई है। इस सम्बन्ध मे वे गीत उल्लेखनीय है जिनमे स्त्री ससुराल मे कष्ट पाती है और मायके की बार-बार स्मृति उसके हृदय को बेध जाती है। इस विषय के गीत भारत के सभी प्रदेशो मे मिलते है। 'मायके' की बार-बार स्मृति आने के कारण इन गीतो को गढवाली लोक-गीतो मे 'खुदेड गीत' नाम दिया गया है। सामान्यतया खुद का अर्थ 'याद' किया जा सकता है परन्तु इसमे उतने भाव नही जितने 'खुद' मे। एक स्त्री को ससुराल मे बहुत कष्ट है। उसे मायके की याद आती है और वह माता के पास सदेश भेजती है। इस भाव को तथा किस प्रकार भाई आता है और किस प्रकार बहन की दशा को देखकर माता से निवेदन करता है, आदि की बडी ही मार्मिक अभिव्यक्ति नीचे दिए गए गीत मे हुई है—

'जो तुम माया मोरी धरम की हुइओ साउन बीरन पठइओ।
'बाप तुम्हारे बेटी देस के राजा ओऊ गए परदेस।
जेठो बिरन बेटी बनिया के लोभी नित उठि जइए ससुरारि।
लहुरो बिरन बेटी निपट अनारी नदि-नारे देगि डिराय।'
ऊँचे चढि-चढि बहिनी देखै आज बिरन मेरो आवै।

आइ गई डुलिया आइगए कहरवा 'बइठौ मेरे भइया तखत बिछाय ।
कहि लेव माया जू की बात ।'
'माया तो बहिनी मोरी अन्न न पानी भउजी कही पैलाग ।
वइठौ न वहिनी मेरी मचिआ जो डारि कहि लेव सासु जी की बात ।'
'सासु तौ बिरना मोरे अइसी निरदयिनि सोउन कल ना देय ।
रांधी मछरियाँ सीके धरी औ रोटी पै नून न देय ।
माया अगारू जनि कहिऔ बिरना पेट मारि मरि जायँ ।
भउजी अगारू जनि कहिऔ बिरना ओउ नइहर कहैं जाय ।
वहिनी अगारू जनि कहिऔ बिरना ओऊ ससुरे नहिं जायँ ।'
ऊँचे चढि-चढि माया हेरैं आज धिआ मोरी आवै ।
छूछी है डुलिया छूँछे कहँरवा छूँछे है पूत हमार
'उतरौ न डुलिया उतरौ कहाँर तुम बइठौ न पूत तखत बिछाय ।
कहि लेव बेटी जू की बात[१] ।'
'वहिनी तौ माया मोरी अइसे रोवै ज़इसे मघा के बूंद ।
देही तौ माया मोरी अइसी मइली जइसे दिवाल को लेस ।
कपडा तौ माया मोरी अइसे मइले जइसैं तेलिया को चीकट ।'
निकरे न पूता निपट कपूता वहिनी रोउत कइसे छोडी ।
लावौ न माया मोरी ढाल तरवरिया देस मारि धिया देयँ ।

इस गीत मे स्त्री को विपम-वेदना एव दु ख है परन्तु फिर भी उसे अपनी माता का वहुत ध्यान है । वह भाई से कहती है कि मेरा यह दु ख माता से मत कहना । साथ ही साथ इस दु खमय जीवन को काटती हुई भी उमको ससुराल की कही वदनामी न हो जाय । अत वह कहती है कि इन वातो को भाभी से भी न कहना नही तो वह अपने मायके मे मेरी हँसी उडाएगी ।

कुछ गीतो मे ससुराल से स्त्री मायके को काग द्वारा भाई का समाचार लेने को भेजती है । उसी समय भाई भी आ जाता है । वह वहन के

लिए कुछ भी नही लाया अत सास ससुर आदि भाई का अपमान करते है। वह लौटकर जब दूसरी बार बहुत सा सामान लाता है तो वडा ही सम्मानित किया जाता है। इस प्रकार धन का कितना महत्त्व है, इसका उल्लेख नीचे के गीत मे हुआ है —

वीर आए कुछौ न लाए सासु ननद मुख मोरी जी।

× × ×

वीर आए सब कुछ लाए सासु ननद हँसि मुख बोली जी।
हाथन मेंहदी पाँयन विछिआ कइसे मिलैं राजा वीर जी।
धोय डारों मेंहदी काढि डारो विछिआ झपटि मिलो राजा वीर जी।
राँधौ न वहुअरि मोती छरहर भातू अउर गेहुन की रोटी जी।
सारे वहनोई जेउँन बइठे सारे विदा की कही तौ जी।
सजि गई डुलिया सजि गए कहँरवा सजी भइआ जी की वहिनि जी।

ससुराल के लोग धन के कितने लोभी है, इसका भी वर्णन इसमे मिलता है। देखने मे तो यह किसी भाई-वहन की कहानी सी जान पडती है परन्तु किसी एक भाई-वहन का वृत इस गीत मे नही है, वस्तुत समाज के प्रत्येक भाई, वहन और माता की आत्मा इसमे झाकती है।

वारहमासा—ऋतु-गीतो मे 'वारहमासा' वडा ही लोकप्रिय-गीत है। लोक-साहित्य ही मे नही शिष्ट-काव्य मे भी इसकी परम्परा पाई जाती है। हिन्दी के कवि जायसी ने पद्मावत 'महाकाव्य' मे भी नागमती के विरह का वर्णन अषाढ मास से प्रारम्भ करके ज्येष्ठ मास मे इसे समाप्त किया है। इसकी शैली वडी ही सक्षिप्त है —

सावन वरस मेह अति पानी।
भरनि परी हौं विरह झुरानी।
लाग पुनरवसु पीव न देखा।
भइ वाउरि कह कत सरेखा॥

वस्तुत 'वारहमासा' वियोग का गीत है। इसमे वियोग-दुख से दुखी

नायिका पर वर्ष के विविध महीनो की क्या प्रतिक्रिया होती है, इसी की अभिव्यक्ति की जाती है। प्रत्येक ऋतु और मास अन्य लोगो के लिये सुखदायक हैं पर विरहिणी को वही दु ख-सागर मे डुबो देते है। इन गीतो मे मासो अर्थात प्रकृति का वर्णन है और नाम से भी अनुमान किया जा सकता है कि यह प्रकृति-वर्णन के गीत हैं परन्तु प्रकृति का आलम्बन रूप मे वर्णन नही है। इनका प्रकृति-वर्णन वियोग-शृगार के उद्दीपन-विभाव के अन्तर्गत आता है। जिस प्रकार सस्कृत-साहित्य मे प्रवास-कथन मे 'मदाक्रान्ता' छन्द का प्रयोग किया जाता है उसी प्रकार लोक-गीतो मे वियोग-वर्णन के लिए 'बारहमासा' ही बहुधा प्रयुक्त हुआ है। साहित्य मे षट्ऋतु वर्णन का जो स्थान है, वही लोक-गीतो मे 'बारहमासा' का। एक बारहमासे मे स्त्री का पति परदेश गया है विभिन्न मासो मे अपने पति को बिना देखे वह चिन्ता से तप्त हो रही है। उसे किसी प्रकार धैर्य नही बँधता। फागुन मे सब सखियाँ होली खेल रही हैं परन्तु अपने पति के बिना वह किससे होली खेले। बारह-मासो के भाव, भाषा और शैली तथा प्रवाह के देखने के लिए यहाँ एक पूरे बारहमासा का देना अप्रासगिक न होगा —

चैत मास चिन्ता अति बाढी प्रान रहे चित लेखे।
कइसे धीर धरौं मोरी सजनी बिन हरि मोहन देखे।
बइसाख मास रितु लागी री सजनी सब कोइ मण्डिल छाये।
हमरे तो कन्त बिदेस है छाये हमरे मण्डिल को छावैं।
जेठ मास रितु लागि री सजनी चौलित पवन झकोरैं।
अइसी पवन चलैं नित बासर अग-अग करि टोरैं।
असाढ मास रितु लागी री सजनी चौलित बादर घेरे।
बिजुली चमकै कोई न सदरसै रिमिकि झिमिक जल बरसैं।
साउन मास रितु लागी री सजनी सब सखि झूला झूलैं।
हमरे तो कन्त बिदेस मे छाये हम झलुआ कइसे झूलैं।

भादों मास रितु लागी री सजनी चौलित अंधियरिया छाई।
मोर को वानी पपिहरा बोलै दादुल[1] वचन सुनावै।
क्वार मास रितु लागी री सजनी सब कोई दान लुटावै।
हमरे तो कृस्न विदेस है छाये हमरे को दान लुटावें।
कातिक मास रितु लागी री सजनी सब कोई गंगा हनाय।
हमरे तो कृस्न विदेस छाय रहे हमरे को गंगा हनाय।
अगहन मास रितु लागी री सजनी सब सखि गउने जायँ।
हमरे तो कृस्न विदेस छाय रहे हमरो को गउना लेय।
पूस मास रितु लागी री सजनी जाड़ा बहुत सतावै।
हमरे तो कृस्न विदेस छाय रहे हमरा जाड़ा कइसे छूटै।
महा मास जब लागी री सजनी मालिन बउर लइ आई।
हमरे कृस्न विदेस हैं छाये हमरे बोर कउन लेय।
फागुन मास रितु लागी री सजनी सब सखि होरी खेलैं।
हमरे तो कृस्न विदेस है छाये हम होरी कइसे खेलैं।

इस 'बारहमासा' में विविध महीनों में जो क्रिया-कलाप किये जाते हैं, उन सभी में अपने पति का वियोगिनी को स्मरण आता है और उन सब क्रियाओं को करने में वह असमर्थ हो जाती है। बारहमासों में पत्र द्वारा संदेश भी भेजा जाता है। स्त्री कहती है कि निर्मोही! अब तो आजा। मैं तेरे लिये सदैव पलक पांवड़े बिछाये रहती हूँ। बारहमासे प्रधानतया वर्षा-ऋतु में और सामान्यतया सभी ऋतुओं में गाये जाते हैं।

व्रत-सम्बन्धी-गीत—

व्रत-सम्बन्धी-गीत अधिकांशतया स्त्रियों के ही होते हैं। स्त्रियों में धर्म-भावना अधिक होती है और इसी कारण वे 'व्रत' करती हैं और साथ ही गीत भी गाती हैं। परन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि पुरुषों

1 दादुर।

के व्रत-गीतो का नितान्त अभाव है। देवी के व्रत के गीत स्त्रियाँ भी गाती हैं और पुरुष भी। यह बात अवश्य है कि व्रतो के गीतो का गायन सामान्यतया सभी स्त्रियाँ करती है जब कि पुरुषो का एक सीमित समुदाय। पुरुषो मे केवल 'भगत' ही होते हैं जो देवी का 'व्रत' रखते हैं और गीत भी गाते हैं। यो तो गोधन, करवा-चौथ, हरितालिका, देवोत्थानी-एकादशी आदि के गीत पाये अवश्य जाते हैं परन्तु विशेष महत्त्व के गीत देवी के ही है। अत यहाँ पर देवी के गीतो का ही परिचय दिया गया है।

देवी के गीत—देवी के गीत दो भागो मे बाटे जा सकते हैं। एक वे जो स्त्रियाँ घर मे तथा जागरण मे गाती हैं और दूसरे वे जो 'भगत' गाते हैं। स्त्रियो के गीतो को भी दो भागो मे बाँटा जा सकता है, एक स्फुट और दूसरे प्रबन्ध-गीत। स्फुट-गीतो मे देवी की प्रार्थना, स्तुति, उसके पराक्रम का उल्लेख, उसके स्थान तथा शोभा का वर्णन, जाति की तैयारी तथा यात्रियो की कठिनाइयो का वर्णन मिलता है।

यह गीत स्त्रियाँ तथा पुरुष विशेष रूप से चैत्र तथा क्वाँर मास मे गाते हैं। चैत्र तथा क्वाँर मास के शुक्ल-पक्ष मे प्रतिपदा से लेकर नवमी तक व्रत रखे जाते हैं और इसे नवरात्र-व्रत (नौ दुर्गा) कहा जाता है। इन दिनो रात्रि-जागरण (रतिजगो) भी होता है और स्त्रियाँ रात्रि भर जागती हैं तथा गीत गाती हैं। कभी-कभी स्त्रियाँ नृत्य भी करती है। इस प्रदेश मे सात देवियो (सप्त-मातृका) की पूजा की जाती है। इन सात देवियो के अतिरिक्त शीतला देवी की भी पूजा तथा व्रत किया जाता है।

शीतला देवी के गीत—विज्ञान चेचक को एक रोग मानता है। परन्तु लोक-विश्वास मे उसे शीतला-देवी कहा जाता है। इतने भयकर रोग का, जिसमे शारीरिक तपन की चरमता होती है, शीतला नाम

सुनकर आश्चर्य होता है। डा० तारा पुरवाला[1] के मत से मनुष्य की यह प्रकृति होती है कि वह नीच तथा भयकर वस्तु को किसी सुन्दर नाम से पुकारने का प्रयत्न करता है। जैसे रसोई बनानेवाले ब्राह्मणों को महाराज कहते हैं। इसी प्रकार से इस भयकर बीमारी को शीतला कहने लगे हो तो कोई आश्चर्य नहीं। चेचक की भयकरता के कारण ही लोक-जीवन मे इसे देवी का रूप मिल गया है।

जब बच्चो को चेचक निकलती है तो स्त्रियां शीतला से बच्चे की रक्षा की याचना करती हैं और उनकी प्रशसा भी करती हैं जिससे वे रोगी को नीरोग कर दें। चेचक के प्रकोप के समय तो उनकी पूजा होती ही है, साधारण-अवस्था मे स्त्रियां अपनी शीतला का आदर-सम्मान करती हैं। यदि उनका वश चले तो वे शीतला देवी को अपने देश मे लायें और उनके भोजन जलपान आदि का भी प्रबन्ध करें।—

पामो तौ लावौ यहि देस मैं सीतली कौ।
जो मेरी सीतली को भूखा लगति है भुजना जिमामैं
यदि देस मैं सीतली कौ।
जो मोरी सीतली को प्यासा लगति है गड ुआ पियामैं
यहि देस मैं सीतली कौ।
जो मेरी सीतली को तनवा लगति है बिरिआ रचामौं
यहि देस मैं सीतली कौ।
जो मेरी सीतली को नींदा लगति है सिजिआ सुआमैं
यहि देस मैं सीतली कौ।

स्त्रियां शीतला देवी का जयजयकार करती हैं परन्तु उनको खिलाने पिलाने की बहुत बडी समस्या है क्योंकि जब वह दूध पिलाना चाहती हैं तो देखती ह कि उसे बछडे ने जूठा कर दिया है। चावल गगाजल और पुष्पो को भी किसी न किसी ने जूठा कर दिया है —

१—तारापुरवाला . एलिमेंट्स आफ दी डाइस आफ लैंग्वेज

मीतला महरानी की जइ जइ बोलो ।

गउआ को दूध मइआ कइसे चढामैं बछरा ने डारो है जुठारि-
की जइ-जइ बोलो ।

माठी के चाउर मइआ कइसे चढामे चिरई ने डारे हैं जुठारि-
की जइ-जइ बोलो ।

गगा को नीर मइआ कइसे चढामैं मछरी ने डारो है जुठारि-
की जइ-जइ बोलो ।

वारी को फूल मइआ कइसे चढामैं भउरा ने डारो हैं जुठारि-
की जइ-जइ बोलो ।

शीतला के अतिरिक्त अन्यदेवियो की पूजा तथा प्रशसा के अनेको गीत है । एक ही गीत मे फूलमती और काली देवी की आराधना की गई है —

अइबे की फूलमती आइगई पहाडमती,
कालिका मोरी मइआ यही बन ।
मोने के थारन भुजना वनाये जीवे को फूलमती,
आइ गईं पहाडमती कालिका महरानी यही बन ।
(इसी प्रकार जल-पान तथा शय्या)

स्त्रियाँ देवी को विभिन्न वस्तुएँ विभिन्न कामनाओ के लिए अर्पित करती ह । प्रश्नोत्तर रूप मे इस विपय का वर्णन नीचे के गीत मे हुआ है —

काहे के काजे मइआ धजा रे नारियर
काहे के काजे मइआ दोनन मेवा ।
दूधा क काजे मइआ धजा रे नारियर
पूना के काजे मइआ दोनन मेवा ।

और उनकी प्रार्थना पूरी भी हो जाती है तब वे कहती है —

दूध तो दओ मइआ भरि के दुधाडी

पूत दओ भरि गोदी मोरी मइआ।

'भगतो' के देवी-गीतो मे भी देवी की प्रशसा होती है। वे भी भांति-भांति की सासारिक-समृद्धियो की याचना करते है। देवी के मन्दिर मे दीप के प्रसग का एक गीत यहाँ दिया जाता है—

उजेरो री मइआ धिजना का माझ भई।
काहे के धिजन काहे केरी वाती काहे के घिआ जरे।
सोने के धिअन कपुर की वाती सुरई के घिआ जरे रे।
जरि गए धिअन अरफि गई वाती मडिल भए अँधियार भुमन मेँ।

देवी के लम्बे-लम्बे गीत भी बहुत पाये जाते है। इनमे विविध देवियो ने विविध राक्षसो का किस प्रकार नाश किया तथा भक्तो पर किस प्रकार वत्सलता दिखलाई, आदि विषयो का विस्तृत वर्णन मिलता है।

काम-काज करते समय गाए जानेवाले गीत—

काम करते समय या राह चलते समय गाये जानेवाले गीतो को काम-काज के गीत कहा जा सकता है। इनका मुख्य उद्देश्य श्रम-परिहार तथा मनोरजन होता है।

चक्की के गीत—चक्की को 'जानसार'[1] भी कहते हैं। इसीलिए चक्की के गीतो को जात के गीत भी कहा जाता है। चक्की के गीत श्रम निवारणार्थ तो गाए ही जाते हैं, परन्तु साथ ही साथ वे पीसने वाली स्त्रियो के मन को प्रेम,करुणा और उदारता से भिगोकर कुटुम्बियो के असह्य व्यवहार मे उत्पन्न होनेवाले विकार को भी निकालते रहते है। जात के गीतो के एक-एक शब्द स्त्री सदाचार की नीव की एक एक ईट है।[2] इन गीतो मे करुणरस की बडी ही मार्मिक अभिव्यजना

१—यन्त्र-शाला का जातसार विकसित रूप है।
२—प० रामनरेश त्रिपाठी—कविता कौमुदी (ग्रामगीत)।

हुई है। कही तो वियोगिनी की कराह और कही वध्या की असीम मनोवेदना का सागर उमड पडता है और कही स्त्री को कष्ट देकर सास और ननद उसके जीवन को नारकीय बना देती हैं। इन कारुणिक विपयो के अतिरिक्त चक्की के गीतो मे रामायण तथा महाभारत के कथानक को लेकर भी पर्याप्त गीत मिलते हैं। सीताहरण तो चक्की का अनिवार्य अग ही है। एक गीत मे सीताहरण तथा जटायुमरण का प्रसग इस प्रकार आया है—

रथ तौ रोकत जात जटाई।
विप्र रूप धरि आओ राउन भिच्छा मागन जाई।
कुडरी वाहर भई जानकी रथ पै लेत चढाई। रथ तौ रोकत जात ।
की की विटिया काह नाम है कउन हो लिए जाई।
सुर्जवस निरपति राजा जसरथ तिनके सुत रघुराई। रोकत जात ।
तिनकी तिरिया नाव जानकी हरे निसाचर जाई।
अस कोई होवै रामादल मे हमको लेय छुडाई।
अगिन वान जव छोडो राउना पख गिरे हहराई।
तुलसीदास[1] भजो भगवाना राम से कहिओ कथा समुझाई।

एक गीत मे सीता को लक्ष्मण वन मे ले जाते हैं, वहा उन्हे प्यास लगती है और वे लक्ष्मण से कहती है कि या तो मुझे पानी पिलाओ या मार डालो। लक्ष्मण पानी के लिए जाते है और सीता सो जाती है। वे अवसर पाकर पानी के दोने को वृक्ष मे लटका कर लौट आते हैं। दोने के पानी की बूद सीता के वक्षस्थल पर गिरती है और वे उठ पडती हैं। लक्ष्मण को अनुपस्थित देखकर कहती है कि यदि लक्ष्मण वतला कर जाते तो मैं उन्हे अमर होने का आशीर्वाद देती। पुत्री और माता के वार्तालाप द्वारा एक गीत मे स्त्री के दुख का वर्णन किया

१—प्राय लोक-गीतो म तुलसी, सूर और कबीर की भी छाप लगी होती है। पर वास्तव में यह गीत इन कवियों के नहीं है।

गया है। उसको स्वप्न मे भी सुख प्राप्त नही होता। वन की लकडी की भाति उसका शरीर घुन रहा है। पीपल का पत्ता जिस प्रकार कपता है वैसे ही भय के कारण उसके शरीर मे कपन होता है —

कठिन राम जी की प्रीति लगै न सोई जानत दाई ।
काए की माया मोरी जनम दओ है काए की दओ है विदेस
लगै न सोई जानत नाई ।
हसन खिलन को जनम दओ ह सुख को दओ ह विदेस
लगै न सोई जानत नाई ।
सुख तो माया मोरी सपने की नाई दुखने बूडो सरीर
लगै न सोई जानत नाई ।
जइसे वन की लकडी घुनत है तइसे घुनै सरीर
लगै न सोई जानत नाई ।
जइसे पिपर को पता डुलत है तइसे डुलै सरीर
लगै न सोई जानत नाई ।

यदि समग्र-रूप से चक्की के गीतो को देखा जावे तो यह निष्कर्ष निकलता है कि जीवन के लगभग सभी पहलुओ पर इनमें कुछ न कुछ प्रकाश अवश्य पडता है। इन गीतो मे कथाए भी होती ह। कथानक तो वास्तव मे नाम-मात्र का ही होता है, परन्तु उनमे जो भाव रहता है वह इस प्रकार होता है जैसे मिट्टी के गमले मे फूल। चक्की के गीतो मे दुःख-वेदना का वर्णन होता है और वे करुणा की सृष्टि करते ह। कोमलता, मधुरता तथा चिरस्थायी-प्रभविष्णुता उनके गुण हैं। उत्तेजना तो उनमें खोजने पर भी नही मिल सकती।

रोपा तथा निराई के गीत—रोपा तथा निराई के समय जो गीत गाये जाते ह, उनमे तथा चक्की के गीतो मे कोई स्पष्ट सीमा-रेखा नही खीची जाती, क्योकि जिस प्रकार चक्की के गीत श्रमनिवारणार्थ

गाये जाते है उसी प्रकार 'रोपा' तथा निराई के गीत भी। इन गीतो मे भी मुगलो के अत्याचार, वियोगिनी का दु ख और सास आदि के कष्ट देने का वर्णन मिलता है। चक्की तो बैठे-बैठे पीसी जाती है, परन्तु रोपा और निरवाही करते समय चलना भी पडता है। योतो प्राय जो गीत 'रोपा, के समय गाये जाते है वही निराई मे भी, परन्तु स्वर-साधना मे दोना मे अन्तर होता है। सीता और लक्ष्मण का आम और महुआ के पेड के बीच मे मिलना, प्रश्नोत्तर होना, धनुभंग करना और उनके साथ विवाह करना इन मब का एक गीत मे उल्लेख हुआ है—

कि एजी माझ माझ रुखवा है ठाडे इक महुआ इक आम।
कि एजी उइ तरे ठाडे दुइ परदेसिया इक लछिमन इक राम।
कि एजी सिउ की पूजन चली मितलदे सब सखियन के सग।
कि एजी को हो तुम कोई बाट बटोही को रे परदेसी लोग'।
कि एजी ना हम है कोई वाट-बटोही ना रे परदेसी लोग।
कि एजी हम तो है दोनो राम लछिमन राजा जसरथ जू के पूत'।
कि ऐजी नौ मन सुनवां जनिक मगाओ धनिस धरो बनवाय।
'कि एजी जो कोई धनिस को टोरि दिखावै सीता को ब्याहि लइ जाय'।
कि एजी धनिस को टोरन राम जी चले है लछिमन ठाडे मुसक्याय।
'कि एजी कोमल-गात उमिरि भइआ थोरी वहिया मुरिकि न जाय।'
'कि एजी वहिआ रे वहिआ जनि करौ लछिमन फिरि पाछे पछिताव'।
कि एजी धनिस टोरि नौ खण्ड करे है सीता का ब्याहे लए जाय।
कि एजी सीता को ब्याहि अवधपुर लइ गए घर-घर बजत वधाई।
कि एजी माझ माझ रुखवा हैं ठाडे इक महुआ इक आम।

इस गीत पर ध्यान देने से ज्ञात होता है कि रामायण की कथा से इसमे पर्याप्त अन्तर है। जनक-वाटिका के स्थान पर आम और महुआ का वर्णन है। आम महुआ का वर्णन स्वाभाविक ही है क्योकि ये लोक जीवन के सुपरिचित वृक्ष है। अत पुष्प-वाटिका की कल्पना न करके

लोक-कवि आम और महुए की ही कल्पना करना उचित समझता है। शिव-धनुष के स्थान पर वर्णन मिलता है कि जनक ने नौ मन सोने का धनुष स्वयं बनवाया। रामायण आदि ग्रंथों में लक्ष्मण को राम का भक्त और सेवक का स्वरूप दिया है परन्तु लोक-कवि लक्ष्मण द्वारा राम से यह कहला कर कि उनका शरीर कोमल है और कहीं बाह न मुरक जावे, परिहास करवाता है।

खेल के गीत –

कनउजी लोक-गीतों में अनेक ऐसे गीत पाये जाते हैं जिनको खेलों के खेलते समय गाया जाता है। यह गीत गाये अवश्य जाते हैं परन्तु इनका उद्देश्य खेलों को मनोरंजक बनाना ही होता है। अतः इन गीतों को भी हम 'काम-काज के गीत' के अन्तर्गत ही रख सकते हैं। इन गीतों में उत्कृष्ट गीत-तत्त्व न होकर केवल वाणी-विलास होता है।

'टेसू के गीत'—टेसू' एक प्रकार का वयस्कों का खेल होता है। इसमें सब लोग मिलकर घर-घर 'टेसू' मांगने जाते हैं। इस भिक्षा के समय जो गीत गाये जाते हैं उन्हें 'टेसू के गीत' कहा जाता है। इसमें सब लोग मिल कर गाते हैं, अतः सामूहिक लय का ध्यान रखा जाता है। जब खेल खेलते हुए किसी द्वार पर जाते हैं तो इस प्रकार गीत आरम्भ करते हैं —

टेसू तौ आएआउन दीजौ खेलें पमर दुआर।
बैठक दीजौ री ढाल की तरवारि न आदर लेय॥

इन गीतों में विलक्षणता प्रमुख विशेषता है। इस विलक्षणता के साथ एक क्षीण तथा लघु कथावस्तु भी इनमें मिलती है। एक गीत में कथा है—कोई कहीं गुलैंदे खाने गया उसने कुछ तो खाये और कुछ अपनी झोली में धार लिए। रक्षकों ने उसे पकड़ लिया तब उसने अपनी सहायता के लिए एक अहीर को पुकारा। उस अहीर की सोटी ने रक्षक को पछाड़ दिया और तब वह रक्षक दिल्ली फरियाद के लिए गया।

पर दिल्ली तो बडी दूर है अत वह चूल्हे की ओट मे छुप गया। इन गीतो मे एक पद मे एक बात का वर्णन होता है। और दूसरे मे दूसरी बात का। इस प्रकार असम्बद्ध को सम्बद्ध करके इन गीतो की योजना की जाती है। टेसू' गाने वाले जव भिक्षा पा जाते हैं तो अन्त मे वह कहते हैं —

वडो दुआरो बडी अटरिया वडो जानि के टेसू आए।
मेडन-मेडन रौंमा फूलें बन फूलें कचनार।
सदा बखरिया अइसी फूलै जीमैं हाँथी झुकैं दुआर।

'झु'झिया के गीत'—जिस समय बालक और युवा टेसू के गीत गाते है उसी समय वालिकाएँ 'झु झिया' खेल के साथ 'झु झिया' के गीत गाती हैं। 'झु झिया' के गीतो मे 'टेसू' गीतो के समान विलक्षणता तो हाती ही है परन्तु इनकी शैली मे एक और विशेष वात यह है कि ये गीत सवादात्मक होते हैं। एक गीत मे उल्लेख मिलता है कि एक तोते ने एक चचल लडकी के डुपट्टे को पकड लिया। वह उससे मनचाहा मागने और छोड देने को कहती है। तोता 'ताल-कसिरुआ' तथा 'गूलरि को फूल' मागता है। इस पर लडकी उत्तर देती है कि तालाव का कसि-रुआ तो सड गया है और 'गुलरी का फूल' आधीरात फूलता है —

उनके ससुर की लगर विटेना सुअना पकरो डुपट्टा खीचि।
छोडौ-छोडौ हमैं लगर बिटेना जो मागौ सो देय।
मागैं तो मागैं ताल कसिरुआ अउर गुलरि को फूल।
ताल कसिरुआ सरि गओ सुअना गुलर फुलै अधिरात।

इन गीतो मे माता और पुत्री के सवाद द्वारा अनेक विषयो को प्रस्तुत किया जाता है। कभी पुत्री पूछती है माता! भाई के विवाह मे क्या-क्या मिला? भाभी कैसी है और उसके गुण और अवगुण क्या है? माता उत्तर देती है, पर उत्तर मे बडी अद्भुत बातें होती हैं। इस प्रकार 'टेसू के गीतो' से भिन्न 'झु झिया' के गीतो की एक

विशेषता यह भी है कि इनमें हृदय का रस भी झांकता है क्योंकि यह गीत किसी न किसी सम्बन्धी का आश्रय लिये रहते हैं और साथ ही साथ जिज्ञासा भी इनमें होती है। माता तथा सास आदि स्त्री के साथ जो व्यवहार करती है, उसका भी वर्णन इनमें पर्याप्त मात्रा में मिलता है। टेसू और झाँझी के गीत कन्नौजी-क्षेत्र में आश्विन मास में गाए जाते हैं और इनकी समाप्ति शरत् पूर्णिमा को होती है।

'फुलेरा'—बालिकाओं का 'फुलेरा खेलना' भी एक खेल होता है। यह खेल फाल्गुन मास के शुक्ल-पक्ष में प्रतिपदा से लेकर पूर्णिमा तक खेला जाता है। चौक पूरी जाती है और वहाँ कई बालिकाएं मिलकर गीत गाती हैं। इन गीतों के साथ ढोलक आदि नहीं बजाई जाती। खेलों के अन्तर्गत आने वाले सभी गीतों से यह गीत कहीं अधिक गम्भीर होते हैं। इनमें बालिकाओं के प्रति माता-पिता का लाड-प्यार, ताडना पाने पर उसका उत्तर तथा 'मायके' के मोह का बड़ा ही हृदय-ग्राही चित्रण होता है। एक गीत में उल्लेख है कि बालिका अपने पिता के यहाँ ग्राम-सखियों के साथ फुलेरा खेलने जाती है। संध्या से वह खेलती है और खेलते-खेलते सवेरा हो जाता है। पिता इस पर क्रुद्ध होते हैं और दण्ड देने के लिये छड़ी उठाते हैं। पुत्री बड़ा ही हृदय-द्रावक उत्तर देती है, हे पिता! मुझे दण्ड देने के लिये आप छड़ी क्यों उठा रहे हैं और माता भला बुरा क्यों कहती हैं? मैं तो आप लोगों की आश्रित चिड़िया हूँ। चुनते-बिनते किसी दिन उड़ जाऊँगी। उड़ जाने का आशय विवाह होने पर ससुराल चले जाने का है। गीत इस प्रकार है —

ऊंचो चौतरा चौखुटो [जहाँ बेटी खेलन जाय। हो राजा भामिन बनवारी की।

खेलन खेलत भोर भओ [है बाबुल [के दरबार]। हो राजा भामिन बनवारी की।

बाबुल काढी साटुली हो माई ने बोले है बोल । हो राधा भामिन बनवारी की ।
आज बसेरो नीयरे कालि बसेरो है दूरि । हो राधा भामिन बनवारी की ।
हम तौ तुम्हारी चीरई चुनत-बिनत उडि जाय । हो राधा भामिन बनवारी की ।

इन गीतो मे भाई और देवर आदि के विवाह मे चन्द्रमा, सांप, बिच्छू, नदी आदि से अनुकूल होने की कामना भी की जाती है तथा साथ ही उनमे भाई तथा देवर से यह भी पूछा जाता है कि उनकी पत्निया कैसी है ? उनके साथ किस प्रकार का व्यवहार करती है ? इन गीतो मे सवाद-शैली का आश्रय लिया गया है —

बीरना तरी कइसी दुलैया ।
बहिनी री जइसे सोन-चिरइया ।

इन सवादात्मक गीतो मे कही—कही हास्य का भी पुट मिल जाता है । जैसे —

दिउरा रे तुम्हरी कइसी दुलइया
भउजी री जइमे कोने मुसरिया
दिउरा रे तुम्हे पीसत कइसे
भउजी री जइसे घोडा को दाना
दिउरा रे तुम्हे परसत कइसे
भउजी री जइसे भैंस कौ सानी

इन गीतो मे इम बान का भी प्रसग आता है कि बालिका को, जब वह ससुराल जावेगी, खेलने को नही मिलेगा —

डग डग डोना टाडारी डूडोरी दे ।
खेलि लेव री खेल लेव री माई बाबुल के राज ।
फिरि दुरि जइओ सासुरे डूडोरी दें ।

फिरि ढुरि जइओ सासुरे नाम खिलन न देय डूडोरी दे।
रानि पिसावै पीसना दिन को गोवर की हेल डूडोरी दे।

इसके बाद यह गीत आगे बढ़ता है और इसमें हास्यपूर्ण और अद्भुत घटनाएं घटती हैं —

गुबर की हिलिया ढुलगि परी डूडोरी दे।
दउरी छूंटा की मार, छूंटा बिचारे ना लगे डूडोरी दे।

और फिर

नौ मन गिहुआ पिसाए डूडोरी दे।
ताको बनाओ इक लोल डूडोरी दे।

इस 'लोल" को सेंकने के लिए ससुर का "बठेआ" सुलग जाता है और तब भी वह सिकता ही नहीं। अन्त में यह लोल कौर-कौर बट जाता है और बेचारी फूहड खिसिया कर रह जाती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि 'फुलेरा' गीतों में हास्य, अद्भुत और करुण तीनों रसों के गीत मिलते हैं।

'लोरी'—लोरी' गीत बच्चों को खिलाने तथा सुलाते समय गाया जाता है। माताएं बच्चों को बहलाने के लिए इस गीत का सहारा लेती हैं। लोरियों के भी दो प्रकार होते हैं-एक तो वे जिन्हें माता, बहन आदि गाती हैं और दूसरी वे जिन्हें भाई, पिता, पितामह आदि गाकर बच्चे को प्रसन्न करते हैं। कुछ लोरिओं में बच्चों को वीर तथा साहसी बनने का भी उपदेश मिलता है। परिशिष्ट में कुछ लोरियां दी गई हैं।

जाति-गीत —

लोक-गीतों को सभी जाति के लोग गाते हैं, परन्तु सवर्ण-जातियों को छोड़कर अन्य जातियों के कुछ निजी विशेषता रखनेवाले गीत भी होते हैं। इन गीतों तथा अन्य गीतों में स्पष्ट रूप से तो कोई भेद नहीं होता है, परन्तु अपनी-अपनी जाति के अनुसार ये जातियां भिन्न-भिन्न

ही साथ वर-वधू को गुदगुदाते भी जाते हैं। विवाह के लिए हर्षित वर को तथा पति के घर जानेवाली उत्सुक वधू को शृगार कितना प्रिय होता है, इसे अनुभवी ही जानते हैं। इनके गीतो को 'कहँरवा' कहते हैं। ये लोग वैवाहिक उत्सवो पर नाचते भी हैं। नृत्य-गान के समय हुडुक (एक बाजा) बजाते हैं। इनके गीतो मे कही उपदेश भी मिलता है, देखिए —

गोरी धना सुअना पालो जी, गोरी धना ने।
बडो जतन करि पिंजरा बनाओ।
तामैं घने-घने तार लगाए जी।
तुचाके कागत पिंजरा मढाय दओ।
मेरो पछी न कहूँ उडि जाय जी।
रातदिन उइकी टहल करति है।
मेरो पछी न दुखियाय जी।
मेवा खवावै दिन रात पढावै ताय।
दिओ बाई सो चित लगाय जी।
एक दिना सो गाफिल हुई गई।
तोता निकरि गओ करै हाय जी।
खिरकी न खुली कोई तार न टूटो।
जानै निकरि गओ कउन राह जी।
बाग बगीचा वन खण्ड सब ढूढे
कहू पछी न मिलै राम जी।
प्यारे सुअना को कहू पता न पाओ
गोरी बइठि रही झकमारि जी।
याही विधि तेरे तन की दशा होय[1]

१ यह गीत प० रामनरेश त्रिपाठी के संग्रह मे दिये गये एक गीत से बिलकुल मिलता है। यह गीत तिरवा (फरुखाबाद) से संगृहीत किया गया है और त्रिपाठीजी ने इसे बदायू से प्राप्त किया है। पर दोनों है लगभग एक से ही।

लेउ जीवन हरि गुन गाय जी।

इस गीत मे यह आशय प्रकट किया गया है कि जिस प्रकार पिंजडे मे सुआ निकल जाता है उसी प्रकार एक दिन शरीर से प्राण भी निकल जावेगा और फिर पछताना पडेगा। अत प्राणी को भगवान् की ओर ध्यान लगाना चाहिए।

धोबियों के गीत—अहीरो, चमारो और कहारो की भाति ही इनके भी कुछ जातीय-गीत होते है। योतो ये सारी जातियां नाचती है परन्तु जब धोबी 'दारू' पीकर नाचता तथा गाता है तो दर्शक के मन को मुग्ध कर लेता है। इनके गीत 'धुबियाराग' मे गाये जाते है। इन गीतो का अन्य गीतो से यही भेद है कि इनमे धोबी के कौटुम्बिक-जीवन का ही वर्णन मिलता है। कही धोबी धोबिन से परिहास करता है, कभी अपने काम की कठिनता बतलाता है।

धोबी को चहिए चारि मेहरियां छियो राम छियो।

एक पीसै औ कूटै औ इक रोटी बनावै छियो राम छियो।

एक निआवै राटो औ पानी एक तो कपडा फीचै छियो राम छियो।

धोबी यह गीत कपडा धोते समय भी गाता है। अत बीच मे विश्राम के लिये वह 'छियो राम' भी कहता जाता है। परिश्रम के समय जोर से साम निकाल देने पर कुछ विश्राम सा मिलता है।

अहीरो के 'बिरहो' की भाति धोबियो के भी 'बिरहे' होते है। इनमे 'बिरह' का बडा ही सुन्दर वर्णन मिलता है। अहीरो के 'बिरहो' से इनमे केवल भेद इतना ही है कि वे धोबी के कौटुम्बिक-जीवन का ही चित्रण करते है। इनके बिरहा की सृष्टि कपडा धोनेवाले पाट पर कपडा धोते हुए ही हुई है —

ना बिरहन की खेती पाती ना बिरहन को बज।
जाई पेट से विरहा उपजै गाऊँ दिना औ रात।
छियो राम छियो।

'प्रबन्ध-गीत'—

'प्रबन्ध-गीत' किसी न किसी कहानी को लेकर चलते हैं, मूलत ये कहानियाँ ही हैं, पर गेय हैं, अत गीत की कोटि मे इन्हे रखा जाता है। कन्नौजी-क्षेत्र मे अनेकानेक प्रबन्ध-गीत मिलते हैं। स्थानाभाव के कारण यहाँ सबका विवेचन तो सम्भव नही हैं, पर कुछ का सक्षेप मे उल्लेख किया जाता है।

आल्हा प्रबन्ध-गीत—कन्नौजी-प्रदेश मे 'आल्हा' सबसे अधिक लोकप्रिय लोक-गीत है। दीर्घ आकार और वर्णन की विविधता तथा सुन्दरता के कारण इसे प्रबन्ध-काव्य कहा जा सकता है। आल्हा के मूललेखक तो जगनिक बतलाये जाते हैं, परन्तु जो आल्हा ग्रामो मे गाया जाता है उसका सम्बन्ध जगनिक के आल्हा से स्थापित करना सगत प्रतीत नही होता। कारण यह है कि जितने आल्हा गानेवाले होते हैं, उनकी वर्णनशैली मे भी उतनी ही विविधता होती है। वास्तव मे यह लोक-प्रचलित आल्हा ग्रामीणो की कल्पना की ही अभिव्यक्ति है। इसका वर्तमान रूप जगनिक के आल्हा के आधार पर ही रचा गया है। यह प्रबन्ध वास्तव मे वीर रसात्मक है। इसमे महोवे के चन्देल राजा परमाल की सेना के आल्हा और ऊदल सैनिको की वीरता का वर्णन है। ये दोनो वीर पृथ्वीराज से भी लडे थे। आल्हा का एक अध्याय लडाई कहलाता है और इस प्रकार इसमे ५२ लडाइयाँ है। इन लडाइयो का मूल कारण विवाह तथा कर उगाहना है। इस काव्य का कोई स्थिर स्वरूप नही है। कल्पना की ऊँची उडान सर्वत्र मिलती है।

कन्नौजी-प्रदेश मे तुलसीकृत रामायण के पाठ का बहुत अधिक

प्रचार है, परन्तु आल्हा मरलना, वीरता और उत्साह आदि से भरपूर होने के कारण लोक-प्रियता मे रामायण से भी आगे बढ गया है। इसमे युद्धो की ही प्रधानता है, अत युद्धका एक उदाहरण देकर आल्हा का प्रसग समाप्त किया जाता है —

गुस्सा ह्वइके प्रिथीराज तब, तुरतै हुकुम दओ करवाय।
बत्ती दै देव इन तोपन मैं, इन पाजिन की देव भजाय।
झुके खलासी तब तोपन पै, तुरतै बत्ती दई लगाय।
तोपै छूटी दोनो दल मैं, रन मे होन लगे घमसान।
अरर अरर अर गोला छूटै, कड-कड करै अगिनिया बान।

'ढोला प्रबन्ध-गीत —आल्हा के समान ढोला भी प्रबन्ध-काव्य है। इसके गानेवाले भी कुछ विशेषज्ञ ही होते हैं, सर्वसाधारण को यह याद नही रहता। चिकाडा, ढोलक और मजीरे को बजाकर ढोला गाया जाता है।

ढोला मे नल के जन्म से विवाह तक का बडा ही विशद तथा विस्तृत वर्णन मिलता है। बीच-बीच मे इसे मनोरजक बनाने के लिए अप्सराओ, जादूगरनियो आदि के प्रसग लाये गये है। यदि ढोला ढग से कराया जाय और गानेवाला रुचि से गाए तो एक महीने मे भी कठिनाई से समाप्त होगा।

नल के पिता राजा नरवर को शिकार खेलने जाते है, इसका एक उदाहरण नीचे दिया जाता है —

राजा पिरथिम ने अपनो घोडा सजवाओ,
सब सिंगार करो घोडा को,
सोने को जडाऊ जीन धरवाओ,
गनकि भजो है असवार,
कइने खेलन जान सिकार।

'धन्नइया प्रबन्ध-गीत' -आल्हा, ढोला आदि तो अन्तर्प्रान्तीय गीत है। परन्तु 'धन्नइया' गीत कनउजी का स्थानीयगीत है। लोक-गीतो पर बोलियो मे जितने भी सग्रह प्रकाशित हुए है उनमे किसी मे भी यह गीत नही मिलता। यह गीत बहुत बडा है परन्तु 'आल्हा' और 'ढोला' जैसे विशाल आकार का नही। लेखक ने पूरे गीत का सग्रह किया है और वह रजिस्टर के आकार के ४८ पृष्ठो मे आया है।

यह गीत मगलाचरण से प्रारम्भ होता है। सक्षेप मे कथा इस प्रकार है—'एक ओर गगा और दूसरी ओर यमुना बहती है, बीच मे 'बकेसुर' नाम की राजधानी है। इसके राजा गजोधर है, उनकी रानी ने कन्या को जन्म दिया। 'धनकुन' ने आकर कन्या का नारा छीना तथा स्नान करवाया। पुरोहित ने आकर कन्या का नाम 'पद्मिनी' रखा। बाद मे कन्या ने वर खोजने के लिए माता से कहा। वर खोजने के लिए नाई-ब्राह्मण 'बसावसेली' के वासुकि राजा के यहा पहुच गए। वहाँ उसके पुत्र 'नगमुनियाँ' को देखा। किसी प्रकार वे वहा स पीछा छुडा कर भागे। तत्पश्चात् वे 'निवानिवौरी' के राजा 'सुरजमल' के यहाँ पहुचे। राजा सुरजमल ने अपने पुत्र 'खरगलाल' से विवाह-सम्बन्ध तय कर लिया। खरगलाल इसके विरोध मे बहुत रोया-चिल्लाया, पर पिता ने एक भी न सुनी। बारात बकेसुर आई, परतु भावरे पडते समय 'नग-मुनिया' ने खरगलाल को डस लिया। पद्मिनी ने 'धन्नइया' बनाकर उसमे पति के शव को रखकर गगा द्वारा 'कुरूकमछा' के लिए यात्रा प्रारम्भ कर दी। मार्ग मे कई प्रकार के दुष्टो से सामना करती हुई वह बगाल पहुची और वहाँ जादू के प्रभाव से पति को जीवित कर लिया। परन्तु वहा अन्य जादूगरनियो ने खरगलाल को कभी कोल्हू का बैल, कभी कुत्ता और कभी बिल्ली बना दिया। 'पद्मिनी' ने युक्ति से सब को अपने वश मे करके स्वामी की रक्षा की और 'बकेसुर' पुन लौट आई। सब लोग हर्षित हुए और वे दोनो आनन्दपूर्वक रहने लगे।

इस गीत की वर्णनशैली बड़ी ही मनोरम है। विवाह के समय विविध आचारों का भी वर्णन हुआ है। खरगलाल टीका चढ़वाने के लिए तैयार नहीं होता है। ब्राह्मण और उसके विवाद को देखिये —

ता मुख बोलैं पण्डित बराम्हन सुनि लेव खरगल मोरी बात।
अच्छी है साइत आजै खरगल टीका न लेव चढ़वाय।
ता मुख बोलैं कुअर खरगलाल सुनि लेव न ददुआ मोरी बात।
अबै तुम्हारो कुछ नहि बिगरो टीका न देव लौटाय।

इस गीत में 'घन्नइया' द्वारा यात्रा की गई है। बगाल पहुचने के लिये वही साधन स्वरूप थी। इसी कारण इस गीत का नाम 'घन्नइया' है। यह नृप बजाकर गाया जाता है।

ऊभदेव का गौना—यह भी एक स्थानीय प्रबन्ध-गीत है। इसमें ऊभदेव अहीर का गौना किस प्रकार हुआ, उसमें किस किस प्रकार की बाधाएं पड़ी? कैसे-कैसे भयकर युद्ध हुए? आदि का वर्णन है। यह गीत भी लगभग २० पृष्ठो का है। लेखक ने इसका भी संग्रह किया है। परिशिष्ट में इसका थोड़ा सा अंश दिया जावेगा।

इन उपर्युक्त गीतों के अतिरिक्त अन्य प्रबन्ध-गीत भी कन्नौजी प्रदेश में गाए जाते हैं। स्थानाभाव के कारण सबका यहा उल्लेख नहीं किया जा सकता। लोक-गीतों के इस विवेचन के साथ कनउजी लोक-गीतों के प्रकार और उनके वर्ण्य-विषय का प्रसग यहा समाप्त होता है।

चतुर्थ अध्याय

'कनउजी लोक-गीतों में सांस्कृतिक-चित्रण'

'कनउजी लोक-गीतों में सांस्कृतिक-चित्रण'

लोक-गीतो मे 'सस्कृति-चित्रण' का विवेचन करने के पूर्व हमे यह जान लेना चाहिए कि 'सस्कृति' किसे कहते है। 'सस्कृति' शब्द सस्कृत भाषा की 'कृ' धातु मे 'सम्' उपसर्ग तथा 'क्तिन्' प्रत्यय लगाने से बना है। इसका शाब्दिक अर्थ 'अच्छी स्थिति,' 'सुधरी हुई स्थिति' आदि का बोधक है। परन्तु इसका भावार्थ अधिक विशद तथा विस्तृत है। 'सस्कृति' से मानव-समाज की उस स्थिति का बोध होता है जिसमे उसे सुधारा हुआ, ऊँचा, सभ्य आदि विशेषणो से विभूषित किया जाता है। 'सस्कृति' शब्द को अंग्रेजी शब्द 'कल्चर' का पर्याय समझना ठीक नही है। वस्तुत 'कल्चर' के लिए हमारे यहाँ 'कृष्टि' शब्द मिलता है। 'कल्चर' के अन्तर्गत मनुष्य के रहन-सहन, खान-पान, रीति-रिवाज, वेश-भूषा, मनोरजन आदि भौतिक-जीवन का ही समावेश किया जा सकता है, परन्तु सस्कृति मे भौतिक-जीवन तथा आध्यात्मिक-चिन्तन दोनो ही समाविष्ट हो जाते है। भारतीय-धारणा के अनुसार मनुष्य तभी पूर्ण रूप से 'सस्कृत' समझा जाता है जब कि वह धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष चारो का लाभ करे। इस प्रकार हम देखते है कि मनुष्य अपने विकास के लिए जो कुछ भी करता है, सभी सस्कृति मे अन्तर्हित हो जाता है। सस्कृति के इसी व्यापक-अर्थ को लेकर इस अध्याय मे कनउजी लोक-गीतो मे सास्कृतिक-जीवन की व्याख्या की जाएगी।

सस्कार

जीवन को सस्कृत बनाने के लिए जो विधान किए जाते है उन्हे

सस्कार की सज्ञा दी गई है । हमारे प्राचीन धार्मिक ग्रथो मे १६ सस्कारो का उल्लेख किया गया है । वे इस प्रकार है—

१—गर्भाधान	९—कर्णवेध
२—पुसवन	१०—उपनयन
३—सीमन्तोन्नयन	११—वेदारम्भ
४—जातकर्म	१२—समावर्त्तन
५—नामकरण	१३—विवाह
६—निष्क्रमण	१४—वानप्रस्थ
७—अन्नप्राशन	१५—सन्यास
८—चूडाकर्म	१६—अन्त्येष्टि

वैदिक-साहित्य तथा स्मृति-ग्रथो मे प्रत्येक सस्कार के लिए मत्र पाये जाते है, जिससे ज्ञात होता है कि प्राचीन काल मे प्रत्येक सस्कार विधिवत् मनाया जाता था । परन्तु आजकल हिन्दू-समाज मे कई सस्कार, जैसे गर्भाधान, पुसवन, समावर्त्तन, वानप्रस्थ आदि सामान्यतया लुप्तप्राय हो गए है । जो शिक्षित समाज है उसमे तो अभी कुछ लीक पीटी भी जाती है, परन्तु ग्रामीण जनता मे तो अब जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, चूडाकर्म, उपनयन, विवाह तथा अन्त्येष्टि सस्कार ही मुख्य रूप से मनाए जाते है और इन सस्कारो से ही सम्बन्धित गीत भी मिलते है । कनउजी लोक-गीतो मे जिन सस्कारो का उल्लेख आता है, उनका आगे क्रमश वर्णन किया जावेगा ।

जातकर्म-संस्कार—

पाश्चात्य-सस्कृति मे विवाह का उद्देश्य यौन-सुख का भोग करना है तथा वहाँ इसे एक सामाजिक बन्धन भी कहा गया है, पर भारतीय-सस्कृति के अनुसार विवाह का लक्ष्य सन्तानोत्पत्ति है और इसे धार्मिक-बन्धन समझा जाता है । यहाँ की ललनाओ की चरम-लालसा की परिणति पुत्र-जन्म है । अत पुत्र जन्म होते ही 'सोहर' नाम के गीत घर

तथा पडोस की स्त्रियो के कल-कण्ठो द्वारा ऐसे उच्चरित होने लगते हैं कि प्रसव-पीडिता अपनी सारी पीडा को भूल जाती है। कनउजी-क्षेत्र मे जन्म के समय विविध आचारो का विधान होता है। गर्भाधान से लेकर जन्मदिन के नवें दिन वाद तक की अवधि जन्म-सस्कार मे समाहित होती है। यहाँ के लोक-गीतो मे गर्भिणी की इच्छा का भी वर्णन आता है —

सकल वस्तु मेरे घर मैं एकौ नहि भावै है रे।
नौरगिया की साध नौरगिया लै आवौ है रे॥

गर्भिणी की, ज्यो-ज्यो सन्तानोत्पत्ति का समय निकट आता जाता है, क्या दशा होती है, उसकी अगयष्टि कैसी हो जाती है ? आदि का भी वर्णन इन गीतो मे उवलब्ध होता है। एक-एक महीने को लेकर नीचे के गात मे गर्भिणी की दशा का सकेत किया गया है

सइया लगाई नौरगिया रसै रस डोलै।
जव नौरगिया मैं दुइ दुइ पतौआ काए धना उबकानी
रसै रस डोलै॥
जव नौरगिया मे नौ नौ पतौआ काए धना पियरानी
रसै रस डोलै।

इस प्रकार उपर्युक्त उद्धरणो से सिद्ध हो जाता है कि गर्भाधान और सीमतोन्नयन, जन्मसस्कार के अन्तर्गत आते हैं, क्योकि वे स्वतत्र रूप से मनाए नही जाते, केवल गीतो मैं ही उनका उल्लेख है और ये गीत भी जन्म पर ही गाए जाते है। पुत्र जन्म होते हो ढोलक-मजीरे के साथ सोहर गाए जाते हैं। इन गीतो मे यह तो स्पप्ट ही है कि यह गायन, कर्म तथा आनन्द का प्रतीक है, इसके अतिरिक्त यह भी सम्भव है कि यह उस प्रथा का प्रतीक हो जिसमे प्राचीन काल मे इस अवसर पर गायन-वादन किया जाता था। महर्पि वाल्मीकि ने भी राम के जन्मोत्सव

पर गन्धर्व-पत्नियो तथा अप्सराओ के गाने-नाचने का उल्लेख किया है।[1]

बालक के उत्पन्न होते ही घर का कोई पुरुष 'धनकुनि' (धानुक की पत्नी) जो 'धाय' का काम करती है, बुला लाता है। धाय आकर छुरी अथवा हसिए से नाल काटती है। इस क्रिया को 'नारा छीनना' कहते है। गीतो मे 'सोने की छुरिअन नारा छिनाओ' तथा 'आवौ न धनकुन नारा न छीनौ' का उल्लेख मिलता है। जिस छुरी से धाय नाल काटती है वह उसी को दे दी जाती है। 'सौरि' (सूतिका-गृह) के द्वार पर 'वसिआ' (मिट्टी की एक प्रकार की अगीठी) मे नामकरण-सस्कार के दिन तक निरन्तर आग जलती है जिससे प्रेतादि घर मे न घुस सकें। वायुमण्डल को शुद्ध करने के लिए इसमे गन्धक डाला जाता है। गीतो मे कही-कही सोने की 'वसिआ' और चन्दन की लकडी जलाने का उल्लेख मिलता है। जच्चा को पीने के लिए कई औषधियाँ डालकर उबला पानी दिया जाता है। यह पानी गोबर से चित्रित किए गए एक मिट्टी के घडे मे उबाला जाता है। यह समस्त-क्रिया 'चरुआ धरिबो' कहलाती है, जिसे सास द्वारा सम्पादित कराया जाता है।

आवौ न सासू चरुआ तौ धरि देव।
चरुआ वराई तुम्हैं तिलरी गढाय दियै।

इमी समय गोवर से कौरो पर ननद द्वारा 'सतिया' भी रखवाई जाती है। जच्चा को सर्दी से बचाने के लिए तथा शक्तिप्रदान करने के लिए एक पेय 'हरीरा' वनाया जाता है जिसमे तेल, घी तथा सोठ आदि गम चीजे पडती है। इमी समय वच्चे को स्नान भी कराया जाता है। कहीं-कही यह स्नान तीसरे-चौथे दिन होता है, परन्तु कनउजी-गीतो मे 'नारा छीनना' तथा 'हनान' साथ-साथ ही होता है —

१—जगु कलत्र गन्धर्वाः ननृतुश्चाप्सरोगणा।
देवा दुन्दुभयो नेदु पुष्पवृष्टिश्च खात्पतति॥ वा०रा०बाल० १८।१६

ऐसी दाई हरजाई लाल को नारा न छीनै ।
नारा छिनाई अजुध्या माँगै मथुरा माँगै हनवाई ।

इन कार्यों के सम्पन्न हो जाने पर छठे दिन 'छठी' की जाती है इसमें गृह-शुचि तथा जच्चा एव बच्चा को स्नान कराया जाता है इसी दिन सध्या को 'तीर मारने' का सस्कार होता है। बच्चे के साथ माता चौक पर बैठती है और देवर तीर मारता है। यह तीर सीक का बना होता है। चरुवा धराई, सतिया धराई, हनवाई, तीरमराई आदि समस्त कार्य नेग द्वारा होते है। एक गीत मे एक स्त्री नेग नही देना चाहती है वह कहती है —

हम तो अकेली सइया सब न लुटाय दीजौ ।
सासू जी आमैं सइयाँ दुआरे ते लौटाय दीजौ ।
सासू को नेग मोरी अम्मा पै कराय लीजौ ।
नानदी जो आमैं सइयाँ उनहूँ को लउटाय दीजौ ।
ननदी को नेग मोरी बहिनी पै कराय लीजौ ।
दिउरा जो आमैं सइयाँ उनहूँ को लउटाय दीजौ ।
दिउरा को नेग मोरे भइया पै कराय लीजौ ।

छठी के दिन ननद भाभी की आँखें 'आँजती' है और छठी की पूजा भी होती है —

'चलौ छठी पूजिए जाई ।
लइके भतीजे को बइठी सहुदरा आव कछु देव भउजाई ।
सौ लाख गउए सवाव लाख भैंसी तव हम करै अँजाई ॥

नामकरण अथवा दष्ठौन सस्कार—

यह सस्कार जन्म के दसवें दिन बाद होता है। इस दिन पुन घर लीपा-पोता जाता है तथा सन्तान को स्नान कराया जाता है। घर के लिपवाने के बाद आँगन मे चौक पूरी जाती है और जच्चा तथा बच्चा बाहर जाते हैं। इसका वर्णन एक गीत मे हुआ है —

अनदा वधाये री आज मोरे।
जव गउआ को गुबर मगाओ अगन लिपाओ री माई
जव मुतियन चौक पुराई कलसा धराओ री माई
जव मोनेन कलस धराओ दिअना जराओ री माई।
जव मानिक दिअना जराओ पटुली धराई री माई।
जव चन्दन पटुलि डराई जसुदा को बुलाव री माई।
जव जसुदा चौकें आई कनिया हीरालाल हैं माई।
जव कनिआं हीरालाल लाई सूरज अलोप ह माई।

जन्म होते ही जच्चा के मायके से पुत्र जन्म का ममाचार भेज दिया जाता है, जिसे 'रुचना' कहते हैं —

सव सखियाँ मिलि पूछन लागी केहि के भये नदलाल
रुचना लैं आए हौ रे।

लोकाचार के अनुसार भाई-वहन के यहाँ आता है और कुछ भेंट के साथ वधाई देता है। एक गीत में वर्णन मिलता है कि जव भाई कुछ नही ले गया तो उसे फटकार मिलती है —

वइठौ वइठौ विरन घर अपने वधइया राजा वीरन।
तुम जोड़ू के असल गुलाम वधइया राजा वीरन।

यज्ञ करने के वाद पुरोहित नामकरण कर देता है।

अन्नप्राशन-सस्कार—

आश्वलायन गृह्य-सूत्र मे कहा गया है कि छठे मास जिसको तेजस्वी वालक करना हो वह घृतयुक्त भात अथवा दधि, मधु और घृत तीनो मिलाकर अन्नप्रासन करावे। यह सस्कार वहुत धूमधाम से नही मनाया जाता है पर इस प्रथा का वरावर निर्वाह होता है। छठे माम माता-पिता वालक को पास की किसी देवी के मन्दिर मे ले जाकर अन्न-प्राशन कराते हैं। इम सस्कार को 'मुंह वीर' कहा जाता है। इस उत्सव का भी गीतो मे उल्लेख मिलता है —

कालि मोरे लीपने पोतने औ मुह्वार री आली ।
सासु मोरी निउतों न अरजा परजा औ नाते गीत री आली ।

चूडाकर्म संस्कार—

चूडाकर्म बालक के जन्म के तीसरे वर्ष[1] या एक वर्ष[2] मे करने का विधान है। पर व्यवहार रूप मे पुरोहित से मुहूर्त पूंछा जाता है। मुहूर्त के अनुसार मुण्डन-सस्कार घर मे हवन आदि करने के पश्चात् हो जाता है। कुछ लोग मुण्डन कराने के लिए पहले ही मनौती करते हैं और उसी के अनुसार माने हुए स्थान पर मुण्डन होता है। मुण्डन के समय बुआ तथा बहन आदि का होना आवश्यक समझा जाता है। लडके के मामा का भी होना आवश्यक है, जो अपनी बहन के लिए 'पियरी' लावे। पियरी लाने का उल्लेख लोक-गीतो मे बहुत मिलता है और इसके पहनने की लालसा बहन को बहुत अधिक होती है। मुण्डन करनेवाले नाई और बालो को इकट्ठा करनेवाली बहन को नेग मिलता है। नीचे के गीत मे इसका उल्लेख है—

झड़ुले हैं आम अमिलिया अरे अउर जम्हिरिया अउर जउन के खेत
झलरिया मोरी गउनि रे।
अथइयाँ बइठे आजा उनके ठाढे मुन्ना राम,
आजा आँगे लुटनी पसारे,
मुडावौ आजा झालरि रे।
दाई उनकी जाग बैठारे झलरि मुडामैं
आजा उनको खरचैं दाम झलरिया मोरी पावनी।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मुण्डन-सस्कार भी बडी धूम-धाम मे किया जाता है।

---

१. 'तृतीये वर्षे चौलम्' आश्वालयन गृह्य सूत्र १।१७।१
२. 'सांवत्सरिकस्य चूडाकरणम्' पारस्कर गृह्य सूत्र २।१।१

उपनयन-संस्कार

यज्ञोपवीत धारण करना आर्य-जाति की वहुत पुरानी प्रथा है। प्राचीन-काल मे यज्ञोपवीत–सस्कार के होने पर ही ब्रह्मचारी आचार्य के पास विद्याध्ययन करने के लिए जाता था। इसी हेतु इस सस्कार को 'उपनयन' भी कहा जाता है—'उपनीयते गुरुसमीप प्राप्यते अनेनेति उपनयनम्'। मनुष्य को द्विज कहलाने के लिए यज्ञोपवीत धारण करना अनिवार्य था, क्योकि मनु की व्यवस्था के अनुसार यज्ञोपवीत धारण करने के पूर्व मनुष्य-मात्र शूद्र उत्पन्न होता है—

जन्मना जायते शूद्र सस्काराद्विजोच्यते।

ब्राह्मण बालक का यज्ञोपवीत ८ वर्ष की अवस्था मे, क्षत्रिय का ११ वर्ष की अवस्था मे तथा वैश्य का १२ वर्ष की अवस्था मे होना चाहिए। ब्राह्मण का १६ वर्ष, क्षत्रिय का २२ वर्ष और वैश्य का २४ वर्ष के पूर्व यज्ञोपवीत होना आवश्यक हो जाता है। यदि पूर्वोक्त-काल मे इनका यज्ञोपवीत न हो तो वे पतित माने जावें[1]। यज्ञोपवीत का समय ब्राह्मणो के लिए वसन्त, क्षत्रियो के लिए ग्रीष्म तथा वैश्यो के लिए शरद अथवा सब ऋतुओ मे भी हो सकता है[2]।

यह सस्कार अव भी वडी धूम-धाम से किया जाता है। सभी ब्राह्मणो के यहा यह सस्कार अनिवार्य रूप से होता है, परन्तु क्षत्रिय और वैश्यो मे अव यह प्राय स्वतत्र रूप से न होकर विवाह के साथ कर

---

१ अष्टमे वर्षे ब्राह्मणमुपनयेत्। गर्भाष्टमे वा। एकादशे क्षत्रियम्। द्वादशे वैश्यम्। आषोडशाद् ब्राह्मणस्योपनीतकाल.। आद्वाविंशात्क्षत्रियस्य, आचतुर्विंशाद्वैश्यस्य, अत ऊर्ध्वं पतित सावित्रीका-भवन्ति। आश्वालयन गृ० सू० १।१९।१–६

२ वसन्ते ब्रह्मणमुपनयेत्। ग्रीष्मे राजन्यम्। शरदि वैश्यम्। सर्व-कालमेके। शत० ब्रा०

दिया जाता है। कन्नौज-क्षेत्र मे शायद ही कोई ऐसा ब्राह्मण हो जिसके यहाँ ८ वर्ष की अवस्था मे बालक का यज्ञोपवीत-सस्कार होजाय, अन्यथा १३-१४ वर्ष की अवस्था मे ही अब यह सम्पादित होता है। इसका कारण है कि अब विद्यारम्भ यज्ञोपवीत के पहले ही कर दिया जाता है। यज्ञोपवीत-सस्कार मे भाँवरो के अतिरिक्त सारी बाते, जो विवाह मे होती है, की जाती है, अत कन्नौजी लोग इस सस्कार को 'आधो-बिआव' (आधा विवाह) भी कहते हैं। भात माँगना, मण्डप गाडना, तेल चढाना, पितरो को निमन्त्रित करना, 'नहखुरो' (नखछेदन) होना आदि क्रियाएँ जो विवाह मे की जाती है उन्हे यज्ञोपवीत के समय भी किया जाता है। अत इन सबका उल्लेख विवाह वर्णन करते समय किया जायेगा। यहाँ पर यज्ञोपवीत मे जो इसके अतिरिक्त बाते होती है उन्ही का वर्णन अपेक्षित है।

यज्ञोपवीत-सस्कार के लिए ब्राह्मण बुलाया जाता है और किस प्रकार उत्सव होता है, इसकी झलक नीचे के गीत मे मिलती है—

ऐ कनउजवा के ब्राह्मन हमरे हूँ आएहु।
पोथिया पतरवा लैके आएहु हमरे बरतबन्ध[1] ॥ १ ॥
कैसे का तोहरे आइब घरवा नहि चीन्हो नाव न जानो ॥ २ ॥
आँगन मोरे माडव ओसरवा मोरे कोहबर।
हरदी क घेवरल कवन लाल कवन लाल द्वारे आएहु ॥ ३ ॥
ऐ जवने वन सिकिया न डोलै भवरा न गुजरइ
ऐ तवन वन पैठत कवन राम परास डडा तोरै ॥ ४ ॥
ऐ काहे की टगिया[2] तुहु कटवेउ केथुआ सिहुरवउ।

---

१ यज्ञोपवीत धारण करने के दिन से ब्रह्मचारी को कुछ व्रतों अर्थात् नियमो का पालन करना अनिवार्य हो जाता था, इसलिए इसे व्रतबन्ध भी कहते हैं।

क० कौ० त्रिपाठी-पृ० ३१७।

२. कुल्हाड़ी।

ऐ केकरे मण्डप ओठघडबेउ केकर बरत वन्ध ॥ ५ ॥

ऐ सोनवा की टगिया हम कटबइ रूपवा सिहुरबइ ।

राजा दसरथ मण्डप ओठघइबउ राजा रामचन्द्र क बरत वन्ध[1] ॥ ६ ॥

यज्ञोपवीत-सस्कार की पूर्व रात्रि को बालक को व्रत रखना पड़ता है। दूसरे दिन पुरोहित प्रात काल सस्कार प्रारम्भ करा देता है। यज्ञस्थान के पास १६ मिट्टी के 'पुरबो' मे चने की दाल भर कर एक पर जनेऊ रख दिया जाता है। अनेक विधिविधानो के पश्चात् नाई बालक के बाल उतारता है। इसके पश्चात् बालक के शरीर मे उबटन लगाकर स्नान कराया जाता है। सस्कार के समय वह लँगोटी, मूँज की मेखला तथा पलाश-दण्ड धारण करता है। इस समय तीन प्रकार के जनेउओ का विधान है—

को मेरे मुजवन जइऐ मुजिया कटइऐ।
को लइ आवैं मूज जनओ मूज को चहिए।
(अमुक) लइआमै आली मूज जनेऊ मूज को चाहिए।
पहिलो जनेऊ मूज को दुसरो हिरनवाँ की खाल।
तिसरो जनेऊ सूत को रगो है हरदिया की गांठ।

साथ ही साथ यह भी विधान है कि जनेऊ हाथ का कता हुआ ही होना चाहिए। इस आशय का वर्णन हमे लोक-गीतो मे निरन्तर मिलता है—

गगा जमुन बिच आतर चन्दन एक रुखवा है हो।
तेहि तरे ठाढे फूफा उनके काते जनेउवा हो ॥

यज्ञोपवीत धारण करने के पश्चात् ब्रह्मचारी गुरुकुल मे विद्याध्ययन करने के लिए भिक्षा माँगता है। भिक्षा मांगना उस प्राचीन-प्रथा का सूचक है जब प्रत्येक ब्रह्मचारी गुरुकुल मे रह कर विद्याध्ययन करता

---

१ इस गीत की भाषा अवधी है, पर यह इसी रूप में कनउजी में भी मिलता है।

था और भिक्षा-वृत्ति द्वारा जीवन-निर्वाह करता था। भिक्षा देने की गृहस्थों की बड़ी साध होती थी—

जो जननी की वरुआ हमारे घर अइओ रे।
वरुअरो खेत जोतउती धनमुतिया ववौती रे।
मुतियन थार भरउनी भीख उठि देती हो।

भिक्षा-याचना के पश्चात् ब्रह्मचारी वेद पढ़ने के लिए काशी जाने को प्रस्तुत होता है जिससे सिद्ध होता है कि प्राचीन काल के सभी विद्यार्थी गुरुकुल जाते थे। उस समय काशी विद्या का प्रसिद्ध केन्द्र था। अत लोक-गीतों मे उसी का उल्लेख मिलता है। ज्यो ही ब्रह्मचारी जाने को प्रस्तुत होता है त्योंही उससे कहा जाता है कि घर मे अमुक व्यक्ति विद्वान् है, उसी से वेद क्यो न पढ लो ?

प्राचीन काल मे समावर्तन-सस्कार होता था जब विद्यार्थी गुरुकुल की शिक्षा समाप्त करके लौटता था परन्तु अबतो पांच पग चलने पर ही ब्रह्मचारी लौटा दिया जाता है और उसके वस्त्रादि उतार कर उसे नूतन वस्त्रो से सुसज्जित कराया जाता है। इस प्रकार यह समावर्तन का विकृत-रूप ही रह गया है। यदि सूक्ष्म-दृष्टि से निरीक्षण किया जावे तो हम देखते है कि इस उपनयन-सस्कार मे अब वेदारम्भ, उपनयन और समावर्तन तीनो की एक साथ ही लीक पीट दी जाती है।

विवाह—

भारतीय-सस्कृति के अनुसार मनुष्य के तीन ऋणो मे से एक पितृ-ऋण है। इस ऋण की पूर्ति सन्तानोत्पति से की जाती है और इसका साधन विवाह है। अत हिन्दू-जीवन मे विवाह सबसे प्रधान और प्रसिद्ध सस्कार है। हमारे यहाँ विवाह का प्रमुख उद्देश्य सन्तानोत्पति है। ब्रह्म ने भी सृष्टि की उत्पत्ति वासना के वशी-भूत होकर नहीं की थी वरन्-'एको ह बहुस्याम'-की भावना से।

मनुस्मृति मे शिक्षा समाप्ति पर विवाह का विधान किया गया है अर्थात् ब्राह्मण चार वेदो को, क्षत्रिय दो वेदो को और वैश्य एक वेद

को समाप्त करके बिवाह करे।[1] इस विधान का पालन तो अब नही किया जाता है परन्तु लोक-गीतो मे यह तो मिलता ही है कि घर मे ब्रह्मचारी को आजा, पिता आदि अध्ययन करा देंगे। शास्त्रो के अनुसार वर की आयु कम मे कम २८ और कन्या की १६ होनी काहिए। यद्यपि अब यह रीति पूर्णत नहीं मानी जाती है फिर भी गीतों मे इसका यत्र-तत्र उल्लेख मिल ही जाता है। हमारे समाज मे राम और सीता का विवाह आदर्श विवाह माना जाता है जिसके विषय मे लोक मे प्रसिद्ध है कि 'वर्ष अठारा की हती मीता और सत्ताइस के राम'। कन्या के लिए भी व्यवस्था है कि 'ब्रहचर्येण कन्या युवान विन्दते पतिम्,'[1] अर्थात् कन्या ब्रह्मचर्य सेवन से वेदादि शास्त्रो को पढ कर पूर्ण विद्या और उत्तम शिक्षा को प्राप्त कर, पूर्ण युवा होकर अपने सदृश युवा पुरुष को प्राप्त होवे। अनुमान किया जा सकता है कि जो बालविवाह होने लगे हैं उनका कारण सम्भवत परवर्ती मम्कृत ग्रन्थ है जिनमे कहा गया है कि आठ वर्ष की कन्या गौरी, नौ वर्ष की रोहिणी और दस वर्ष मे वह रजस्वला हो जाती है और दसवे वर्ष तक विवाह न करके रजस्वला कन्या को माता पिता और बडे देख कर नरक में गिरते हैं।[2]

मनु ने आठ प्रकार के विवाहो की व्यवस्था की है[3] १-ब्रास २-दैव ३-आर्ष ४-प्राजापत्य, ५-आसुर ६-गाधर्व, ७-राक्षस तथा ८-पैशाच।

१--वेदानधीत्य वेदौ वा वेद वापि यथाक्रमम्।
अविप्लुतब्रह्मचर्यो गृहस्थाश्रममाविशेत्। मनु० अ० ३।२।

१--अथर्व ० (का ११ प्र० २४ अ० ३ म० १८)

२--अष्टवर्षा भवेत गौरी नववर्षा च रोहिणी दशवर्षा भवेत् कन्यातव ऊर्ध्वं रजस्वला माता चैव पिता तस्या ज्येष्ठो भ्राता तथैव च। त्रयस्ते नरक यान्ति दृष्ट्वा कन्या रजस्वलाम्। 'पाराशरी और शीघ्र बोध'

३--ब्राह्मो दैवस्तथैवार्ष प्राजापत्यस्तथाऽसुर।
गाधर्वो राक्षसश्चैव पैशाचश्चाष्टमोऽधम। मनु० (३।२१)

प्रधानत जो विवाह आजकल प्रचलित है उनको ब्राह्म और दैव का मिश्रण कहा जा सकता है। लोक-प्रचलित आल्हा गीतो में राक्षस-विवाह बहुत मिलते हैं। इसके अतिरिक्त कुछ लोक-गीत ऐसे भी है जिनमें मुगल लोग हिन्दू कन्याओ को बलात् छीन ले जाते थे। यह भी राक्षस विवाह की कोटि मे आते है —

ठाढे एक घाईं मुगल पचास सो यहि रन-वन मैं।
दुलहा एक छोर ठाढे अकेले तौ यहि रनवन मैं।
रामा जूझे है मुगल पचास तौ यहि रन बन मैं।

कन्या-पक्ष से वर-पक्ष धन लेकर आज विवाह करता हुआ प्राय पाया जाता है, लोक-गीत इस विषय मे भी मूक नही हैं। विपम-विवाह ही वस्तुत असुर-विवाह होते है और तभी धन के लोभ के कारण पिता अपनी कन्या का विवाह बूढे से कर देता है—"माया के लोभी बापने बूढे कौ ब्याहि दीनो रे।' कन्या और वर की इच्छा से होने वाले गाधर्व-विवाह का उल्लेख भी गीतो मे मिलता है —

बाहर ते आए वीरना हाँथ लिये तरवारि।
मारौं रे पूत तपसिया बहिनि मोरी माँगैं।
भीतर ते निकसी लाडिली मुतियन माँग भरे।
जिन मारौ पूत तपसिया जलम मेरो को खेइहै॥

कन्या का पिता या भाई योग्य-वर की तलाश मे स्थान-स्थान पर जाता है। जब उपयुक्त-वर मिल जाता है तो कन्या और वर के जन्म-पत्र मिलाए जाते हैं। यदि गृह-नक्षत्रादि ठीक हुए और दोनो पक्ष सम्बन्ध के लिए तैयार हुए तो विवाह का बीजारोपण वरिच्छा (वरीक्षा) से होता है। इसमे कुछ द्रव्य सामर्थ्यानुसार दिया जाता है। इसके पश्चात् 'पीरीचिट्ठी' या लगुन (लग्नपत्रिका) जाती है जिसमे यह लिखा होता है कि अमुक दिन फलदान तथा अमुक दिन विवाह का मुहूर्त है। कन्या के यहाँ से यह 'पीरीचिट्ठी' पहले पुत्री के

हाथ पर रखी जाती है और फिर वर के यहाँ भेजी जाती है। वास्तव मे हाथ पर चिट्ठी रखना उस प्रथा का अवशेषमात्र है जिसमे विवाह मे लडकी की स्वीकृति ली जाती थी। जब फलदान भेजा जाता है तो कन्या-पक्ष की स्त्रियाँ गीत गाती हैं —

फूल तौ फूलो गुलाबी सबै रग फूलो।
पाच भइआ की बहिनी अकेली रानी रुकमिनि हो ॥
कासी के पाँच बिराम्हन लइ लगुन लिखामे।
पाँचौ भइआ इक मत करो रुकमिन बिवाहौ हो ॥

फलदान के वाद घर की सारी विवाहिता स्त्रियाँ अपने भाइयो को भात न्योतने जाती है —

फूल को बेला सवाव सेर सतुआ ऊपर गुड की वट्टी
भतइअन क्हुत सकोच करी।
भात माँगन आई लला जू बीरन की वखरी ..

विवाह के कुछ दिन पूर्व मुहूर्त के अनुसार 'घना' पडता है जिसका आशय है कि उस दिन से विवाह के लिए जो सामग्री तैयार करनी होती है उसका प्रारम्भ होता है। उस दिन ग्राम की स्त्रियां इकट्ठी होती हैं और पीसना-कूटना आरम्भ होता है। इसके लिए गाम की स्त्रियो को कुछ उपहारस्वरूप दिया जाता है। विवाह के दो दिन पूर्व मडओ' (मण्डप) गाडा जाता है। गारी नामक गीतो मे मण्डप गाडने वालो के लिए मजदूरी दिलाने का भी उल्लेख मिलता है —

मडओ गडाउन आए (अमुक) लाल
अडर का दीयै जो रे चना तुम्हरी अम्मा का दीहै ..।
हरामजादे तुडका मजूरी दिवाय दीऐं।

भात माँगने मे मण्डप गडने तक की क्रिया दोनो पक्षो के घर पर होती है। कन्या के पक्ष का मण्डप छाया जाता है क्योकि उसके नीचे बैठ कर विवाह-संस्कार होता है। मण्डप वर्गाकार बाँस गाडकर फूस मे छाया जाता है। मण्डप छाने की क्रिया इस प्रकार होती है —

कीके आँगन तो मडओ काहे ते छाओ है रे।
अजुली के आँगन मडओ तो पानन छाओ है रे॥

विवाह के लिए यात्रा करने के पूर्व तेल चढाने की क्रिया भी होती है। तेल वर के पैरो, घुटनो और मस्तक पर चढाया जाता है। यह कार्य स्त्रियो द्वारा सम्पन्न होता है। तेल चढने के समय 'तेलिन तेलिन तुम वडी रानी काए को तेल सचारो आदि 'गीत गाया जाता है। तेल चढने के वाद कपडे पहनना, मौर पहँनना, 'पुरइन पूरना' आदि क्रियाएँ होती है जिनका भी उल्लेख मिलता है —

पुरइन का गीत—

पहिली पुरइन पूरिऔ हुरकिनियाँ के जाए।
दुसरी पुरइन पूरिऔ के जाए॥

मौर पहँनना—

की कुल को मालिया सो की कुल को वरना।
कहवाँ केरो मालिया कहवाँ केरी खजूर

वारात चलते समय माता, मातामही आदि को इस वात का भय रहता है कि उनके प्रेम का जो एकाधिकार अपने पुत्र पर था, वह वधू के आने पर नही रहेगा। अत माता कुएँ मे गिरने के लिए सन्नद्ध होने का प्रदर्शन करती है। वर उसको मनाता है और गीत मे स्त्रियाँ कहती है—

कुआ गिरन को माया वइठी वन्ना गिरन ना देय।

'निकरौसी' के समय भी ऐसा ही दृश्य उपस्थित होता है—

पटुली पाय धरे ठाढो लडैतो आजी चलन ना देय।
तुम को आजी मोरी वहुआ लइवो अपने को जलम सहेज।

दोनो पक्षो मे देवी-देवता तथा 'पितर' निमन्त्रित किए जाते है, जिससे विवाह-कार्य सफलतापूर्वक पूरा हो जावे। वारात वडी सजधज के साथ वैलगाडी, रथ, घोडे तथा गानेवालो से युक्त होकर चलती है

जब बारात इष्ट स्थान पर पहुँच जाती है तो कन्या-पक्ष के लोग स्वागत करते हैं और 'जनवासो' दे दिया जाता है। इसके पश्चात् 'दुआरो' होता है। कन्या का द्वार भली भाँति सजाया जाता है। द्वार पर दो कलश, दो लोटे और उनपर दो कटोरिया रखी जाती है। इसके अतिरिक्त थाली और उसमे कुछ रुपये और वस्त्राभूषण भी दिए जाते हैं। द्वार पर वर का स्वागत किया जाता है, अत इसे 'द्वारचार' भी कहते हैं। इसी समय कन्या छिपकर वर पर जौ-अक्षत फेंकती हैं। तत्पश्चात् बाराती 'जनवासे' को लौट जाते हैं और वर का बडा भाई नाई द्वारा वधू के लिए वस्त्राभूषण लाता है। इसमे बिछुए, कघा, शीशा तथा शृगार की अन्य सामग्री भी होती है। इसके बाद भाँवरो के लिए वर पटली पर बैठाया जाता है। माता कन्या का हाथ और वर का अँगूठा हल्दी से रग देती है। इसके पश्चात् माता, पिता, भाई, बडी बहनें तथा अन्य सम्बन्धी लोग कन्या के पैर पूजते है। इसको 'पैंपुजी' कहा जाता है। आटे की एक लोई बनाकर उसके भीतर एक रुपया रखा जाता है इसे 'हतलोई' कहते हैं। इसीसे पहले माता-पिता कन्या-दान देते हैं और बाद मे अन्य लोग। कन्या-दान देने वालो के लिए प्रात काल मे ही व्रत रखना आवश्यक समझा जाता है। कन्यादान के पश्चात् भाँवरे होती हैं। भाँवरो (सप्तपदी) का विवाह मे बहुत बडा महत्त्व है। कन्या और वर सत्सकल्पो के लिए एक दूसरे को सहायता देने की प्रतिज्ञा करते हैं। सप्तपदी के पूरे होने पर ही विवाह पूरा माना जाता है[1]। भाँवरो के पश्चात् वर कन्या देवी-देवताओ वाले कमरे मे ले जाये जाते है। जहाँ उनसे पूजा करवाई जाती है। इस समय एक आचार होता है जिसे 'वातीमिलाना' कहते है। वाती मिलाने मे लडका नेग के

---

१ पहिली भाँवरि होय अवे धिया बापै की। दुसरी … · … ।
अब सतईं भाँवार होय कि अब धिया साजन की।

लिए झगडता है। इमी समय सालियाँ-सलहजें भाँति-भाँति का हास्य-विनोद करती हैं।

भात के दिन सध्या को कच्चा खाना परोसा जाता है और 'ज्यो-नार' गाया जाता है जिसमे कि भाँति-भाँति की गालियाँ भी होती हैं। वढार के दिन 'कलेऊ' (पलकाचार) होता है। मण्डप के नीचे पलग विछाया जाता है। सिरहाने वर तथा पैंताने उसके पास छोटे भाई वैठते हैं। लडका खाने के पूर्व कुछ भेंट लेता है तभी खाना प्रारम्भ करता है। इस समय उसे भाँति-भाँति की वस्तुएँ दी जाती हैं। साली जूता छिपा देती है और वाद मे परेशान करके दे देनी है। अन्य लोग भी उससे वहुत अधिक हास्य-विनोद करते हैं। तीसरे दिन लडकी को विदा कर दी जाती है। यह दृश्य माता-पिता के लिए वडा ही हृदय-द्रावक होता है। विदा होने के पहले वर वुलाया जाता है और उससे मण्डप के ग्रन्थ खुलवाये जाते हैं।

वधू जव वर के घर पहुँचती है तो शुभमुहूर्त मे उसे घर के अन्दर प्रवेश कराया जाता है। इसी दिन मण्डप उखाडा जाता है और वर-वधू तथा अन्य स्त्रियाँ मण्डप 'सिराने' के लिए किसी नियत-स्थान पर जाती है। लौटते समय वधू को वर की पीठ पर कोडा मारने का आदेश दिया जाता है। लौटकर स्त्रियाँ पुरुपो को विनोद-वश पानी से भिगो देती हैं। कुछ दिन वधू ससुराल मे रहती है और वाद मे 'मायके' से उसका भाई 'चौथी' लेकर आता है। इस 'चौथी' मे मिठाइयाँ तथा अन्य खाद्य-सामग्री होती है। चौथी का अर्थ चतुर्थ दिन होता है परन्तु यह आवश्यक नही कि कन्या चौथे दिन ही लौट आवे। यदि वर और वधू वयस्क हुए तो सुहाग-रात भी हो जाती है। सुहाग-रात मे वर-वधू को एक ही कमरे मे सुलाया जाता है। इस कार्य का उत्तरदायित्व वर की वडी भाभी लेती है। सुहाग-रात पर भी गीत गाए जाते हैं। इन गीतो का उल्लेख पिछले

अध्याय मे हो चुका है। ऊपर विवाह का जो सक्षिप्त-विवरण दिया गया है, कुछ थोडे हेर-फेर के साथ यह सस्कार लगभग इसी प्रकार सम्पूर्ण कन्नौज-क्षेत्र मे ऐसा ही होता है।

अन्य-संस्कार—

गृहस्थाश्रम सस्कार का प्रत्यक्ष वर्णन तो गीतो मे नही मिलता परन्तु गृहस्थ को धर्म मे विश्वास रखना चाहिए, दान करना चाहिए आदि का तो विधान है ही। अत इस प्रकार कहा जा सकता है कि अप्रत्यक्ष रूप से इन गीतो मे गृहस्थाश्रम-सस्कार का भी वर्णन है। 'वानप्रस्थ का तो किसी प्रकार भी उल्लेख नही मिलता है। प्रत्यक्ष रूप से सन्यास-सस्कार का तो कोई विवरण नही मिलता परन्तु अनेक गीतो मे 'तपसिया' आता है, जिससे अप्रत्यक्षत कहा जा सकता है कि सन्यास-सस्कार का भी एक धुधला चित्र लोक-गीतो मे विद्यमान है।

'अन्त्येष्टि' जीवन का अन्तिम सस्कार है। साधारणत यह शोक को अवसर होता है[1]। ऐसे अवसर पर कनउजी मे गीतो का विधान नही मिलता। युवा स्त्री या पुरुष को मृत्यु होने पर सामान्यतया किसी नदी के किनारे चिता वनाकर जला दिया जाता है परन्तु वालक और वालिकाओ को भूमि मे गाड दिया जाता है। नवे दिन नौवार होता है जिसमे वाल 'मूड' दिए जाते हैं। ग्यारहवे दिन 'एकादशा' होता है जिसमे महाब्राह्मण को दान दिया जाता है। तेरहवे दिन ब्राह्मणो को भोजन कराके यह सस्कार भी समाप्त हो जाता है। इन प्रकार सस्कारो का चित्रण लोक-गीतो मे विवाह के गीतो तक ही

---

१. साधारणत इसलिए क्यो कि कहीं कहीं पर मृत्यु के लिए हर्ष मनाया जाता है। उदाहरण के लिए ब्रह्मा और चीन की सीमा पर मचोना नामक नगर के निवासी मृत्यु पर प्रसन्न होते है क्यों कि उनका विश्वास है कि मृत्यु से जीवन का वन्धन छूट जाता है।

मिलता है। शान्त-रस के कुछ भजन ऐसे भी होते हैं जिनमे मृत्यु के समय का करुण-रोदन तथा चिता जलने का चित्रण होता है।

सामाजिक जीवन का चित्रण

कनउजी लोकगीतो मे कन्नौज के समाज के प्राय प्रत्येक पहलू का वर्णन मिलता है।

समाज में स्त्री का स्थान—

हमारे शास्त्रो मे स्त्री को बहुत बडा सम्मान दिया गया है। स्त्री के जितने स्वरूप होते हैं सभी का यथोचित सम्मान किया गया है। स्त्री जन्म देती है, पालन पोषण करती है तथा अपने स्नेह के दान से मनुष्य को प्रेरणा देती है। इसका इतना अधिक महत्त्व है इसीलिए तो मनु ने यहा तक कह दिया कि —

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता.।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते तत्कुल आशु नश्यति।

अर्थात् जिस कुल मे नारी की पूजा होती है वहाँ देवता लोग रमण करते हैं, जहाँ उनकी पूजा नही होती वह कुल शीघ्र ही नष्ट हो जाता है। स्त्री का इतना अधिक महत्त्व है कि किसी भी अनुष्ठान को स्त्री के सहयोग के बिना पूरा नही समझा जाता। राम ने जब अश्वमेध यज्ञ किया था तो सीता की अनुपस्थिति मे उनकी सोने की मूर्ति बनाकर रखी गई थी। आज भी जब कोई धार्मिक-अनुष्ठान होता है, स्त्री की उपस्थिति तथा उसका सहयोग नितान्त आवश्यक समझा जाता है। परन्तु यह बात अब प्रथामात्र ही रह गई है। स्त्री का अब वह ऊँचा स्थान नही रहा जो प्राचीन काल मे था। इसका कारण है सस्कृत के तथाकथित शास्त्रो का समाज पर प्रभाव जिनमे लिखा गया है कि-'स्त्री शूद्रौ नाधीयतामिति श्रुते—अर्थात् यह श्रुति-सम्मत है कि स्त्री तथा शूद्रो को नही पढना चाहिये।

लोकगीतो मे स्त्री की दशा के जो करुण-चित्र मिलते हैं उनमे स्त्री की दशा नितान्त शोचनीय है। सन्तान के उत्पन्न होने से ही इसका सूत्रपात हो जाता है। यदि पुत्र उत्पन्न होता है तो महान् हर्ष मनाया जाता है। 'सोहर' गाये जाते है। बाजे बजते है। पुत्र जन्म को चन्द्रिका (उजिरिया) माना जाता है। परन्तु इसके विपरीत यदि पुत्री उत्पन्न हो तो घर मे ऐसा प्रतीत होता है कि कोई शोक का अवसर है। इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि समाज मे स्त्री और पुरुष के स्थान मे कितना बडा अन्तर है। अन्य भारतीय लोकगीतो के सोहरो की भाँति कनउजी सोहर मे भी कृष्ण तथा राम के जन्म का बडा ही विशद-वर्णन मिलता है। उनके जन्म पर माता-पिता तथा अन्य लोग गीतो मे बहुत प्रसन्न दिखलाई पडते है। परन्तु शान्ता तथा सुभद्रा के जन्म का प्रसग किसी एक लोकगीत मे भी नही आता कि उनके जन्म पर क्या हुआ क्या नही? इस दृष्टि से भी कहा जा सकता है कि स्त्री का स्थान पुरुष के समान नही समझा गया। जब पुत्र उत्पन्न होता है तो माता को भी इस बात का गर्व होता है कि उसने पुत्र को जन्मा है, पुत्री को थोडे ही।[१] पुत्री के उत्पन्न होने पर पिता को भी दुख होता है। उसको पुत्री से कोई घृणा अथवा चिढ नही है वरन् इसका एक मनोवैज्ञानिक कारण है। पुत्री के उत्पन्न होते ही उसके लिए यह महान् चिन्ता हो जाती है कि उसका विवाह किसके साथ किया जाय। विवाह होने पर भी उसे सुख प्राप्त होगा या नही, इसकी भी चिन्ता' नही है।[२] इसके अतिरिक्त पुत्री की ससुराल मे पिता को बान-[illegible] गाली मिलती है। जिस दिन कन्या का जन्म हुआ उसी दिन नि[illegible] गया कि पिता को गाली सहनी पडेगी। घर मे पुत्र

[illegible] भिया नहि जाई है।

१ कस्मै प्रदेयेति महान् वितर्क ।

१ पितृत्वं खलु नामकष्टम् ।।

और पुत्री के साथ एकसा व्यवहार नहीं किया जाता। भाई-बहन मे यदि झगडा हो तो माता विशेष रूप से पुत्र का ही पक्ष लेगी। खाने पीने की वस्तुओ मे भी पुत्र को प्राथमिकता दी जाती है। एक गीत मे कन्या माता से कहती है कि —

भइआ कौ पिआओ दूध कटोरन हम कौ पिआई छाछ।

कन्या ज्यो-ज्यो बढने लगती है माता-पिता की चिन्ता भी त्यो-त्यो बढने लगती है। पुत्री के विवाह के लिए उसे चिन्ता के कारण ठीक प्रकार से नीद भी नही आती। इसका वर्णन लोकगीतो मे बराबर मिलता है। पुत्री को पराये घर का धन और 'धरोहर' ही समझा जाता है। उसको लौटा देने मे पिता सुख का अनुभव करता है। लोकगीतो मे कन्या के वर ढूंढने मे कितना कष्ट होता है, इसका मार्मिक चित्रण मिलता है। अधिकाश जनता अशिक्षित है अत अन्य देशो की भाँति यहाँ पर समाचार-पत्रो मे विज्ञापन देने मे वर नहीं मिल सकता। वर कहाँ-कहाँ मिल सकता है, यही एक बडी समस्या होती है। यदि वर मिल भी जाता है तो वर वाला पर्याप्त सम्पत्ति माँगता है। अत उस समय पिता पुत्री के विवाह की समस्या की कठिनता का, अनुभव करता है। पुत्री कहती है कि हे पिता तुम सात-सात नौकरानियो और भाइयो का भार सहन कर सकते हो, केवल मेरा ही नही और यही कारण है कि तुम मुझे अनजाने स्थान को ढकेल रहे हो। यदि तुम्ह मुझको पराये घर भेजना ही था तो मुझे क्यो लाड प्यार किया और भर-भर कटोरो 'साढी' वाला दूध क्यो पिलाया ? इसी प्रकार भाई से भी कन्या कहती है कि —

छोडि देव भइया डुलिया हमारी जानि देउ ससुरारि।
सात बदिया को बोझ सहियौ तुम भइया एक हमारोई नाहि।

इन उपर्युक्त पक्तियो मे बहन की अन्तर्वेदना की जैसी अभिव्यक्ति हुई है वैसी शिष्ट-साहित्य मे मिलना कठिन है। जब कन्या का विवाह हो जाता है तभी माता-पिता सुख की नीद सोते हैं। एक गीत

लोकगीतो मे स्त्री की दशा के जो करुण-चित्र मिलते हैं उनमे स्त्री की दशा नितान्त शोचनीय है। सन्तान के उत्पन्न होने से ही इसका सूत्रपात हो जाता है। यदि पुत्र उत्पन्न होता है तो महान् हर्ष मनाया जाता है। 'सोहर' गाये जाते है। बाजे बजते हैं। पुत्र जन्म को चन्द्रिका (उजिरिया) माना जाता है। परन्तु इसके विपरीत यदि पुत्री उत्पन्न हो तो घर मे ऐसा प्रतीत होता है कि कोई शोक का अवसर है। इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि समाज मे स्त्री और पुरुष के स्थान मे कितना बडा अन्तर है। अन्य भारतीय लोकगीतो के सोहरो की भाँति कनउजी सोहर मे भी कृष्ण तथा राम के जन्म का बडा ही विशद-वर्णन मिलता है। उनके जन्म पर माता-पिता तथा अन्य लोग गीतो मे बहुत प्रसन्न दिखलाई पडते हैं। परन्तु शान्ता तथा सुभद्रा के जन्म का प्रसग किसी एक लोकगीत मे भी नही आता कि उनके जन्म पर क्या हुआ क्या नही ? इस दृष्टि से भी कहा जा सकता है कि स्त्री का स्थान पुरुप के समान नही समझा गया। जब पुत्र उत्पन्न होता है तो माता को भी इस बात का गर्व होता है कि उसने पुत्र को जन्मा है, पुत्री को थोडे ही।[१] पुत्री के उत्पन्न होने पर पिता को भी दुःख होता है। उसको पुत्री से कोई घृणा अथवा चिढ नही है वरन् इसका एक मनोवैज्ञानिक कारण है। पुत्री के उत्पन्न होते ही उसके लिए यह महान् चिन्ता हो जाती है कि उसका विवाह किसके साथ किया जाय। विवाह होने पर भी उसे सुख प्राप्त होगा या नही, इसकी भी चिन्ता कम नही है।[२] इसके अतिरिक्त पुत्री की ससुराल से पिता को बात-बात पर गाली मिलती है। जिस दिन कन्या का जन्म हुआ उसी दिन निश्चित हो गया कि पिता को गाली सहनी पडेगी। घर मे पुत्र

१—हमेने जाए हैं नन्दलाल धिआ नाँहि जाई है।

२—पुत्रीति जाता महती हि चिन्ता कस्मै प्रदेयेति महान् वितर्कः।
दत्वा सुखं प्राप्स्यति वानवेति कन्या पितृत्वं खलु नामकष्टम्।।

और पुत्री के साथ एकसा व्यवहार नही किया जाता। भाई-बहन मे यदि झगडा हो तो माता विशेष रूप से पुत्र का ही पक्ष लेगी। खाने पीने की वस्तुओ मे भी पुत्र को प्राथमिकता दी जाती है। एक गीत मे कन्या माता से कहती है कि —

भइआ को पिआओ दूध कटोरन हम को पिआई छाछ।

कन्या ज्यो-ज्यो बढने लगती है माता-पिता की चिन्ता भी त्यो-त्यो बढने लगती है। पुत्री के विवाह के लिए उसे चिन्ता के कारण ठीक प्रकार से नीद भी नही आती। इसका वर्णन लोकगीतो मे बराबर मिलता है। पुत्री को पराये घर का धन और 'धरोहर' ही समझा जाता है। उसको लौटा देने मे पिता सुख का अनुभव करता है। लोकगीतो मे कन्या के वर ढूँढने मे कितना कष्ट होता है, इसका मार्मिक चित्रण मिलता है। अधिकाश जनता अशिक्षित है अत अन्य देशो की भाँति यहाँ पर समाचार-पत्रो मे विज्ञापन देने से वर नही मिल सकता। वर कहाँ-कहाँ मिल सकता है, यही एक बडी समस्या होती है। यदि वर मिल भी जाता है तो वर वाला पर्याप्त सम्पत्ति माँगता है। अत उस समय पिता पुत्री के विवाह की समस्या की कठिनता का, अनुभव करता है। पुत्री कहती है कि हे पिता तुम सात-सात नौकरानियो और भाइयो का भार सहन कर सकते हो, केवल मेरा ही नही और यही कारण है कि तुम मुझे अनजाने स्थान को ढकेल रहे हो। यदि तुम्हे मुझको पराये घर भेजना ही था तो मुझे क्यो लाड प्यार किया और भर-भर कटोरो 'साढी' वाला दूध क्यो पिलाया ? इसी प्रकार भाई से भी कन्या कहती है कि —

छोडि देव भइया डुलिया हमारी जानि देउ ससुरारि।
सात बदिया को बोझ सहियौ तुम भइया एक हमारोई नाहि।

इन उपर्युक्त पक्तियो मे बहन की अन्तर्वेदना की जैसी अभिव्यक्ति हुई है वैसी शिष्ट-साहित्य मे मिलना कठिन है। जब कन्या का विवाह हो जाता है तभी माता-पिता सुख की नीद सोते हैं। एक गीत

मे माता कहती है कि हे पुत्री ! तुम्हारे विवाह की चिन्ता मे मग्न एव उद्विग्न-हृदय तुम्हारे पिता का सताप तभी शान्त होगा जिस दिन वे तुम्हे ससुराल के लिए विदा कर देगे।

कन्या की यह स्थिति आर्थिक कारण से भी है क्योकि माता-पिता के लिये पुत्र कमाता है परन्तु पुत्री उलटा खर्च करवाती है। परन्तु इस बात को लेकर यह नही कहा जा सकता कि माता-पिता स्वार्थी है। वास्तव मे बात यह है कि कन्नौजी लोगो की आर्थिक-दशा इतनी अच्छी नही रही है कि वे दहेज के बोझ को सहन कर सकें और यही कारण है कि वे अपनी पुत्रियो को उपयुक्त पात्र को सौंपने मे समर्थ नही होते जिसका मनोवैज्ञानिक परिणाम यह होता है कि वे पुत्री का हृदय से स्वागत नही कर पाते है। आर्थिक पहलू को छोडकर अन्य पहलुओ मे लडकी का अत्यधिक सम्मान किया जाता है। कन्या को इतना ऊँचा पद दिया गया है कि विवाह के समय माता-पिता जिन्होने उसको जन्म दिया है, वे ही इसके पैरो को पूजते हैं। कन्या के पैरो के पूजने को गीतो मे बहुत बडा पुण्य माना गया है। यह बात घरवालो तक ही नही सीमित है वरन् परिवार से इतर लोग भी कन्या के पैर पूजते हैं। धर्म के क्षेत्र मे भी कन्या को बडा ही पवित्र माना गया है। गीतो मे जहाँ-जहाँ दान का महत्त्व बताया गया है और कहा गया है कि किन-किन लोगो को दान देना चाहिए, वहाँ यह भी स्पष्ट रूप से कहा गया है कि कन्याओ को दान देना और उन्हे भोजन कराना बहुत पुण्य का कार्य है। कन्नौजी-क्षेत्र मे ब्राह्मणो को भोजन कराने से भी अधिक महत्त्व कन्याओ को भोजन कराना समझा जाता है। इस प्रकार हम देखते है कि एक ओर तो कन्या उपेक्षित है और दूसरी ओर उसको बहुत ही बडा गौरव प्रदान किया गया है।

विवाह होने पर स्त्री को पुरुष की अर्धांगिनी कहा गया है। जीवन-रूपी गाडी के स्त्री और पुरुष दो पहिये हैं। एक पहिये के न होने पर

गाडी ठीक प्रकार से नहीं चल सकती गृहिणी,का इतना महत्त्व बतलाया गया है कि उसके बिना घर को घर ही नही कहा जा सकता[1]। स्त्री और पुरुष एक दूसरे के पूरक हैं। इस प्रकार जीवन तभी सुचारुरूप मे चल सकता है जब स्त्री को भी पुरुष की भाँति अधिकार प्राप्त हों परन्तु बात ऐसी नही है। व्यावहारिक-जीवन मे स्त्री की दशा बडी ही दयनीय है। उसे यदि कुछ मिलता है तो वह है सब ओर से उपेक्षा-भाव,प्रवचना,दण्ड और अनन्त-कष्ट। कनउजी लोक-गीतो मे पुरुष को स्त्री के ऊपर पूर्ण स्वायत्त मिलता है। वह चाहे जितनी भी दण्डित की जाय, चाहे जितनी ताडित की जाय, पर उसे कुछ बोलने का भी अधिकार नही है। उसके लिये यही वांछनीय है कि वह दु खो को हँस-हँस कर सहे, क्रोध को अमृत के प्याले की भाँति पी जावे और पीटी जाने पर आह भी न करे। स्त्री को सास, ननद, ससुर, जेठानी आदि जो कष्ट देती है उनका सोहर, सावन और जाँत के गीतो मे जो चित्रण हुआ है उसको देखकर कोई भी ऐसा सहृदय नही होगा जिसके अश्रुधारा न प्रवाहित हो उठे। इस वर्णन मे भवभूति और वाल्मीकि से भी अधिक करुणा फूट निकली है।

एक सावन गीत मे स्त्री सास से झूला झूलने की आज्ञा मागती है। सास अनेक बहानो द्वारा उसे रोकती है। वह कहती है कि हे बहू यदि झूला झूलने की तुम्हारी साध है तो पहले पीस कर रखे जाओ। जब बहू पीस कर रख देती है तो वह फिर कहती है कि अब गोबर पाथ कर जाना, इसी प्रकार भोजन आदि तैयार करने को कहती है। ससुराल से बहू को भाति भाति के कष्ट मिलते हैं। वह पीटी जाती है। स्त्री मीठी बात की कितनी लालसा रखती है, यह नीचे की पक्तियो से स्पष्ट है—

१—गृहिणी गृहमुच्यते। महाभारत शान्ति पर्व १४४।६६।

ससुरे मैं मिलिहैं लात अउर घूंसा
मइके मैं मीठी सी बात
ससुरे ना मैं जइहो रे।

एक गीत मे भाई वहन के यहाँ से लौट कर जाता है और अपनी माता से वहिन की दशा का वर्णन करता हुआ कहता है कि —

वहिन तो माया मोरी ऐसे रोवैं जैसे मघा के बूंद।
देही तो मइया मोरी अइसी मइली जइसे दिवाल को लेस।
कपडा तौ मइया अइसे मइले जइसे तेली को चीकट।
पोठी तौ मइया अइसी जइसे धोबी को पाट।

पिटना ही उसके लिए दुःख नही है, इतना शायद वह सहन भी कर ले। पर उसके दुःख की तो पराकाष्ठा तब होती है जब उसकी निर्दोष माता, पिता और भाइयो को अगणित गालियाँ मिलती है। उससे कहा जाता है कि तुम लेकर के आई ही क्या हो? घर मे जब सब लोग भोजन कर लेते हैं तब कही खाने को उसे मिलता है और उसे जूठा खाना भी खाना पडता है। घर मे खाद्य-पदार्थो के होने पर भी उसके लिये अच्छा भोजन नही मिलता। एक गीत मे यह प्रसग आता है कि 'छीके' पर 'रधी' मछलियाँ रखी रहती है फिर भी उसको रोटी के साथ नमक भी नही मिलता[1]।

यह तो कनउजी लोक-गीतो मे स्त्री की दशा का विकृत-पक्ष हुआ। इनके विपरीत दूसरा पक्ष भी है जिसमे स्त्री सास की आँखो का तारा, पति के लिए चन्द्रज्योत्स्ना तथा ससुर के लिए सुविधाओ की खान होती है। उसे सब ओर से सम्मान प्राप्त होता है। परन्तु यह बात अवश्य है कि जिन गीतो मे इस प्रकार का चित्रण है, उनकी सख्या नितान्त न्यून है। अधिकाश गीतो मे तो असीम वेदना ही है। इन थोडे से गीतो

---

१ रधी मछुरियाँ सीके धरी तऊ रोटी पै नून न देय।

मे जिस पक्ष का वर्णन हुआ है, वह अत्यन्त उज्ज्वल, दिव्य और स्वर्गीय है। दाम्पत्य-जीवन की सुन्दर झाकी देखने को इसमे मिलती है। जीवन रूपी नौका मे बैठ कर दोनो पतवार पकडते हैं, आधी आने पर उसका सामना करते हैं, दु ख के समय साथ ही साथ आँसू बहाते हैं और हर्ष के समय साथ ही साथ हसते और आनन्द मनाते है। विवाह के समय ससुर और सास जिस अभिलाषा से, जिस हर्ष से बहू की प्रतीक्षा करते हैं, उसके प्रति जितना स्नेह रखते हैं, वह अवर्णनीय है। धार्मिक अनुष्ठानो मे न्यूनाधिक स्त्री का वही स्थान आज भी है जो प्राचीन काल में था। यह तो स्त्री की स्थिति का यथार्थ-चित्रण हुआ परन्तु स्त्री के साथ व्यवहार के लिए कुछ आदर्श के भी मान-दण्ड हैं। स्त्री सदैव ही सम्माननीय है। एक लोक कवि कहता है कि —

नारी निद्रा ना कोइ करिओ नारी है नर की खान।
नारी ते नर अइसे हैं उपजे धुरू पहिलाद समान ॥

स्त्री की आर्थिक-पराधीनता—

पितृ-प्रधान परिवारो के कारण पिता की सम्पत्ति का अधिकारी पुत्र होता है। पुत्री को उसका कोई भी अश नही मिलता। जब विवाह के पश्चात् स्त्री अपनी ससुराल जाती है तो वहाँ की सम्पत्ति की भी वह अधिकारिणी नही होती, पति ही अधिकारी होता है। इस प्रकार आर्थिक-दृष्टि से उसे पति पर निर्भर होना पडता है। स्त्री की समाज मे ऐसी कमजोर स्थिति समझी जाती है कि इस आर्थिक पराधीनता से वह मुक्त भी होना चाहे तो नही हो सकती क्योकि उसके पग-पग पर बाधा पडती है। खेत पर अकेले वह काम नही कर सकती। किसी घर अकेली वह रह भी नही सकती, उसे हर स्थिति में पुरुष का आश्रय आवश्यक है[1]। इसके अतिरिक्त प्राय स्त्री अशिक्षित होती है। अत

---

1 पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने।
पुत्रश्चस्थविरे भावे न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति। मित्रलाभ

अपनी जीविका के लिए वह कर ही क्या सकती है? पति उसे जिस प्रकार रखे, उसे रहना पडता है। स्त्री का भार पति प' ही होता है और इसी कारण जब पति घर मे कही बाहर चला जाता है तो उसकी स्थिति अत्यन्त शोचनीय हो जाती है। इस समय उसे ससुर, सास और देवर सभी ताने देते है। अनेक लोक-गीतो मे पति जब विदेश जाता है तो अपनी पत्नी से कह जाता है कि वह चर्खा कातकर अपनी जीविका चलावे। चर्खा से आवश्यक खर्च की पूर्ति नही होती जिससे कि वियोग के कष्ट के साथ उसे आर्थिक-सकट भी सहन करना पडता है। कभी-कभी तो पति को गए इतना समय बीत जाता है कि चर्खा जीर्ण-शीर्ण होने लगता है और स्त्री को यह चिन्ता हो जाती है कि आय का जो एक साधन चर्खा था, उसके समाप्त हो जाने पर क्या होगा ? पति की कौन जाने, वह आएगे भी कि नही।

अनेक लोक-गीतो मे विरहिणी, स्त्री की शोचनीय आर्थिक-दशा से लम्पट पुरुषो ने लाभ उठाना चाहा है। कोई वर कहता है कि हे कामिनी, तुम्हारा पति अब वापस नही आयगा, तुम्हारी ओढनी जीर्ण-शीर्ण हो गई है घांघरे मे पैवन्द लगे है, चोली भी फट चुकी है। यदि तुम मेरा पत्नीत्व स्वीकार करो तो मै तुम्हे रेशमी वस्त्रो से ढक दूँगा, तुम्हारे लिए अच्छे भोजन का प्रबन्ध करूँगा और तुम्हे अपने नेत्र के तारे की तरह रखूंगा —

फटि गई उढनि गोरी तुम्हारी लहँगा मे पिउदा हजार।
पौढो जो गोरी हमरी मिजिआ झाँकै तुम्हे उढना पटोर।
खइबे का देय गोरी अच्छो अच्छो भुजना राखो नयनवा की कोर।

इस प्रकार हम देखते है कि स्त्री की जो शोचनीय-दशा है, उसे भाँति-भाँति के जो अत्याचार सहने पडते है, इन सब का मूल कारण उसकी आर्थिक-पराधीनता ही है। जब तक स्त्री आर्थिक-दृष्टि मे स्वतन्त्र नही होती, उसे इसी प्रकार घुट-घुट कर मरना होगा। उसका त्राण और किसी प्रकार भी सम्भव नही।

वन्ध्या का कष्ट—

स्त्री के कई रूप होते हैं। उसका माता का रूप सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। उसकी माता कहलवाने की इतनी बडी लालसा होती है कि इसे वह किसी भी मूल्य पर प्राप्त करने की चेष्टा तथा प्रयत्न करती है। विना सन्तान के स्त्री अपने जीवन को नितान्त व्यर्थ समझती है, भले ही उसका घर धन-धान्य तथा अन्य समृद्धियो से क्यो न आपूरित हो। स्त्री में जो वलिदान की भावना होती है उसकी अभिव्यक्ति हम सवसे अधिक मातृत्व मे ही पाते है। पुत्र के लिए माता घोर से घोर कष्ट को सहन कर सकती है, अपने सुख को तिलाजलि दे सकती है, परन्तु उसका अभाव ही उसके जीवन को नि सार और व्यर्थ वना देता है। अनेक लोक-गीतो मे स्त्री देवी-देवताओ से पुत्र की कामना करती है[1]। स्वय पार्वतीजी का उल्लेख है कि वे 'छठी माता' का व्रत पुत्र-प्राप्ति के लिए रखती हैं। शीतला माता, विष्णु, शकर आदि देवी देवताओ की प्रार्थना मे अनेको गीत हैं जिनमे स्त्री पुत्र के लिए स्त्री प्रार्थना करती हुई दिखाई पडती है। एक गीत मे एक स्त्री गगा जी के किनारे तपस्या करती है। पुत्र-हीनता के कारण वह गगा जी से प्रार्थना करती है कि 'हे गगा माता! मुझे एक लहर दो जिसमे मैं डूव जाऊँ"। गगा जी उससे पूछती हैं—"क्या तुम्हे सास-ससुर दु ख देते हैं अथवा तुम्हारा मायका दूर है? अथवा तुम्हारे पति परदेश चले गए है"? स्त्री उत्तर देती है कि "गगाजी! न तो मुझे सास-ससुर दु ख देते है और न नैहर ही दूर है और न मेरे पति ही परदेश चले गए है। मैं कोख दु ख से डूव रही हूँ[2]"। अन्य लोक-गीतो मे तो समाज और घरवाले उसे पुत्र-हीना होने के कारण दु ख देते हैं और इसीसे वह सन्तति की ओर भी अधिक कामना करती है। परन्तु इस गीत मे तो

१—परिशिष्ट देवी के गीत।

२—परिशिष्ट सोहर।

वाँझ के दुःख की तब तो चरम-सीमा ही हो जाती है जब स्नेह की प्रतिमा माता भी उसे आश्रय नही देती । इतना ही नही धरती-माता भी उसके वध्यापन से भयभीत है । ऐसा प्रतीत होता है मानो वध्यापन कोई सक्रामक रोग है जो अन्य लोगो को भी लग जाता है । इसीसे वध्या को पुत्र का सुख मिले अथवा न मिले, पर वह इतना अवश्य चाहती है कि उसका वध्या कहलाना छूट जावे । एक लोक-गीत मे वर्णन मिलता है कि राम के उत्पन्न होने पर कैकेयी ने कहा कि राम तो वन को जाएँगे । इसके फलस्वरूप दशरथ ने कोशल्या को आदेश दिया कि हे रानी धीरे-धीरे पट लुटाओ क्योंकि राम तो वन जावेंगे । कौशल्या की इस समय बडी ही मार्मिक उक्ति है, 'राजा तुम बावले हो । तुम्हारी मति किसने हर ली ? राम भले ही वन चले जाएँगे परन्तु मेरा बाँझिन नाम तो छूट गया है ।'

गगा से तपस्या करने का गीत अवधी मे भी पाया जाता है[1] । पर कनउजी मे व्रज की भाँति यह गीत काठ के बालक के प्रसग मे भी चलता है जब कि पूर्वी-गीत वरदान के बाद ही समाप्त हो जाता है । वरदान के पश्चात् स्त्री को नौ महीने तक धैर्य नही रहता और वह बढई से बालक बनवाती है और उसको लेकर सोती है और हर समय उसीको साथ रखती है । कनउजी-गीत मे काठ के बालक का प्रसग सुखान्त अवश्य है परपूर्वी गीत दुःखान्त होने पर भी हृदय पर एक चोट करके करुण-रस मे हमे डुबो देता है —

> बाबुल मोरे आँगने रोइ न सुनउतेउ मैं बाँझिनि कहावउ हो ।
> दैव गढन्न मैं होतेउँ तौ रोय सुनउतेउँ हो ।
> रानी बढई के गढल होरिलवा रोवन नाही जानइ हो ।

विधवा

हिन्दू धर्म के अनुसार पुरुष अनेक विवाह कर सकता है । यदि

1—कविता कौमुदी ग्रामगीत सोहर ३

उसकी पत्नी मर जाती है तो सामान्यतया वह दूसरा विवाह कर लेता है। परन्तु पति के दिवगत होने पर स्त्री दूसरा विवाह नही कर सकती। उसके लिए तो कहा गया है कि 'तिरिया के दूसरी वार तेल नही चढना'। अर्थात् उसका दूसरी वार विवाह नही हो सकता। दूसरी ओर उसे उत्तराधिकार मे भी कुछ नही मिलता। अत वह घर के अन्य कुटुम्बियो के आश्रित रहती है। उसको भाँति-भाँति के कष्ट मिलते हैं। उसके लिए अनेको नियम है। वह श्रृगार नही करती, अच्छा भोजन नही करती। स्त्री के लिए तो कडे नियमो का पालन करना पडता है परन्तु दूसरी ओर दुष्ट-पुरुष उसके मार्ग मे वाधक वनते है। इसी कारण कनउजी मे एक कहावत है कि 'रडिआ तौ अपनो रडापो काटि डारै पै जव रडुआ काटन देय'। अर्थात् विधवाएँ तो अपना वैधव्य-जीवन बिता सकती है परन्तु विधुर लोग उसको ऐसा नही करने देते।

वैधव्य के अभिशाप से वचने के मिए स्त्रियाँ देवी-देवताओ से अपने सुहाग को अमर वनाने की प्रार्थना करती है और अपने पति को विदेश जाने से रोकती हैं। लोक-गीत उस समय के भी है जव देश मे पूर्ण शान्ति नही थी। मार्ग निरापद नही थे और पति वहुत दिन के पश्चात् लौटते थे। अत स्त्री उन्हे घर के वाहर नही निकलने देती थी क्योकि उसे यही भय रहता था कि यदि उसका पति किसी आपत्ति मे फँस कर मर गया तो उसके जीवन को कौन पार लगाएगा। इसी कारण जव पति परदेश जाने को सन्नद्ध भी हो जाता था तो वह वरावर निर्देश करती थी कि अमुक दिशा को मत जाना, वहाँ प्राणो के चले जाने का भय है।

एक सावन-गीत मे जव पति अपनी पत्नी को कष्ट देता है तो पत्नी का भाई अपने वहनोई को मार डालता है। इस वात को सुनकर स्त्री

अपने भाई से कहती है कि हे भाई ! तुमने अपने सगे वहनोई को मार डाला है। अव मेरी 'मडइया' को कौन छावेगा और कौन मेरा प्रतिपाल करेगा। इसी प्रकार एक अन्य गीत मे पति छद्म-वेश मे अपनी पत्नी के साथ पनघट पर छेड-छाड करता हे। स्त्री का भाई एक-एक करके सब से हथियार माँगता है जव उसे कोई भी हथियार नही देता तो वह स्वय ही लेकर अपने वहनोई (जो छद्म-वेश मे था) को मार डालता है जव वह लौटता है तो वहन खून से भरी तलवार देखती है और पूँछती है, भइया यह खून कहा लग गया है ? भाई पूरी कहानी बतलाता है। यह सुनकर वहन करुण-क्रन्दन करने लगती है और भाई से कहती है —

की की पहिरौं हरी पेरी चुरिया की पै करौ सिंगार ।
कौन छवइयै राड की मडइया कौन करै पतिपाल ।
की की देहरिया लै वइठइयौ की के सहइऔ बोल ।

जनेऊ, विवाह आदि मुख्य सस्कारो में भी विधवा की उपस्थिति अमगल समझी जाती है। विशेपरूप से विवाह मे उसका होना किसी को अच्छा ही नही लगता। सवको यही भय रहता है कि जिस प्रकार वह विधवा है, उसी प्रकार जिसका विवाह हो रहा है, वह भी न हो जावे। जितने लोकाचार होते हैं उन्हे मधवा स्त्रियो द्वारा ही सम्पादित कराया जाता है।

विधवा की दशा पर विचार करके हम कह सकने है कि नारी के लिए वैधव्य से वडा और कोई अभिशाप नही हो सकता। स्त्रियाँ जव एक दूसरे से झगडती है तो विधवा होने का शाप देती है। वे कहती है कि 'तू राड हुइ जा', 'तोरी चुरियाँ फूटि जायँ' आदि।

आदर्श सतीत्व—

हमारे देश की स्त्री अपने सतीत्व के लिए विश्वविख्यात है। उसके इतने वडे सयम मे किसी भी देश की स्त्री होड नही कर सकती। हमारे देश की स्त्रियाँ पतिव्रता होती है। उनकी चाहे जो भी स्थिति हो, चाहे

जितना उन्हे कष्ट क्यो न हो परन्तु अपने धर्म से वे विचलित नहीं होती। उनका पति कुरूप और अग-भग ही क्यो न हो पर फिर भी कोई भी उन्हे पातिव्रत-मार्ग से डिगा नही सकता। कनउजी लोक-गीतो में हमारी ललनाओ का चरित्र वडा ही पवित्र शुद्ध और निर्मल दिखाया गया है। सतीत्व की रक्षा के लिए उन्होने कष्टो को हसते-हसते सहा है, विविध विषम-परिस्थितियो मे पडकर वलशाली-कामुको, आततायी मुगलो को छठी का दूध याद दिला दिया है। धन की अपार-राशि उनके सतीत्व को न खरीद सकी। सतीत्व का जो आदर्श यहाँ चित्रित है, वह किसी भी देश के लोक-गीतो में दुष्प्राप्य है।

'धन्नइया' नामक प्रवन्ध-गीत में 'वकेसुर' के राजा गजोधर की पुत्री पद्मिनी का जव विवाह हो रहा था तो मडप में ही नगमुनियाँ ने खरगलाल को डँस लिया जिससे की उसकी मृत्यु हो गई। तव पद्मिनी धन्नइया वनाकर गगा-मार्ग से अपने पति के शव के साथ 'कुरू कमछ्या' चल दी। वहाँ पर उसने अपने पति को जिला लिया। परतु वगाल में जादू का वडा प्रचार था, अत कई दुष्टा स्त्रियो ने उसे वैल, गधा आदि वना दिया। पद्मिनी ने युक्तियो से उसे फिर मनुष्य वनाया और अन्त में वे दोनो अपने देश को लौट आए। इस स्त्री को बीच में वहुत प्रलोभन मिले, परतु सवको उसने ठुकराया और अपने आदर्श-सतीत्व की रक्षा की।

"ऊभदेव का गौना" नामक प्रवन्ध-गीत में भी ऊभदेव की स्त्री ने वडी ही वीरता से शत्रुओ का सामना किया। शत्रुओ ने ऊभदेव को मारकर उससे अनुचित प्रस्ताव किया। उसने उन्हे वुरी तरह फटकारा और सती होने के लिये तैयार हो गई —

इकदिन पिया मोरो वौ हतो जव पनरस परी हती गाँठ।
इकदिन पिया मोरे वौ हतो जव लेन गउनो गए मोर।
इकदिन पिया जौ भओ जव हम जरैं तुम्हारे साथ।

जिस प्रकार पूर्वी-गीतो मे कुसुमा देवी का प्रसग मिलता है उसी प्रकार कुछ हेर फेर के साथ कनउजी में भी। कुसुमा देवी के घर को मुगल घेर लेते है और उसके घरवालो को कुसुमा देवी के देने का आदेश देते है। मुगल इतने अधिक है कि प्रतिरोध करने पर कुसुमा के पिता तथा भाइयो को मृत्यु के घाट उतर जाने का सन्देह है। पिता तथा बडे भाई लडने को तैयार भी हो जाते है, पर कुसुमा अपने बलिदान द्वारा पिता तथा भाइयो को बचा लेती है। वह मुगलो के साथ जाने को तैयार हो जाती है। चलते-चलते वह मुगलो से अनुरोध करती है कि अब तो मेरे माता-पिता का घर सदैव के लिये छूटा जाता है। अत मुझे पिता के तालाब मे एक बार पानी तो पी लेने दो। मुगल बहुत आग्रह करने पर तैयार हो जाते है। कुसुमा तालाब मे कूद कर अपने प्राण दे देती है। इस प्रकार वह अपने भाइयो तथा पिता की भी रक्षा कर लेती है और अपने सतीत्व की भी।

एक सावन-गीत मे स्त्री अपने नैहर जाती है। मार्ग मे नदी पडती है। मल्लाह को नदी की उतराई मे वह अपनी अँगूठी देना चाहती है। परन्तु मल्लाह बडा कामुक और दुष्ट है, वह उसके यौवन की याचना करता है। इस पर वह स्त्री पहले तो समझाती है, परन्तु बाद मे तैरती हुई चली जाती है और कहती है कि लौटते समय अपने भाई से कहकर तुम्हारी खाल मे भूसा भरवा दूंगी —

मलहा खेइ नवइया उतारौ पार डोला मेरो भीजै विरिछतर।
का जो दिऔ रनिया खिवाई ? दी है मलहा हाथ मूदरी।
अउर गरे को हार डाला मेरो भीजै विरिछतर।
नार न झोकैं रानी मूदरी समुद बहामौ तेरो हार।

डोला

तुम्हरे तीन रानी दुइ निबुला उइ मैं ते एक चिखावौ डोला।
निबुला तौ मोरैं मलहा विस भरे खाइ के तुम मरि जाव डोला।

जो रानी निबुला विस भरे तुम्हरे हरि कइमे जियँ डोला॰
हमरे तौ हरि बारी के भउँरा कलिन कलिन रस लेय डोला॰
पार मैं जइयौं नदिया पइगि के सुनु मलहा रे डोला॰
लउटत बिरियाँ सुनि रे मलहा भरइयो भुस तोरी खाल मे
भइया से डोला॰

इसी प्रकार अन्य अनेक गीत हैं जिसमे स्त्रियाँ कभी राजपूतो को डाँट देती है कभी वह बहकाने वाले पुरुष से कहती हैं कि तुम्हारे जैसे तो मेरे नौकर हैं ? पुरुप का इसमे बडा अपमान और क्या हो सकता है ? एक गीत मे जयसिंह लाची नामक गरीब स्त्री से अनुचित प्रस्ताव करते हैं। उसके उत्तर मे लाची बडा खरा उत्तर देती है। वह कहती है कि तुम मुझे अपने धन और ऐश्वर्य के प्रलोभन मे नही डाल सकते। सौन्दर्य मे तुम मेरे पति के सम्मुख तुच्छ हो। तुम यहाँ से चले जाओ। जयसिंह अपना सा मुँह लेकर वहाँ से वापस आते हैं।

ऐसे भी गीत हैं जिनमे कि पति बारह वर्ष बाद आता है और छद्मवेश मे अपनी पत्नी की परीक्षा करता है। वह कहता है कि तुम्हारा पति बहुत दिन हुए बाहर गया है, अब वह वापस नही आ सकता। तुम मेरे आश्रय मे आ जाओ। मैं तुम्हे बहुत सुख दूंगा। स्त्री उसे बहुत फटकारती है और तब वह कहता है कि मैं तो तुम्हारा पति हूँ।

अग्रेजी शासन-काल मे राममोहन राय के प्रयत्न से सती प्रथा को बन्द करा दिया गया। परन्तु हमारे लोक-गीतो मे अब भी ऐसे अनेक प्रसग आते है जिनमे अनेको स्त्रियाँ सती हो गई हैं। लोक-गीतो मे समय और नामो का विशेप महत्त्व नही होता और न उसका स्पप्ट उल्लेख ही होता है। यही कारण है कि सावन तथा जात के गीतो मे केवल ऐसे उल्लेख मिलते हैं कि जेठ ने छोटी भाभी पर मुग्ध होकर अपने छोटे भाई को मार डाला और भाभी को अपनी पत्नी बनाना चाहा। स्त्री चातुर्य मे उसको चकमा देती है और कहती है कि पहले मुझे पति का दाह-सस्कार

कर लेने दो तब मैं तुम्हारा पत्नीत्व ग्रहण करूँगी। दाह-सस्कार मे वह चिता मे जल जाती है और अपने सतीत्व की रक्षा करती है—

जाव-जाव जेठा आगी लइ आवौ सामी के दाग लगइवो हम हो।
जो तुम होव सामी साँचे बिहउता अँचरा आगी जरि उठैनाहो।
अचराभभकि उठो सती न भसम भई जेठ मीसैं दोउ हाथ ना हो॥

देवर के भी अनुचित प्रस्ताव पर स्त्री सती हो जाती है, ऐसे भी प्रसग गीतो मे वरावर मिलते है। ऐसे भी गीत है जिनमे कि स्त्री चिता के पास खडी होकर कहती है कि यदि मैं सचमुच पवित्र-आचरण वाली हूँ तो मेरे अचल से अग्नि उत्पन्न हो जावे। अग्नि उत्पन्न हो जाती है। और स्त्री अपने पति के साथ चिता मे भस्म हो जाती है। थोडे दिन हुए हैं, फर्रुखाबाद के पास इकनौरा ग्राम मे एक स्त्री सती हो गई थी, उसका भी उल्लेख आधुनिक लोक-गीतो मे मिलता है।

आदर्श सतीत्व तथा सती होने की भावना का आरोप पशुओ मे भी किया गया है। सोहर-गीतो मे हरिणी शिकारी से अपने पति के सीस और हड्डियो की याचना करती है, जिसके साथ उसे सती होना है।

दिव्य (किरिया)—

प्राचीन-भारत मे निर्णय के लिए अनेक साधनो का प्रयोग होता था। अपराधी के निर्णय मे साक्ष्य, लिखित-प्रमाण आदि साधारण साधन असफल हो जाने पर असाधारण या अलौकिक साधनो का प्रयोग किया जाता था। इन साधनो को, अलौकिक होने के कारण 'दिव्य' कहा गया है। नारद ने लिखा है कि जब किसी अभियोग मे साक्षी न मिले तो भिन्न-भिन्न दिव्यो और शपथ द्वारा उसका न्याय करना चाहिए[1]। लोक-गीतो मे दिव्य के लिए 'किरिया' शब्द का प्रयोग

---

१. यदा साक्षी न विद्येत, विवादे वदतां नृणाम्।
तदा दिव्यैः परीक्षेत शपथैश्च पृथग्विधैः॥

किया गया है।[१] विष्णु धर्मसूत्र मे अलौकिक प्रमाण को दैविकी क्रिया[२] कहा गया है। धीरे-धीरे क्रिया का किरिया[३] हो गया और दैविकी का लोप हो गया। कनउजी लोक-गीतो मे भी 'किरिया' का प्रयोग पाया जाता है। नारद ने लिखा है कि दिव्य का प्रयोग उस समय भी क्रिया जा सकता है जब किसी स्त्री के चरित्र पर सन्देह हो[४]। वस्तुत दिव्य का प्रयोग लोक-गीतो मे किसी अन्य अपराध के लिए नही वरन् स्त्रियो के सतीत्व की परीक्षा के लिए ही पाया जाता है। किसी स्त्री का पति परदेश चला जाता है। वहाँ दूसरा विवाह करके बारह वर्ष बाद लौटता है और अपनी स्त्री के चरित्र पर सन्देह प्रकट करता है। स्त्री 'किरिया' द्वारा अपने को शुद्ध चरित्रवाली प्रमाणित करती है और तब उसे पति ग्रहण करता है। लोक-गीतो मे स्त्री के सम्बन्धी भाई, पिता आदि के समक्ष दिव्य का वर्णन मिलता है।

स्मृतियो मे अनेक प्रकार के दिव्य पाये जाते हैं, जिनमे कि तुला-दिव्य, अग्नि-दिव्य, जल-दिव्य, विष-दिव्य, कोष-दिव्य, तडुल-दिव्य, तप्त-माष-दिव्य और धर्म-दिव्य प्रसिद्ध है[५]। परन्तु लोक-गीतो मे छः प्रकार के दिव्यो के प्रसग आते हैं —१ अग्नि, २ आदित्य, ३ गगाजल ४ तुलसी ५ तेल और ६ सर्प। इनमे से आदित्य, तुलसी और सर्प-दिव्य नितान्त नवीन और मौलिक है। इनका वर्णन धर्म-शास्त्रो मे नही मिलता। गीतो का तेल-दिव्य शास्त्रो का तप्तमाष-दिव्य कहा जा सकता है। तप्तमाष-दिव्य मे लोहे, ताँबे या मिट्टी के बर्तन मे घी को गर्म करके किया जाता था और उसमे 'शोध्य' का हाथ डलवाया जाता था। यदि

---

१. त्रिपाठीः ग्राम गीत पृष्ठ २४३।

२. विष्णु-धर्म-सूत्र ६:१।

३. स्वरभक्ति के नियम से।

४. नारद स्मृति ४।२४२

५. See Dr. kane History of Dharma Shastra Pt-III 396-75

शोध्य का हाथ न जला तो वह शुद्ध समझ लिया जाता था। लोक-गीतों मे अधिकाशत लोहे की कढाई का वर्णन मिलता है। स्त्री कहती है कि 'हे लोहार शीघ्र ही कढाई तैयार करो, मुझे किरिया देना है'। शास्त्रो मे वर्णित घी के स्थान पर गीतो मे तेल का उल्लेख मिलता है। एक गीत मे उल्लेख मिलता है कि जब बारह वर्ष बाद पति लौटा तो स्त्री की ननद ने अपने भाई से चुगली खाई और कहा कि भाभी से 'किरिया' लो। स्त्री पिछवाडे के रहने वाले बढई और तेली से कहती है कि "धर्म के भाई बढई और तेली! मेरे लिये धर्म की कढाई और धर्म का तेल तैयार कर दो। मेरे पिछवाडे के नाई! मेरे नैहर जाकर खबर कर दो कि उनकी पुत्री 'किरिया देगी'। आज एकादशी है कल द्वादशी और तेरस को किरिया ली जायगी। आगे घी की गगरी और पीछे-पीछे भाई चले जा रहे हैं। यदि बहन जीती तो नैहर लाऊँगा। हारी तो अग्नि मे उसे झोक दूँगा। आग जल गई और कढाई भभक रही है, बहन 'किरिया' कर रही है। हे सूर्य। यदि मैं सती हूँ तो मेरी 'पत' रखो। जब बहन ने 'किरिया' दी तो खौलता हुआ तेल शीतल जल की भाँति हो गया। एक बार हाथ डाला, दूसरी बार डाला और तीसरी बार पार उतर गई"। यद्यपि अन्य दिव्यो का भी वर्णन लोक-गीतो मे मिलता है, परन्तु सबसे प्रसिद्ध दिव्य है तेल का और तत्पश्चात् अग्नि का।

पारिवारिक-चित्रण—

सयुक्त-परिवार भारतीय-परिवारो की विशेषता होती है। अन्य देशो के लोक-गीतो मे इसी कारण पारिवारिक-जीवन के वे चित्र हमारे सम्मुख नही आ पाते जो हमारे लोकगीतो मे। हमारे परिवार मे अनेक सदस्य होते हैं। विभिन्न अवसरो पर एक दूसरे के साथ सदस्यो का क्या व्यवहार होना चाहिए, इसका भी वर्णन इन गीतो मे मिलता है। परिवार मे सभी सदस्य परस्पर प्रेमपूर्वक सुख और दुःख मे समान रूप से भाग लेते है। साथ-साथ रहने मे कभी-कभी उनमे कुछ कलह भी

उत्पन्न होना है, जिसका कि कारण अवस्था-भेद और स्वभाव-भेद होता है। लोक-गीतो मे पवित्र और पारस्परिक प्रेम का उल्लेख है, साथ ही पारस्परिक कलह और द्वेष का भी। नीचे हम एक-एक सम्बन्ध को लेकर पारिवारिक चित्रो के उपस्थित करने का प्रयत्न करेंगे।

माता और पुत्र—माता का स्नेह सबसे पवित्र और दृढ माना गया है। उसमें न स्वार्थ है और न बदले मे कुछ प्राप्त करने की भावना ही। माता पुत्र से स्नेह रखती है। उसका हृदय ही ऐसा बना है कि वह पुत्र के प्रति प्रेम के अभाव में सम्भवत जीवित भी नही रह सकती। माता जैसी अमूल्य-निधि मनुष्य को, ससार में कहना क्या, स्वर्ग में भी नही मिल सकती। गर्भाधान-सस्कार से ही पुत्र के लिए माता के कष्ट का आरम्भ हो जाता है। वह उसे नौ मास अपने उदर में रखती है, घातक प्रसव-पीडा सहती है और बाद में पालन-पोषण में भी अपने सुखो को त्याग कर पुत्र को अधिक से अधिक सुख देने की चिन्ता करती है। इतने सारे दु खो के देनेवाले के लिए भी वह न जाने इतना क्यो स्नेह करती है? माता के इसी स्वर्गीय-स्नेह का वर्णन हमारे लोक-गीतो में भरा पडा है। सोहर, जात और भजनो में माता और पुत्र के प्रेम के बडे ही सुन्दर चित्र मिलते हैं। पर पिता पुत्र के प्रसगो का गीतो में प्राय· अभाव ही है।

माता देवी-देवताओ आदि से प्रार्थना करते समय भी पुत्र-प्राप्ति को ही प्राथमिकता देती है। इसके अतिरिक्त वह दूध भी माँगती है, पर उसका उपभोग भी तो पुत्र ही करेगा। ललिता देवी के एक गीत में माता पुत्र की कामना करती है—

काए के काजे मइया वजारे नारियर काएके काजे मइया भरि-भरि दोना।
दूध के काजे मइआ वजारे नारियर पूतके काजे मइया भरि-भरि दोना।

अनेक लोक-गीतो में माता अपने पुत्र को विदेश जाने से रोकती है। वह चाहती है कि वह उसकी आँखो के सामने ही रहे। जब कभी

भी वह बाहर जाता है तो माता अपने आँसुओ को नही रोक पाती। जब राम वन को जाते हैं तो कौशल्या के दु ख की अभिव्यक्ति जो गीतो मे हुई है, उस स्वाभाविकता को न तो वाल्मीकि ही सुरक्षित कर सके है और न कालिदास ही।

माता के पुत्र के प्रति प्रेम के उत्कर्ष को दिखाने के लिए लोक-गाथा में सत्य ही कहा गया है कि पुरुष की मृत्यु के तेरह दिन बाद तक स्त्री रोती है, १३ मास तक बहिन और माता, जबतक जीती है, रोती ही रहती है। पुत्र भी माता को बहुत प्रेम करता है। उसके अभाव का तो अनुभव वह तब करता है जब माता का देहान्त हो जाता है। माता के पुत्र प्रति अपने प्रेम की अभिव्यक्ति विवाह के समय करता है जब वह कहता है कि हे माता, 'मैं अपने लिए जीवन साथी लाऊँगा और तुम्हारे लिए दासी।' हम कह सकते है कि लोक-गीतो में 'मातृ देवो भव' की भावना आज भी विद्यमान है।

पिता-पुत्र—पिता का भी पुत्र के प्रति अत्यधिक प्रेम होता है। अपने पुत्र के लिए सब प्रकार के बलिदान करने के लिए वह तैयार रहता है। जो भी वह कमाता है वह अपने पुत्र के लिए ही। पिता का पुत्र के प्रति जो प्रेम होता है उसका हमे विशेष रूप से उल्लेख दशरथ और राम के प्रसग मे मिलना है। दशरथ राम से बहुत प्रेम करते है, परन्तु वचन-बद्धता के कारण उन्हे राम को वनवास देना पडता है। परन्तु राम ने प्रेमाधिक्य के कारण है कि उस वियोग-दु ख से उनका प्राण भी निकल जाता है। पुत्र पर पिता का इससे अधिक प्रेम क्या हो सकता है ? इस प्रसग को लेकर लोक-गीतो में हमें अनेको उल्लेख मिलते है, जिनमे दशरथ का बडा मार्मिक चित्रण किया गया है। पुत्र भी पिता से बहुत प्रेम करता है और उसकी आज्ञा का पालन करता है। लोक-गीतो में आदर्श-पुत्र के प्रतीक राम है। राम के माध्यम द्वारा ही पुत्र की आज्ञा-कारिता की अभिव्यक्ति हुई है।

माता और पुत्री—इसमें कोई सन्देह नही कि माता का पुत्र के प्रति अगाध स्नेह होता है, पर सम्भवत पुत्री के प्रति तो उसका प्रेम और भी अधिक होता है। कनउजी लोक-गीतो का माता और पुत्री का परस्पर प्रेम अन्यत्र दुर्लभ है। पुत्री के उपत्न्न होने से स्त्री को त्रस्त किया जाता है, पुत्री के विवाह करने के लिए उसे अनेक बाधाओ का सामना करना पडता है, परन्तु इन सारी बातो के होते हुए भी माता की पुत्री के प्रति स्नेह-वल्लरी मुरझाती हुई नही दिखलाई पडती। पुत्री को विश्वास होता है कि जितना उसका ध्यान माता रखती है उतना कोई नही और यही कारण है कि उसको प्रत्येक विपत्ति और दु ख में माता की याद आती है। पुत्री को माता जन्म देती है और उसका पालन-पोषण करती है, यह तो कारण है ही परन्तु स्नेह की तीव्रता का एक कारण यह भी होता है कि पुत्री उसके पास दिन-रात रहती है जब कि पुत्र का उससे अधिक सम्पर्क नही रहता। यही अधिक सम्पर्क होना ही पुत्री के प्रति अगाधस्नेह का कारण हो जाता है। पुत्री के प्रति अधिक स्नेह होने का एक कारण यह भी है कि उसके विषय मे उसे बराबर यही चिन्ता रहती है कि ससुराल मे वह सुख पाएगी अथवा नही। विदा होने के अवसर के जो गीत मिलते हैं वे बडे ही मार्मिक हैं और उनमे माता तथा पुत्री के हृदय मे जो वेदना होती है उसका बडा ही मार्मिक चित्रण मिलता है। विदा होते समय माता अपने दामाद से रोकर प्रार्थना करती है कि 'हे पुत्र! मेरी पुत्री तुम्हारे ही आश्रय मे है। इसे किसी प्रकार भी कष्ट मत देना। मैं आँचल पसार कर तुमसे यही भिक्षा माँगती हूँ'। कालिदास ने शकुन्तला की विदा के समय जो चित्र 'अभिज्ञान शकुन्तलम्' मे उपस्थित किया है उससे कही अधिक कारुणिक दृश्य हमे इन विदा के अवसरो पर मिलता है।

पुत्री को ससुराल मे बहुत कष्ट होता है। उधर उसे अपने नैहर की याद आती है। अत वह अपनी माता के पास समाचार भेजती है

कि वह उसे नैहर बुलाले। माता बुलाना तो चाहती है परन्तु विवश है। विवशता का समाचार अपनी पुत्री के पास भेजती है—

वावुलि तुम्हारे वेटी देस के राजा ओ न बसत परदेस।
जेठो बिरन तुम्हरो घनिया को लोभी नित उठि जइऐ ससुरारि।
लहुरो बिरन बेटी निपट अनारी नदिनारे देखि डिराय।

वहन को लाने के लिए भाई उसकी ससुराल गया है। माता को आशा है कि पुत्री अवश्य आएगी। अत वह अट्टालिका पर चढकर राह देखती है कि आज मेरी पुत्री आ रही है। परन्तु छूछी डोली को लेकर कहार आ रहे है। पुत्र से माता कहती है कि अपनी बहन का समाचार कहो। जब भाई वहन के विविध कष्टो का वर्णन करता है तो माता कह उठती है कि 'हे पुत्र तुम ! रोती हुई वहन को छोड़कर कैसे चले आए ?'

पुत्री का भी माता के प्रति अत्यधिक प्रेम होता है। पुत्री को अनेक कष्ट हैं। वह अपने भाई से कष्टो का तो स्पष्ट निवेदन करती है परन्तु साथ ही साथ यह कहना भी नही भूलती कि हे भाई ! मेरे इन कष्टो को माताजी से न कहना, नही तो वह अपने प्राण दे देगी—

माया अँगारू जनि कहियो विरना पेट मारि मरि जाय।

पुत्री को माता की ओर से अपने प्रति प्रेम का इससे अधिक विश्वास और क्या हो सकता है ? इन गीतो मे माता और पुत्री का प्रगाढ प्रेम भरा पडा है। इस अविचल प्रेम मे ही भारतीय-सस्कृति का सच्चा रूप निहित है।

भाई और वहन—कनउजी लोक-गीतो मे भाई और वहन के प्रेम का चित्रण वडा ही पवित्र और स्वर्गीय है। भाई और वहन वाल्यावस्था मे साथ खेलते हैं। सावन के एक गीत मे एक प्रसग आता है कि छोटी-छोटी बूँदो से मेघ वरसे जिससे कि आगन मे कीच हो गया। वहन कहती है कि हे भाई ! आगन मे न निकलो अन्यथा तुम्हारे

पैर कीच से भर जाएगे। मैं तुम्हारे पैर के लिए चन्दन की खडाऊ लूगी और हाथ के लिए छडी मगाऊगी। सर पर लगाने के लिए मखमल की टोपी लूगी और हाथ मुह पोछने के लिए रूमाल—

नन्ही नन्ही बुदियन मेहा वरसि गए मेहा वरसि गए
अरे आगन मे हुइ गओ कीच।

जव जिन निकरौ अगना मैं विरना पाय भरैं दोनों कीच।
पाय कौ लियैं भइया चनन खडउआ हाँथ को छडिया मगाय।
दीवे कौ लियैं भइया मखमल टोपी पुछिवे कौ लीहैं रुमाल।

विदा के गीतो मे माता के समान भाई भी करुण-क्रन्दन करता है। उसका हृदय इतना भर जाता है कि वह कुछ वोल ही नही पाता। अत अपनी वहन की डोली रोक लेता है। वहन भाई को समझाकर डोली छुडवाती है। ऐसा भी उल्लेख मिलता है कि विदा के समय रोते-रोते भाई के सारे वस्त्र भीग जाते हैं।

भारतीय लोकाचार के अनुसार माता अपनी पुत्री की ससुराल नही जा सकती। अत पुत्र ही माता और पुत्री के सन्देश-वाहन मे माध्यम का काम करता है। भाई अपनी वहन के यहाँ जाता है और उसे वुला लाता है। वहन समझती है कि भाई ही उसके दु खो को दूर कर सकता है, वही उसका वल और सम्वल है। वहन को जव भी जिस वस्तु की आवश्यकता होती है अथवा विपत्ति पडती है तो भाई ही ऐसे अवसरो पर दाहिना हाथ होता है। दु खिया के जीवन मे भाई ही ऐसा ध्रुवतारा है जिसकी ओर वह टकटकी लगाकर देखा करती है। वहन विपत्तियो मे भाई का आह्वान करती है उसी प्रकार भाई पर भी जव किसी प्रकार का सकट पडता है तो वह अपनी वहन का आश्रय ग्रहण करता है। लोक-गीतो मे ऐसे वर्णन मिलते हैं कि भाई पर विपत्ति पडी तो वह वहन के पास गया और उसकी वहन ने यथोचित सत्कार किया। एक गीत मे राजा गोपीचन्द जोगी हो जाते है और चल देते है। माता कहती है कि

और सब जगह जाना, परन्तु बहन के यहाँ नही। पर गोपीचन्द बहन के यहाँ जाते है और बहन उनका बडा ही सत्कार करती है।

भाई का आना बहन के लिए एक उत्सव से कम नही होता। उसका हृदय प्रफुल्लित हो जाता है। भाई आया है। सास से बहू पूंछती है कि माता भाई के लिये क्या भोजन बनाऊँ। सास कहती है कि कोदौं का भात उसके लिए बना लो। इस उत्तर को सुनकर वह उसकी उपेक्षा करती है और कहती है कि मैं अपने भाई के लिये 'मोतीछ्र भात' और गेहूँ को रोटी बनाऊँगी। भाई के प्रेम के आगे वह अपनी सास की उपेक्षा करती है। वास्तव मे यह बहू की उच्छृखलता न होकर भाई के लिए प्रेम की तीव्रता ही है।

अनेक ऐसे गीत भी है जब भाई अपनी बहन के कष्ट को देखकर क्रुद्ध हो जाता है और अपने बहनोई को मार डालता है[1]। यद्यपि इस प्रकार वह अपनी बहन का अहित ही करता है, परन्तु फिर भी हमे इस बात को नही भूलना चाहिए कि इस कार्य मे भाई का उद्देश्य बहन को कष्ट देने का नही है, बहन के दु ख के कारण उसे अपार वेदना है और उसी वेदना के प्रतिशोध के लिए वह अपने बहनोई की हत्या कर देता है। सावन मे भाई आया है। बहन के हाथो मे मेहदी लगी हुई है, पैरो मे विछुआ पहने है। उसके सामने यह समस्या है कि भाई को कैसे मिले। वह अपने शृगार की परवाह नही करती और भाई से भेंट करती है —

हाथन मेहदी पायन बिछिया कइसे मिलै राजा वीर जी,
धाय डारी मेहदी उतारि डारी बिछिया लिपटि मिलौं राजा वीर जी।

इस प्रकार हम देखते है कि बहन के हृदय मे भाई के प्रति अगाध प्रेम होता है और भाई भी बहन मे किसी प्रकार भी पीछे नही रहता।

---

१ इस गीत का उल्लेख विधवा के प्रसंग में किया जा चुका है।

अत हम कह सकते हैं कि माता और पुत्री के विशुद्ध प्रेम के अनन्तर भाई और बहन के प्रेम का ही स्थान है।

सास और बहू —लोक-गीतो मे हमे सास एक नितान्त ही कठोर शासिका के रूप मे मिलती है। बहू को वह निरन्तर कष्ट देती है। बहू इतनी आज्ञाकारिणी और सहनशील नही कि वह हंसते-हँसते इन कष्टो को सहन करे। परन्तु सहन करने के अतिरिक्त और चारा ही क्या है? धर्म-शास्त्रो और काव्य-ग्रन्थो मे वधू को सास की आज्ञाकारिणी कहा गया है, परन्तु लोकगीतो मे कुछ ऐसी स्थिति दृष्टिगोचर नही होती। सास का बहू के प्रति जो शाश्वत सा विरोध दिखाई पड़ता है उसका मनोवैज्ञानिक कारण यह है माता अपने पुत्र के लिए अत्यन्त कष्ट सहती है, जब वह युवा होता है तो माता के प्रेम को बहू छीन लेती है और फलस्वरूप पुत्र से उसे उपेक्षा मिलती है। बहू कभी-कभी अपनी सास के विरुद्ध पति के कान भरती है इसी कारण से सास और बहू मे झगडा हुआ करता है।

गीतो मे सास केवल व्यग-बाण ही नही मारती, परन्तु डण्डे की मार भी लगाती है, खाने को नही देती है —

सास मारै डडा ननद बोलै बोल जी।
रवी मछरियां सीके धरी पै रोटी मे नून देय।

सास उसके चरित्र पर भी सन्देह करती है और जब पुत्र विदेश से वापस आता है तो 'किरिया' लेन को कहती है। एक गीत मे यह भी उल्लेख आता है कि सास ने अपने छोटे पुत्र से बहू को मरवा डाला।

ऊपर तो सास और बहू के शाश्वत-विरोध का वर्णन मिलता है। परन्तु कुछ ऐसे चित्र भी है जिनमे बहू सास का आदर करती है। सोहर गीतो मे उल्लेख मिलता है कि उसने सास का आदर किया है और इसी के कारण उसे सुन्दर पुत्र मिला। विवाह के गीतो मे भी सास

के हृदय मे वडी लालसा और साध होती है कि वह अपनी बहू को देखेगी।

ननद भाभी--सास और बहू मे जिस प्रकार विरोध पाया जाता है उससे किसी प्रकार ननद और भाभी मे भी विरोध कम नही है। इसका भी कारण है कि भाई और वहन एक ही माता-पिता की सन्तान होते है। भाभी के आने पर भाई का वहन के प्रति प्रेम कुछ कम हो जाता है और बहन सोचती है कि इसका कारण भाभी ही है। अत उनमे वैमनस्य रहता है। उधर भाभी ननद को दो चार दिन का मेहमान समझ कर उसकी उपेक्षा करती है। भाभी को कष्ट देने मे ननद अपनी माता को भी सहायता देती है। एक गीतमे सास और ननद दोनो मिलकर वहू को चक्की पीसने के लिए भेजती है और वही उसे मरवा डालती है[1]। दूसरे गीत मे ननद-भावज पानी भरने जाती है। ननन सीता से अनुरोध करती है कि वह रावण का चित्र वनाए। सीता रावण का चित्र वनाती है। उधर राम से ननद कहती है कि हे भाई सीता तुम्हारे शत्रु का चित्र वनाती है। फल यह होता है कि राम सीता को वनवास देते है। ननद से भाभी भी अच्छी प्रकार वदला लेती है। उसे ससुराल से बुलाती नही और भाँति-भाँति से उसका अपमान करती है। एक गीत मे तो उल्लेख मिलता है कि सब लोग पुत्री की विदा पर रो रहे है पर भाभी को किसी प्रकार की चिन्ता नही है, वह खडी खडी मुसकुरा रही है।

पुत्र के उत्पन्न होने पर जब ननद असहयोग करती है तो भाभी अपने पति से कहती है कि चिन्ता की कोई वात नही है। ननद का नेग मेरी छोटी वहन से करवा लो। उधर दूसरे गीत मे वहन भाई से कहती है कि हे भाई मेरे दुखो का भाभी से न कहना नही तो वह उन्हे कुछ

---

१ देखिए परिशिष्ट

२ लोकरीति की यह कल्पना मौलिक है।

और बढ़ाकर अपने नैहर में कहेगी और इस प्रकार वहाँ मेरी हँसी होगी। ननद और भाभी के सहयोग के कुछ गीत मिलते हैं परन्तु वे बहुत थोड़े ही हैं। एक उदाहरण इस प्रकार है —

आवौ ननदी गुसाइनि पाय तुहरे लागैं हो।
बइठौ माझ मडौआ कलस मोरो गोठो हो॥

देवर और भाभी—शास्त्रों और महाकाव्यों में देवर और भाभी के सम्बन्ध का बहुत ऊँचा आदर्श रखा गया है। भाभी और देवर का सम्बन्ध बहुत ही पवित्र माना गया है। देवर के लिये भाभी माता के तुल्य मानी गई है। राम वनवास के समय लक्ष्मण को वन जाने की अनुमति देते हुए सुमित्रा कहती हैं —

राम दशरथ विद्धि, मा विद्धि जनकात्मजाम्।
अयोध्या अटवी विद्धि गच्छ तात यथा सुखम्[1]॥

लक्ष्मण अपनी माता के उपदेश का अक्षरश पालन करते हैं। माता के पैरों के प्रति पुत्र को अनुरक्ति होती है और उन्हें ही वह अच्छी तरह पहचानता भी है। यही कारण है कि जब सीता के आभूषण मिलते हैं तो राम लक्ष्मण से उन्हें पहँचानने को कहते हैं। लक्ष्मण उत्तर देते हैं कि मैं केयूर और कुण्डल को नहीं पहँचानता। मैं तो उनके नूपुरों को ही पहँचानता हूँ क्योंकि मैं नित्य उनके पैरों का अभिनन्दन करता था —

केयूर नेव जानामि नैव जानामि कुण्डले।
नूपुरानेव जानामि नित्य पादाभिवन्दनात्॥

इन उच्च आदर्श को दृष्टि में रखकर जब हम लोक-गीतों को देखते हैं तो हमें बड़ी ही निराशा होती है। किसी भी लोक-गीत में इस पवित्र सबंध का चित्रण नहीं है। इनमें अधिकाश देवर-भाभी के अनुचित सबंधों का ही वर्णन मिलता है। सभवत इस अनुचित सम्बन्ध का कारण नियोग प्रथा रही हो जिसमें पति की अनुपस्थिति में देवर से सन्तानोत्पत्ति करा

1 वाल्मीकि रामायण—बाल काण्ड।

ली जाती थी। नियोग-प्रथा उच्च वर्गों मे तो अब समाप्त हो गई परन्तु पिछडी जातियो मे यह विकृत-रूप मे अब भी पाई जाती है। इन जातियो मे पति के मर जाने पर देवर के साथ विधवा का विवाह हो जाता है। 'आदर्श-सतीत्त्व' के प्रसग मे इस वात का उल्लेख किया जा चुका है कि देवर ने अपने बडे भाई को मार डाला और भाभी से अनुचित प्रस्ताव किया।

देवर भाभी के अनुचित सम्वन्व इस सीमा तक पहुँच जाते है कि वे दोनो रात्रि को एक शय्या पर सोते हैं। एक गीत मे भाभी देवर की सेज पर अपनी अँगूठी भूल आई है, वह देवर से माग रही है क्योकि उसे डर है किपति को यदि यह वात मालूम हो गई तो फिर वहुत अनर्थ हो जाएगा —

मुंदरिया तुम्हरी सिजडिया पै देउर भूली राति।
तुम्हरी सेज पै मुन्दरी भूली राति देवौ आधी राति॥
हमको यादि सकारे आई जव धोये हुते हात।
जो मालुम परि जाय वलम कह मारि सुजामैं देहिं।

राम-कथा से सम्वन्व रखने वाले कुछ लोक-गीत ऐसे अवश्य हैं जिनमे लक्ष्मण सीता को माता के समान मानते है —

अरे भइआ भइआ तुम मोरे भइआ हो रे।
हम जइवो खवरिया लेन हो सीता माता की हो।

जेठ और लहुरी—पति के वडे भाई को ससुर के समान माना जाता है। जेठ के सामने छोटी भाभी वोल भी नही सकती। इन नियमो का समाज मे कडाई से पालन किया जाता है परन्तु फिर भी लोक-गीतो मे इनके अनुचित सम्वन्वो का कुछ न कुछ वर्णन मिल ही जाता है। 'आदर्श सतीत्त्व' प्रसग मे वर्णन किया जा चुका है कि एक जेठ ने अपनी लहुरी के साथ अनुचित प्रस्ताव किया और वह किस प्रकार असफल

रहा। देवर-भाभी तथा जेठ और लहुरी के ऐसे सम्बन्ध कनउजी-समाज मे पिछडी जातियो मे ही मिलते हैं, उच्च वर्णों मे नही।

ससुर और बहू—ससुर का बहू के साथ पुत्री का सम्बन्ध होना चाहिए। परन्तु लोक-गीतो मे निरन्तर ऐसा ही वर्णन मिलता है कि ससुर बहू को पीटता है, उससे अत्यधिक काम करवाता है, उसका भाई विदा कराने के लिए आते समय पर्याप्त द्रव्य न लाए तो वह बहू की विदा भी नही करता है। बहू के प्रति ससुर का कठोर व्यवहार दहेज प्रथा के कारण भी है। कही-कही लोकगीतो मे ससुर की बहू के प्रति कामुकता का वर्णन भी मिलता है परन्तु ऐसे प्रसग बहुत ही थोडे हैं। अन्य लोगो के व्यवहार को देखते हुए ससुर का बहू के प्रति व्यवहार अपेक्षाकृत अच्छा ही कहा जा सकता है।

पति-पत्नी—कनउजी लोक-जीवन मे पति-पत्नी का सम्बन्ध अटूट माना जाता है। यहा के लोक-गीतो मे पति और पत्नी के पारस्परिक सम्बन्ध का बडा ही विशद चित्रण हुआ है। पति-पत्नी सुख से घर मे जीवन-यापन करते हैं और आधुनिक जीवन की विषमता का वहाँ नाम भी नही है। पति के वियोग को न सह सकने वाली स्त्री विदेश जाने के लिए उद्यत पति को रोकने के लिए इन्द्र से प्रार्थना करती है कि हे इन्द्र देव! वरसो, एक पहर रहे रात्रि से ही वरसो जिससे पति के प्रस्थान करने का समय टल जाय और परिणाम-स्वरूप वह विदेश न जावें—

वरसौ इदर तुम दिउता पहर राति वरसौ रे।
टरैं जान केरी विरिया पिया घर विलमैं रे।

किसी स्त्री का कृषक-पति खेती के कार्य मे इतना व्यस्त रहता है कि खेत छोडकर घर मे आने का उसे कोई अवसर ही नही मिलता। स्त्री बैल से प्रार्थना करती है कि तुम जुआँ तोडकर घर चले आओ। इससे

पति के सर मे चोट लगेगी और वह घर मे दवा लगवाने के लिए अवश्य आवेगा तभी उससे भेंट हो जावेगी —

> पाय परौं तुम्हरे सुरही के बछरा
> जुआ टोरि घर आवौ न हो।
> जुआ के टूटे मूड जइए फूटि तौ
> दवा लगवइवे का आमैं पिया घर हो।

हिन्दी के एक कवि ने भी इसी भाव की एक बडी ही सुन्दर कविता कही है—

> आगि लागि घर जरिगा, बड सुख कीन।
> पिय के बाह घइलवा भरि-भरि दीन ॥

इन गीतो मे अपने पति के लिए पत्नी सर्वस्व त्याग कर भी दुःखो को झेलने के लिए तैयार दिखाई पडती है। उधर पति के हृदय मे भी स्त्री के लिए कुछ कम प्रेम नही है। एक सोहर मे राम को सीता के विना अपना जीवन व्यर्थ ज्ञात होता है —

> सीता तुम्हारे विन जग अंधियार
> तौ जीवन अकारथ हो।

इसी प्रकार अन्य और भी अनेक गीत हैं जिनमे दाम्पत्य-जीवन का बडा ही मनोहर वर्णन मिलता है।

इन प्रसगो के अतिरिक्त 'सौतो' के परस्पर कटु सम्बन्ध के उल्लेख मिलते है उनका वर्णन वहु-विवाह प्रसग मे किया जावेगा ।

बहु-विवाह—

प्राचीन-काल से ही भारत मे वहु-विवाह की प्रथा चली आ रही है। यद्यपि अब यह कुछ कम हो गई है परन्तु ऐसा नही कहा जा सकता कि इसका नितान्त अभाव हो गया है। आज भी स्त्री के वाझ होने पर पुत्र के लिए दूसरी स्त्री के साथ विवाह कर लिया जाता है । इस

प्रकार के विवाहो से "सौत" की समस्या खडी होती है । दोनो पत्नियो मे झगडा होता है और जिसके कारण गृहकलह हो जाना स्वाभाविक ही है । लोक-गीतो से सौत का पर्याप्त उल्लेख मिलता है । पुरुप कामुकता-वश सुन्दर स्त्री के होते हुए भी दूसरी स्त्री से विवाह कर लेता है, ऐसे भी उल्लेख लोक-गीतो मे पाये जाते हैं। एक स्त्री के मर जाने के पश्चात् दूसरी स्त्री से विवाह करना तो साधारण सी बात है । परन्तु यदि पहली स्त्री के सन्तान हुई तो उसके लिए विमाता रूपी आपत्ति से बडी और कोई भी आपत्ति नही है क्योकि विमाता उसे भाँति-भाँति के कष्ट देती है ।

विषम-विवाह—

कनउजी-समाज मे दहेज-प्रथा के कारण विषम-विवाहो का प्रचलन हो गया है । पुत्री के विवाह मे पिता पर्याप्त दहेज नहीं दे पाता और इसका परिणाम यही होता है कि उसे वृद्ध या बाल-जामाता मिलता है । वास्तव मे दहेज-प्रथा कनउजी-समाज की प्रगति में व्यवधान बन रही है । यदि पिता के पास पर्याप्त धन न हो तो सुयोग्य कन्याओ को अच्छे वर नही मिलते । दूसरी ओर धनवान पिता अयोग्य पुत्री का भी सुयोग्य वर के साथ विवाह कर सकता है । दहेज के अतिरिक्त वृद्ध-विवाह का एक कारण यह भी है कि पिता पुत्री के विवाह मे जामाता से द्रव्य प्राप्त कर लेता है और अपनी पुत्री को शीघ्र ही विधवा बना देता है ।

लोक गीतो मे वृद्ध के साथ विवाहिता स्त्री की करुण-दशा का हृदयद्रावक चित्रण हुआ है । वृद्ध के बाल सफेद हो गए है, सारे दात टूट गए है, खासी आती है, उसकी आकृति को देख कर स्त्री का हृदय काप जाता है और वह अनुभव करती है कि उसे शीघ्र विधवा बन जाना पडेगा । पुत्री जो अपने पिता से बहुत प्रेम करती है वह भी खीझ कर कहने लगती है कि —

माया के लोभी बापने बुढवा कौ ब्याह दीन्हो रे।

इस एक ही पक्ति मे पिता के प्रति कितनी घृणा सिमट आई है ? वुढ्ढे के प्रति भी वह कम क्रुद्ध नही होती और उसे ढकेल देती है जिससे उसके प्राण निकल जाते हैं —

हम दओ ढकेल सडकिया पै। मरिगओ बुढौना।

वाल-विवाह का भी लोक-गीतो मे वर्णन आता है। स्त्री पूर्ण-युवती है और उसका पति बालक। स्त्री उससे प्रणय-निवेदन करना चाहती है, पर वह खेल खेलने के लिए कहता हैं। रात्रि मे जब वह स्त्री के साथ लेटता है तो आधी रात मे माता की याद आती है और वह रोकर माता के पास चला जाता है —

छोटो सो बालमा मोरे आँगना मे गुल्ली खेलै।
जब हम कहै बलमा सिजिया पै पौढो।
बलमा भाजै रोय के सासू के सग पौढे॥

कनउजी-समाज मे पर्दे की प्रथा पूर्ण रूप से प्रचलित है। उच्च-वर्गों की स्त्रियाँ तो घर से बाहर निकलती ही नही और घर के भी ससुर-जेठ और बडो के सामने घूंघट मारती है। पिछडी जातियो मे भी पर्दा-प्रथा का प्रचलन है। घर पर वे ससुर-जेठ के सम्मुख घूंघट मारती है। खेत पर भी जब काम करने जाती है तो साथ-साथ निराई-रोपाई करने पर भी घूंघट मारे रहती है। घूंघट मारना घरवालो के लिए ही आवश्यक नही है, गाँव के अन्य बडो के सम्मुख भी वह 'लज्जा' करती हैं। विवाहगीतो मे उल्लेख मिलता है कि जब कन्या की विदा होती है तो पालकी या डोली पर उघार पडा होता है। एक गीत मे पर्दे का स्पष्ट उल्लेख मिलता है —

परदा खोलि जब वेटी जू देखो छूटो नइहर को देस रे।

स्त्री के लिए पर्दा-प्रथा का पालन करना अच्छे आचरण का प्रतीक माना जाता है। प्राचीन काल मे यह पर्दा नही था। इस प्रथा का

प्रचलन यवन-शासन के परिणाम-स्वरूप हुआ जब कि स्त्रियो की स्थिति सुरक्षित नही थी ।

पत्र तथा संदेश--वाहन—

प्राचीन-भारत मे आज की भाँति सदेश भेजने और मगाने के साधन नही थे। सस्कारो मे रुचना और विवाह का निमत्रण नाई देने जाता था और इस प्रकार गीतो मे पत्र का उल्लेख कम ही मिलता, है इससे अनुमान किया जा सकता है कि नाई मौखिक रूप से सदेश कह देता था। सस्कारो मे विवाह के समय लग्न का पत्र अवश्य जाता था जिसे पीली चिट्ठी कहते थे। यह प्रथा आज भी प्रचलित है। इस चिट्ठी मे विवाह के समय होनेवाले विविध मुहूर्तो का उल्लेख रहता है।

पत्रो का लोकगीतो मे अधिक उल्लेख पत्नी का पति के पास भेजने का आता है। इसकी बडी ही प्राचीन परम्परा है। महाकवि कालिदास के अभिज्ञान शाकुन्तल मे शकुन्तला 'नलिनी-पत्र' पर अपने प्रिय दुष्यन्त के लिए नख से पत्र लिखती है। इस परम्परा का निर्वाह निरन्तर रूप से लोक-गीतो मे मिलता है। विरहिणी स्त्रियाँ अपने पतियो को अपने दु ख को लिखकर भेजती हैं और उन्हे उपालम्भ देते हुए लौट आने की प्रार्थना करती है। अब प्रश्न उठता है कि उन पत्रो को ले कौन जाता था ? इन पत्रो के ले जाने के लिए भी गीतो मे उल्लेख मिलता है कि वे पत्रवाहक कौआ, कोयल आदि ही होते थे । लोक-गीतो मे यह कोई विलक्षण कल्पना नही है । श्रीहर्ष ने भी हस को नल और दमयन्ती के प्रेम का माध्यम बनाया है। एक गीत मे कोयल से विरहिणी कहती है कि —

कारी कोइलिया तुम बइठी हो अम्वा की डार पै रे।
लै मोरी पाती सुनाव जाय निरमोहिया को रे।

एक विरहिणी की समझ मे यह नही आता कि वह पत्र को किन साधनो से लिखे । वह कहती है —

काए की करौं मैं स्याही काए कौ कागद हो।

काए की करौ मैं कलम लिखौं जी से पाती हो।

अन्यत्र एक गीत मे यह भी उल्लेख आता है कि स्त्री पडोसी कायस्थ से पत्र लिखने का अनुरोध करती है —

मोरे पडोसिया कयथवा तुमहि मोरे भैया हौ रे।

मोरी चिठिया लिखौ समझाय के निरमोहिया कौ रे।

खान-पान—

लोक-गीतो मे विविध प्रकार की खाने-पीने की वस्तुओ का उल्लेख पाया जाता है। इन वस्तुओ से हम सरलता-पूर्वक अनुमान लगा सकते है कि लोगो की किन वस्तुओ के खाने की ओर अधिक अभिरुचि है। कनउजी लोक-गीतो के अध्ययन मे हमे इस बात का पता चलता है कि हमारे जनपद के लोगो की रुचि सात्विक-भोजन मे ही रही है और यही कारण है कि इस प्रदेश मे अनेकानेक विचारको का प्रादुर्भाव हुआ[1]। नीचे कुछ भोज्य पदार्थों का वर्णन किया जाता है जिनका कि लोक-गीतो मे वार-वार नाम आया है।

दाल, भात, रोटी और घी —लोक-गीतो के अध्ययन से पता चलता है कि कनउजी-समाज मे इन्ही चार वस्तुओ को आदर्श-भोजन समझा जाता है। जव भाई अपनी वहन के यहाँ जाता है तो वह उसे दाल-भात और रोटी और इन सवके साथ घी खिलाना चाहती है। सास भी उसे अनुमति दे देती है —

राँधौ न वहुअरि मोरी मोतीछर भातू और गेहुँन की रोटी जी।

राँधौ न वहुअरि मोरी दारि उद्दन की डारौ उइपै घी की धार जी।

यह तो मेहमानो के लिए भोजन हुआ। सामान्यतया जौ, चना, ज्वार और मटर की रोटी का उल्लेख भी मिलता है। कौदों और सवाँ

1. विचारकों का उल्लेख "इतिहास" शीर्षक मे किया जा चुका है।

का उल्लेख भी हुआ है जो कि गरीबो का भोजन है। दालो मे अरहर, मूंग और मोठी का भी उल्लेख मिलता है। उपर्युक्त भोजन तो दैनिक-भोजन के अन्तर्गत आते है, परन्तु त्योहारो के अवसर पर खीर, पूडी, पिटउआ आदि बनते है जिन्हे लोग बडे चाव के साथ खाते है।

कनउजी-प्रदेश मे सत्तू का भी अत्यधिक प्रचलन है। इसका उपयोग प्रात कालीन कलेवा के रूप मे किया जाता है। इतना ही नही, यात्रा, मेला आदि जाने के लिए यह आवश्यक भोज्य-पदार्थ है। अन्य वस्तुएँ जैसे पूडी आदि शीघ्र ही खराब हो जाती है परन्तु सत्तू महीनो तक चल सकता है। गरीबो के लिए सत्तू तो बहुत बडा अवलम्ब होता है। सत्तू के अतिरिक्त लड्डू का भी वर्णन मिलता है। जिन लड्डुओ का उल्लेख गीत मे आता है उसका आशय उन लड्डुओ से है जो भुने हुए आटे और गुड से तैयार किये जाते है। फलो मे नीबू, नारगी,[1] अमरूद, अनार का बार-बार नाम आता है। मिठाइयो मे पेडा, बर्फी, जलेबी आदि मुख्य है।

पेय-पदार्थो में दूध का उल्लेख बार-बार आता है। स्त्रियां देवी से प्रार्थना करती हुई दूध की याचना अवश्य ही करती है। दूध के महत्त्व का पता हमे तब चलता है जब हम देखते है कि आशीर्वाद मे भी "दूधन पूतन फलो" का उल्लेख मिलता है। मदिरा का प्रसग भी हमे मिलता है। गीतो में स्त्रियां अपने पतियो को मदिरापान करने से रोकती है। लोक-गीतो मे "छप्पन प्रकार के भोजन" का उल्लेख मिलता है, परन्तु स्पष्टरूप से उनके नाम नही बतलाये गये है। विवाह के समय जब ज्योनार होता है और ज्योनार-गीत गाये जाते है तो उनमें अनेक प्रकार के भोज्य-पदार्थो का वर्णन हम पाते है। एक ज्योनार गीत में कचौडी, पूडी, खस्ता, मालपुआ, रसगुल्ला,[2] पेडा, इमिरती,

१. परिशिष्ट में यज्ञोपवीत गीत देखिए।
२ नौरंगिया का उल्लेख सोहर गीतो में मिलता है।

खुरचन, बालूसाही, कलाकद, गुझिया, लड्डू, बर्फी, रबडी, जलेबी, नानखताई, मोतीचूर,बेसनी लड्डू, मठरी, पापड, कचरी, मूली, जिमीकद, टिंडा, परवल, मेथी, बथुआ, कुलफा, कमरख, चटनी, दालमोट, ममोसे, आलू की टिकिया, पिस्ता, दही-वडा, अदरख की पकौडी, सोठ, रायता, गाजर का हलवा, पेठा, गजक, नीबू, आम, मिर्च और टेंटी के अचार और अनेक प्रकार के मुरब्बो का उल्लेख मिलता है। अन्त मे गीतकार कहता है कि छप्पन प्रकार के भोजन परोसे गए इनका कौन कवि वर्णन कर सकता है[1]। वास्तव मे यह गीत आधुनिक-काल का है।

यह नही कहा जा सकता कि कन्नौजी लोग पूर्णरूपेण शाकाहारी ही है। मास का भी वे भक्षण करते हैं जिनका कि उल्लेख गीतो मे हुआ है। एक बहन भाई से कहती है कि सास छीके पर 'रँधी हुई मछलियो' के टँगे होने पर भी उसे रोटी पर नमक तक नही देती। अन्य गीतो मे मल्लाह किसी स्त्री को प्रलोभन देता है कि तुमको मैं मछली का सुस्वादु मास खिलाऊँगा। सोहर-गीतो मे वर्णन मिलता है कि हरिणी कौशल्या से कहती है कि मास तो तुम्हारी रसोई मे सीझ रहा है, मुझे मेरे हरिण की खाल वापस कर दो[2]। मोर के मास खाने का उल्लेख भी गीतो मे मिलता है। मोर खाने की परम्परा तो अशोक के समय से ही चली आ रही है[3]।

भोजन के इस विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि कन्नौजी लोग अधिकाश शाकाहारी ही है। मास-भक्षण के प्रसग बहुत ही कम हैं।

वस्त्र—

लोक-गीतो मे अनेक वस्त्रो का उल्लेख मिलता है। मागलिक-कार्यो

---

१ देखिये—परिशिष्ट भाग। 'ज्यौनार'

२ देखिये—परिशिष्ट। 'सोहर'

३ देखिये—'प्रियदर्शी-प्रशस्तय'।

मे पीले रग के वस्त्र पहने जाते है। सन्तानोत्पत्ति के वाद छठी के दिन स्त्री पीले वस्त्र पहनती है। इसी प्रकार विवाह के समय पर वर पीला जामा पहना जाता है। भाई भी अपने वहनोई और वहन के लिए 'पीरी' अर्थात् पीले कपडे लाता है। विवाह के समय वधू के लिए एक चूनरी नाम का वस्त्र दिया जाता है जो लाल, हरे और पीले रग से रगा जाता है। कन्नौजी-समाज मे रगीन वस्त्र सधवा स्त्रियाँ ही पहन सकती है। विधवाएँ सदैव सफेद वस्त्र ही पहनती है। शोक के अवसरो पर सभी लोग सफेद वस्त्र धारण करते है।

पुरुषो का मुख्य वस्त्र धोती है। अँगरखा, वडी या कुरता शरीर के ऊपरी भाग पर धारण किया जाता है। गीतो मे पगडी का भी उल्लेख हुआ है। पुरुष अँगोछे का भी प्रयोग करता है। पटुका का उल्लेख सावन तथा विदा-गीतो मे वरावर मिलता है। स्त्री के वस्त्रो मे लहँगा साडी, ओढनी, धोती, चोली अगिया झुलइया आदि का उल्लेख मिलता है। लोक-गीतो मे रेशमी वस्त्रो का भी उल्लेख मिलता है। ओढने के लिए पिछौरा, रजाई और चादर का नाम आता है और विछान के लिए दरी, गद्दा, कालीन और जाजम का।

आभूषण—

कन्नौजी लोग आभूपण-प्रिय होते है। पुरुषो मे अगूठी, खडुआ, (निम्न वर्ग के लोग पहनते हैं) कानो की वाली, गले का कठा और जजीर आदि लोक-प्रिय है। स्त्रियाँ तो स्वभाव से ही आभूपण-प्रिय होती हैं। उनकी आभूपण प्रियता से पति हैरान रहता है। जव देखो तव पत्नी किसी न किसी आभूपण के लिए पति से आग्रह करती है। स्त्रियो के आभूपणो मे नथुनी, वुलाक, कान की वाली, पुंगडिया, हार, सुतिया, टडिया, कगन, कडा, छडा, अँगूठी, करधनी, पायजेव' विछुआ, अनौटा आदि का उल्लेख मिलता है। आधुनिक लोकगीतो मे आधुनिक आभूपणो का उल्लेख भी मिलता है।

देखते हैं कि धर्म बडा ही व्यापक शब्द है। धर्म के इस व्यापक रूप के समझने की शक्ति सामान्य जनता मे नही है। वह तो देवी-देवताओ की पूजा करना, उनका स्मरण करना और व्रतो का रखना ही धर्म समझती है। धर्म के इसी रूप को देखकर कहा जा सकता है कि कन्नौजी लोगो का जीवन धर्ममय है। अपने प्रत्येक कार्य मे चाहे जुताई हो या बुआई, रोपाई हो वा कटाई सभी मे अपने इष्ट को वे नही भूलते। उन सबका ये लोग भजनो द्वारा गान किया करते है।

लोकगीतो मे पचदेवोपासना का भी उल्लेख मिलता है। किसी भी मागलिक कार्य मे पहले पचदेवोपासना होती है। कन्नौजी लोग बहुत ही उदारमना होते हैं। वे सभी देवताओ की वन्दना करते है। देवी-ताओ की सख्या इतनी है कि वे बेचारे उनका नाम भी नही जानते। एक गीतकार कहता है कि —

सब को हम गामैं सबै मनामैं सबके न जानैं हम नायँ।

कन्नौजी क्षेत्र मे वैष्णव, शैव, शाक्त, रामानन्दी, कबीरपथी आदि सभी मतो के मानने वाले मिलते हैं। परन्तु इस क्षेत्र मे सबसे अधिक राम के उपासक हैं। राम के उपासक का आशय यहाँ यह है कि अन्य देवताओ की उपासना करते हुए भी वे लोग रामचन्द्र को प्राथ-मिकता देते हैं। राम को वह स्रष्टा मानते हैं। एक गीत मे उल्लेख आता है कि —

पहिले हम सुमिरैं रामचन्द्र को जिन्ने पिंडी तौ दई है बनाय।

राम की कथा को आधार बनाकर सैकडो भजन मिलते हैं जिसमे पृथ्वी का उद्धार करनेवाले, पापो का नाश करने वाले, दीनो के नाथ और दुष्टों के दलन करने वाले रूप का ध्यान किया गया है। राम नाम के स्मरण को भी महत्त्व दिया गया है। कृष्ण को भी भगवान् के रूप मे माना गया है। लोक-गीतो मे कृष्ण का गोप-गोपियो के साथ क्रीडा करनेवाला, गोचारण करनेवाला तथा नन्दयशोदा और ग्वालो को

आनन्द देनेवाला रूप तो चित्रित है ही साथ ही साथ असुरों का सहारक महाभारत में अर्जुन के सहायक तथा उपदेशक का रूप भी मिलता है। अनेकों लोक-गीत ऐसे हैं जिनमे होली के प्रसग मे कृष्ण की विविध लीलाओं तथा क्रीडाओ का उल्लेख मिलता है। भजनों मे कृष्ण के महाभारत में दिए गए युद्ध-उपदेश का भी उल्लेख मिलता है।

शिव की उपासना भी की जाती है और भजनों तथा जात के गीतो मे गौरा का विवाह और असुरों के सहार आदि का उल्लेख मिलता है शिव की भी ईश्वर के रूप में प्रतिष्ठा की गई है। शीतला, दुर्गा, काली, फूलमती, जहरा देवी, ज्वाला देवी आदि की भी पूजा की जाती है जिनका उल्लेख देवी के गीतों मे मिलता है।[1]

ग्रामीण लोग अधिकाश अशिक्षत है, अत वे लोग भूत-प्रेतो मे भी विश्वास करते है और इनसे भयभीत रहते है। उनका विश्वास है कि ये भूत-प्रेत लोगो को कष्ट देनेवाले होते हैं, अत इनको प्रसन्न रखने म ही भला है। जखई इन भूतो का सरदार माना जाता है। इसकी पूजा बडी धूम-धाम से की जाती है और इसकी वन्दना मे जो गीत गाये जाते है उन्हे 'जस' कहते हैं। मुसलमानो के साथ रहते-रहते इन लोगो पर उस सभ्यता का भी प्रभाव पडा है। मनुष्य पर जब सकट पडता है तो वह उचित-अनुचित का विवेक खो देता है और यही कारण है कि कन्नौजी लोगो पर जब कोई सकट आता है और वे बीमार होते ह अथवा उन पर भूत का प्रकोप होता है तो वे सैयद और पीर की भी पूजा करते है। नगर या ग्राम के देवता की भी वन्दना की जाती है और उसका नाम स्मरण किया जाता है —

एही नग्र की भुइयाँ भमानी तुम्हरे लेय हम नांव।

यह तो सगुण उपासना का विवेचन हुआ परन्तु कुछ ऐसे गीत भी

---

१. देखिये—परिशिष्ट।

पाये जाते हैं जिनमे निर्गुण की उपासना की जाती है। गीतकार सगुण-उपासना मे सन्देह करता हुआ कहता है —

भगमन कइसे तुम्हें रिझामै।
नाम अपार तुम्हारे सामी किन मैं ध्यान लगामैं।
व्यापक आपु फूल मूरति मैं कइसे तुम पै तुम्हें चढामैं।
पालन करत आप दुनियाँ को फिरि का भोग लगामैं।
कर पग सीस नही धड तुम्हरे अब हम चन्दन कहाँ लगामैं।
रामचरन हैं मूढ मति तुम बिन किस बिध दरसन पामैं।
झम्मन रटत रात दिन तुमकौं निरकार मिलिहौ केहि ठामै।

भाग्यवाद—

लोक-गीतो मे भाग्यवाद बहुत अधिक मात्रा मे पाया जाता है। भाग्य की प्रबलता और कर्म की दुर्निवारता का वर्णन इन गीतो मे बडी मार्मिक रीति से हुआ है। कर्म की रेखा अमिट है, उसके मिटाने की सामर्थ्य किसी मे नही है। इस भाव का वर्णन एक गीत मे मिलता है। गोपीचन्द के जन्म के अवसर पर ज्योतिषी कहता है कि यह बालक योगी हो जायगा तो माता कहती है कि हे ज्योतिषी! तुम्हारे पोथी-पत्रे मे आग लग जावे। तब ज्योतिषी उत्तर देता है कि कागज को फाडकर फेका जा सकता है पर भाग्य को नही मेटा जा सकता। ब्रह्मा ने जो लिख दिया उसे कौन मेट सकता है —

कागद होय रानी फारि के फेकैं।
करम न मेटो जाय मोरे रामा।
लिखनवाले तो बरम्हा रानी।
उनको लिखो को मेटैं मोरे रामा॥

इसी प्रकार अन्य गीतो मे भी भाग्यवाद का बार-बार प्रसग आया है।

आर्थिक जीवन—

लोक-गीतो मे यत्र-तत्र जनता की आर्थिक-अवस्था का भी उल्लेख पाया जाता है। इन उल्लेखो से ऐसा प्रतीत होता है कि तत्कालीन समाज अत्यन्त समृद्ध था। सामान्य जनता के पास खाने-पीने के लिए पीतल के बरतनो तक का अभाव होता है, परन्तु गीतो मे खाने के लिए सोने के थाल और पीने के लिए भी सोने के गडुए का ही प्रयोग किया जाता है —

सोने के थारन भुजना परोसे जेमैं सिरिकृस्न जिमामैं राधा प्यारी।
सोने के गडुआ गगाजल पानी पियैं सिरिकृस्न पियामैं राधाप्यारी।

शयन करने के लिए भी चन्दन के पलग और उस पर पुष्पो की शय्या का ही उल्लेख मिलता है —

फूलन बारी की सेजा बिछाई सोमैं सिरिकृस्न सुआमैं राधा प्यारी।

इन गीतो मे विविध भोज्यपदार्थो का भी वर्णन होता है। बारात के आने पर जिन अनेक भोज्यपदार्थों का गीतो मे उल्लेख मिलता है[1] उनसे अनुमान किया जा सकता है कि जनता का आर्थिक स्तर बहुत उच्च है। यह तो रही गीतो की बात परन्तु वास्तविकता यह है कि इस प्रदेश की जनता की आर्थिक-स्थिति अच्छी नही है। लोग भरपेट भोजन और पहनने के लिए मोटे कपडे बडी कठिनता से पाते है।

राजनीतिक-जीवन—

लोक-गीतो के अनुशीलन से यह ज्ञात होता है कि मुगलकाल का शासन बडा ही क्रूर था। किसी की प्रतिष्ठा सुरक्षित नही थी। रास्ते मे चलनेवाली स्त्रियो पर मुगल लोग आक्रमण करते थे और उन्हे अपने अन्त पुर मे ले जाते थे। गृहस्थो के घर पर आक्रमण करके भी मुगल लोग कन्याओ को छीनकर उनसे विवाह कर लेते थे। स्त्रियो के साथ दुर्व्यवहार के सम्बन्ध मे अनेको गीत मिलते हैं। एक गीत मे एक ब्राह्मण-कन्या किसी पुरुष से अपनी रक्षा की प्रार्थना करती हुई कहती

1 देखिए परिशिष्ट

है कि मुगलो ने मेरे भाई और पिता को मार डाला है। मैं उनके डर से जगल मे छिपी हूँ। तुम मेरी रक्षा करो —

जाति हमारी बाम्हन है यहि रन बन मैं।
दूल्हा मुगिल के डरते दुबी हौं यहि रन बन मैं।
मारि डारे भइया औ बाप तौ यहि रन बन मैं।
दूल्हा मुगिल के डर ते दुबी यहि रन बन मैं।

वह वीर-पुरुष उस स्त्री को अपने घोडे पर बिठा लेता है। परन्तु मुगलो के उत्पात के कारण कही भी जाना कठिन है। मार्ग मे वह पचास मुगलो द्वारा घेर लिया जाता है, पर वह सबको मृत्यु के घाट उतारता है और उस अबला का उद्धार करता है —

दूल्हा काढि लई तलवार तौ यहि रन बन मैं।
ठाढे इक ओर मुगिल पचास तौ यहि रन बन मैं।
दूल्हा ठाढे इक ओर अकेले तो यहि रन बन मैं।
जूझे मुगिल पचास तौ यहि रन वन मैं।

एक दूसरे गीत मे मुगलो के द्वारा किसी व्यक्ति का घर घेर कर उससे लडने का वर्णन मिलता है। बहन कहती है कि हे भाई! जल्दी-जल्दी भोजन करो, क्योकि लडने के लिए मुगल बाहर खडे हैं —

विरना जल्दी-जल्दी जेमो बलइयाँ लेउ वीरन।
विरना मुगल लडाई को ठाढे वलइया लेउ वीरन॥

आल्हा-गीत मे भी राजनीतिक-स्थिति का चित्रण हुआ है। उस समय एक राजपूत की कन्या का दूसरे राजपूत द्वारा अपहरण साधारण सी वात थी। एक राजा का दूसरे सामन्तो तथा छोटे राजाओ से कर लेने का उल्लेख भी इसमे मिलता है। आल्हा मे विवाह तथा कर के विपय को लेकर ही विविध युद्ध होते थे।

पंचम अध्याय

'कनउजी लोक-गीतों का साहित्यिक मूल्यांकन'

'कनउजी लोक-गीतों का साहित्यिक मूल्यांकन'

गीतो के साहित्यिक मूल्याकन करने के पूर्व हमे पहले यह स्थापना करनी है कि लोक-गीत माहित्य की कोटि मे आते है अथवा नही। इसकी यहाँ इसलिए आवश्यकता है क्योकि अब तक लोक-गीत बहुत ही उपेक्षित रहे हैं और उन्हे गॅवारू-गीत ही समझा जाता रहा है। इधर कुछ वर्षों से लोगो का ध्यान इनकी ओर अवश्य गया है। अब भी लोग शिष्ट-काव्य को ही महत्त्वपूर्ण ममझते हैं, लोक-गीतो को नही। पर लोक-गीतो मे माहित्यिक गीतो के ममान ही उच्च कोटि की भावनाएँ मिलती हैं।

साहित्य-दर्पणकार विश्वनाथ ने रचनात्मक वाक्य को काव्य[1] की सज्ञा दी है। इस परिभापा से लोक-गीत काव्य की कसौटी पर खरे उतरते हैं, क्योकि गीत कभी न छीजनेवाले रम के मोते होते है। पाश्चात्य कवि वर्ड्सवर्थ कविता की परिभापा करते हुए कहते हैं कि 'कविता बल-पूर्ण भावो की अपने आप उमडने वाली उमग है[2]। वस्तुत देखा जाय तो वर्ड्सवर्थ की परिभापा लोक-गीतो के लिए ही उपयुक्त हो सकती है। शिष्ट-काव्य मे अपने आप उमडने वाली उमग कहाँ मिल सकती है? लोक-गीतो मे स्वाभाविकता मबमे बडा गुण होता है अत वह उच्चकोटि की कविता की श्रेणी मे आ जाते हैं। शिष्टकाव्य मे आनन्द और रम को प्राप्त कर कुछ शिक्षित लोग ही प्राप्त कर सकते है पर

---

१ वाक्यं रसात्मक काव्यम्—साहित्य-दर्पण।

२ Poetry is the spontaneous overflow of powerful emotions. 'Wordsworth'

लोक-गीतो का रस और आनन्द शिक्षित और अशिक्षित दोनो के लिए सुलभ होता है ।

गीतो के मूल्याकन करते समय दो दृष्टिकोणो से विचार किया जाता है । पहला दृष्टिकोण है भाव-पक्ष का और दूसरा कलापक्ष का । कनउजी लोक-गीतो पर भी इसी क्रम से विचार किया जावेगा ।

कनउजी लोक-गीतों मे भाव-पक्ष

वास्तव मे कविता मे भावपक्ष ही सबसे अधिक महत्वपूर्ण होता है । इस भावपक्ष के अन्तर्गत रसपरिपक और भाव-सौन्दर्य आता है । आगे इसी क्रम से विचार किया जाता है ।

रस-परिपाक —

कनउजी लोक-गीतो मे शृगार और करुण-रस की प्रधानता है । वीर तथा वात्सल्य के भी उदाहरण मिलते हैं परन्तु वीभत्स, रौद्र और भयानक रसो का नितान्त अभाव है । जब स्थायी भाव विभाव, अनुभाव और सचारी-भाव के सयोग[1] से परिपक्वावस्था को प्राप्त होता है तो उसे रस कहते है । गीतो मे रस परिपाक' पर इसी दृष्टि से विचार किया जायगा ।

शृगार-रस—

शृगार के दो प्रकार होते हैं—सयोग और विप्रलम्भ । गीतो मे दोनो का वर्णन मिलता है । शृगार के वियोग-पक्ष की अभिव्यक्ति मे अधिकाश कवियो ने अपने को रमा दिया है । लोक-गीतो मे भी विरह का सूक्ष्म से सूक्ष्म तथा हृदय-ग्राही वर्णन प्रचुरता से मिलता है । वारहमासा का विषय केवल विरह-वर्णन ही होता है । प्रत्येक मास मे विरहिणी की दशा का

---

१ विभावानुभाव व्यभिचारि सयोगाद्रसनिष्पत्तिः—नाट्य शास्त्र ।

दिग्दर्शन इनमे कराया जाता है। इन विरह वर्णनो मे सुपा उद्दीपन लिये गये है। विप्रलम्भ का एक उदाहरण देखिए—

फागुन मास ऋतु लागी री सजनी सव सखि होरी खेलैं।
हमरे तौ ऋस्न विदेस मे छाये हम होरी कइसे खेलैं॥

सखिया होली खेल रही है, यह देखकर उसे पति की याद आ जाती है। इसमे नायिका पति के साथ होली खेलना चाहती है, अत यही 'रति' स्थायीभाव हुआ। नायक आलम्वन और नायिका आश्रय हुई। सखियो का होली खेलना और फागुन का महीना ये उद्दीपन हुए। पति को याद करना स्मृति सचारी हुआ। यह कहना कि 'हम होली कैसे खेलें' अनुभाव हुआ। अत यहाँ रस की पूर्ण निष्पत्ति हो गई।

वियोग पक्ष का एक और उदाहरण प्रस्तुत किया जाता है —

की हो दुलहा रामा अमवा लुभाने की गए रहा भुलाय।
कव से रसुइया लए हम वइठी हेरो मे इकटक राह।
दुलहिन रनिआ न अमवा लुभाने ना गए रहा भुलाय।
वावा की वगिआ कोयल इक वोलै कोयल सवद सुनै ठाडे।
चिठिआ लिखि इक पठई दुलहिन दीजो कोयलिआ के हाँथ।
थोरी देर वोल न वोलो मेरी कोयल प्रभु मोर जीमन को ठाडे।
चिठिआ एक लिखि पठई कोयलिआ दीजो दुलहिन के हाँथ।
मोरी अइसी वोली वोलो कोयल लेव न दूल्हा विलमाय।

नायक अन्यमनस्क होकर घर से वाग मे चला जाता है और कोयल की कूक सुनकर वही रम जाता है। नायक के लिए नायिका भोजन लिए एकटक राह देख रही है। उसे मालूम होता है कि कोयल ने उसके पति को 'विलमा' लिया है। कोयल के वोल को अपने और नायक के वीच की वाधा समझकर कोयल से वह प्रार्थना करती है कि कुछ देर के लिए वह न वोले। इस गीत मे नायिका की आकुल-प्रतीक्षा 'रति' स्थायी

भाव है। नायक आलम्बन और नायिका आश्रय है। आने मे विलम्ब उद्दीपन और एकटक राह देखना अनुभाव है। कोयल की बोली से नायक विलम जाता है अत उसे आशका जनित चिन्ता होती है। यह चिन्ता सचारी भाव हुआ। अत यहाँ शृगार रस की पूर्ण निष्पत्ति हुई।

गीतो मे विरह का बडा ही विशद वर्णन हुआ है पर यदि सब गीतो मे रस-निष्पत्ति के सहायक सभी अगो को देखा जावे तो हमे प्राय निराश ही होना पडता है। हाँ, यह बात अवश्य है कि शास्त्रीय-दृष्टि से ये गीत चाहे बहुत खरे न उतरें पर श्रोता को तो ये रस से सराबोर कर ही देते हैं। इन गीतो से विहारी के समान ऊहात्मक वर्णन नही मिलते [1] पर स्वाभाविकता का सर्वत्र ही साम्राज्य रहता है।

करुण रस—

कनउजी गीतो मे करुणा की धारा सतत प्रवाहित होती है। स्त्रियो के गीतो मे तो करुणा का सागर ही उँडेल दिया गया है। करुण-रस के गीतो के अतिरिक्त शृगार, वात्सल्य और वीर आदि रसो के गीतो मे भी करुणा किसी न किसी रूप मे अवश्य मिलती है। इससे भवभूति की प्रसद्धि उक्ति, एक करुण-रस ही निमित्त भेद से पृथक्-पृथक् परिवर्तित रूपो मे आश्रय लेता है,[2] पूर्ण रूप से चरितार्थ होती है। करुण-रस का एक अत्यन्त प्रसिद्ध अन्तर्प्रान्तीय गीत है। इसमे उल्लेख आता है कि रानी कौशल्या राम की खजडी की खाल के लिए हिरन को मरवाती हैं। हिरनी रानी से प्रार्थना करती है कि उसे खाल दे दी

---

१. इत आवत चलि जात उत, चली छ सातक हाथ।
चढ़ी हिडोरे सी रहै, लगी उसासन साथ॥
'विहारी सतसई'

२. एको रस· करुण एव निमित्तभेदाद्भिन्न पृथक् पृथगिवाश्रयते विवर्तान्-भवभूति 'उत्तररामचरित'।

जावे जिमे कि पेड पर टाग कर वह देखे और मन को समझावे कि हिरन अभी जीवित है। अन्त मे खाल की खजडी वजती है और उसके वजने पर हिरनी के मर्म पर आघात होता है। वह वेचारी अन्दर ही अन्दर तडपती है —

जव जव वाजै खजडिआ मवद सुनि मनकै हो।
हिरनी दउरि ढकुलिआ के तरे हिरना को विमूरै हो।

यहाँ हिरन आलम्वन और हिरनी आश्रय है। खजडी का शब्द उद्दीपन और विसूरना अनुभाव है। पति का याद आना 'स्मृति' सचारी है। अत यहाँ करुण-रस की पूर्ण निष्पत्ति हुई। इस गीत का स्थायी-भाव शोक वियोग-जन्य न होकर इष्टनाश-जन्य है।

एक गीत मे स्त्री का पति मर गया है, न तो मायके मे और न ससुराल मे ही कोई आश्रय देनेवाला है। अत वह अपने दु ख की अभिव्यक्ति करती है —

विगरी प्रभु नाथ तुम्हारे विन हमरी।
नइहर मैं जो विरना होते उनहूँ की करती आस।
ससुरे मैं जो दिउरा होते उनहूँ की करती आस॥

इस गीत मे प्रिय की मृत्यु के कारण 'शोक' स्थायी-भाव है। 'मृतक-पति' आलम्वन तथा 'विधवा' आश्रय है। 'आश्रयहीनता' उद्दीपन तथा दु ख की अभिव्यक्ति करना अनुभाव है। इस अवस्था मे अपने दाम्पत्य-जीवन की याद आना 'स्मृति' सचारी है। अत यहाँ करुण-रस की पूर्ण निष्पत्ति हुई।

वीर-रस—

स्त्रियो के गीतो मे वीर-रस का अभाव है। वास्तव मे उनका हृदय वडा ही कोमल तथा स्निग्ध होता है। अत उनसे वीर-रस-युक्त भावो की अभिव्यक्ति कैसे हो सकती है? दूसरी ओर पुरुषो के अनेक गीत है जिनमे वीर-रस की अपूर्व छटा देखने को मिलती है। वीर-रस से युक्त

गीतो मे आल्हा सर्वप्रमुख है। आल्हा वीर-रस से सराबोर होता है। इसकी एक-एक पक्ति कायरो के हृदय मे भी उत्साह भर देती है। कभी कभी तो ऐसा तक सुना गया है कि आल्हा के युद्ध को सुनते-सुनते ग्रामीणो मे इतना उत्साह उत्पन्न हो जाता है कि वे एक दूसरे से लडाई कर बैठते है। इस कथन की सत्यता मे सन्देह है परन्तु इससे यह तो अर्थ निकाला ही जा सकता है कि आल्हा मे वीर-रस की बहुत ही अधिकता होती है। आल्हा-गीत का कुछ अश यहाँ दिया जाता है —

जइसे भिडहा भेंडन पइठै, जइसे सिंह बिडारैं गाय।
तइसेइ रुपना है दगल मैं, धमकी धौंस दिखाउत जाय।
बहुत तौ छत्री अइसे भाजे, झपटि के खिडकी मैं कढे जाय।
खलबल परि गओ है दगल मे, ऐसी गवडी दई मचाय।

इस गीत मे 'शत्रुओ के मारने का 'उत्साह' स्थायी-भाव है। 'शत्रु' आलम्बन तथा 'रुपना' आश्रय है। 'सजे-बजे शत्रु तथा रण-क्षेत्र' उद्दीपन है। 'तलवार चलाना और धमकी देना अनुभाव है। 'शत्रुओ के मारने मे हर्ष और गर्व का' अनुभव करना' सचारी है अत यहाँ वीररस की पूर्ण निष्पत्ति हुई है।

आल्हा गीतो के अतिरिक्त रामायण और महाभारत आदि के कथानको को लेकर रचे हुए गीतो मे भी वीर-रस मिलता है। नीचे महाभारत का एक गीत दिया जाता है —

ताल बजाय भिम्मा दहलानो।
ताल बजाय भिम्मा दहलानो बादर सो घहरानो।
फूलो अग भओ अब दूनो तब कीचक मन मे घबडानो।
भिम्मा जोधा यो उठि बोलो भेद ना तुमने जानो।
दोनो लडत मस्त जइसे हाथी भुज गहि भिम्मा तानो।
अइसी पटकि मारी धरनी मैं कढत प्रान कीचक ठहनानो।

इस गीत मे 'भीम का कीचक को मारने का उत्साह' स्थायी-भाव, 'कीचक' आलम्वन तथा 'भीम' आश्रय है। 'रणक्षेत्र' तथा 'कीचक को देखना' उद्दीपन है। 'ताल ठोकना', 'भुजाओ मे उठा लेना' और यह कहना कि 'तेरा काल निकट आगया है, अनुभाव हैं। 'मारने से हर्ष और गर्व का होना' सचारी है। अत इसमे भी वीर-रस की पूर्ण-निष्पत्ति हुई है।

शान्त-रस –

वृद्ध और वृद्धाए कुछ ऐसे भी गीत गाती है जिनमे ससार की नि सारता और अनित्यता का उल्लेख होता हैं। प्राणी की मृत्यु का विषय लेकर भी शान्तरस की धारा वराई जाती है। मृत्यु ऐसी घटना है जो शोक करने का विषय होने के साथ ही मनुष्य को एक ऐसा अवसर देती है जिससे वह जीवन की क्षणभगुरता समझ कर भगवान् मे अपना मन अनुरक्त करे। इसी आशय का गीत देखिए —

अव तुम जइऔ कउन वाना प्रानी।
पाच जने मिलि लैके चले हैं ऊपर चद्दर तानो।
वीनि लकडिआ फूंकि दओ है जरन लगी जइसे होरी।
हाड जरैं जइसे चन्दन लकडी वार जरैं जइसे घाम।
देह जरत है कचन अइसी आउत वास कुवास।

इस गीत मे मृत्यु के कारण' निर्वेद स्थायी भाव है। मृत्यु से ससार की अनित्यता का ज्ञान होना आलम्वन तथा देखनेवाला 'आश्रय' है। 'हड्डियो, वालो और मास का जलना' उद्दीपन तथा निर्वेद[1] और मति आदि सचारी है। अत इसमे शान्त-रस की पूर्ण अभिव्यक्ति हुई है। देवो के गीतो मे भी शान्त-रस मिलता है।

उपर्युक्त रसो के अतिरिक्त वात्सल्य और हास्य-रस के भी कुछ

---

१ निर्वेद स्थायीभाव होता है और साथ ही सचारी भी।

स्थल मिलते हैं। विदाई के गीतो मे वात्सल्य और करुण का मणि-कांचन सयोग हुआ है।

भाव-सौन्दर्य—

अशिक्षित ग्रामीण जनता मरल स्वभाव की होती है। उनके हृदय मे छल-छद्म पास भी नही फटकना। जिस प्रकार ग्रामीण लोग व्यवहार मे छल-छद्म रहित है उसी प्रकार अपनी वाणी की सगीत-मय-अभिव्यक्ति मे भी। इन गीतो मे न तो अलकार का चमत्कार होता है और न उक्ति-वैचित्र्य ही। पर हां, उनमे एक ऐसी वस्तु होती है जो शिप्ट-काव्य मे भी दुर्लभ होती है, वह है उत्कृष्ट भावो की सहज अभिव्यक्ति। ये गीत भाव-सौन्दर्य के विशाल-भण्डार है। गीत की एक-एक पक्ति और एक-एक शब्द मे भावो की अनुपम छटा देखने को मिलती है। इनमे रस-व्यजना करनेवाले अनेको भाव भरे पडे हैं। यहां पर कुछ भावात्मक स्थलो के उदाहरण दिए जायेंगे।

एक स्त्री का पति परदेश चला गया है। वह उसके विरह से अत्यन्त व्याकुल है और उसका दिन-रात स्मरण करती है तथा उसके पास सदेश भेजना चाहती है, पर कोई सदेशवाहक नही मिलना। वर्षाऋतु के आने पर काले मेघ छा गए हैं। मेघो को देखकर वियोग उद्दीप्त होता और वह मेघो से कहती है—

अरे अरे कारी वदरिआ तुमहिं मोरी वदरी हो।
वदरी जाय वरमी उइ देम जहां पिया छाये हैं हो।

स्त्री जव मन्देश भेजना अनावश्यक समझती है। उसे विश्वास है कि जिस प्रकार मेघो को देखकर मुझे पनि की स्मृति आ गई है और विरह उद्दीप्त हो गया है उसी प्रकार मेघो को वरसते हुए देखकर पनि को भी मेरी स्मृति हो जाएगी और वह वहां से मुझसे मिलने के लिए चल देगा। 'वरमने' मे दूमरा भाव यह भी हो मकता है कि वूंदो के

वरसने से पति को नायिका के विरह मे गिरते हुए आँसुओ का भी स्मरण हो आयेगा। इन पक्तियो का घनानद की दो पक्तियो से भाव-साम्य दर्शनीय है —

घन आनन्द जीवनदायक है वछु मेरियो पीर हिये परसो ॥
कवहू व विसासी सुजान के आगन मो असुवान को लै वरसो ॥

ऊपर के गीत मे 'अरे' शब्द के दुहराने से हृदय की व्याकुलता और 'तुमहि मोरि वदरी' कहने से नायिका की असहायता प्रकट होती है। उसकी वात सुनने को यदि कोई है तो केवल 'वदरी' ही। स्त्री के विश्वास के अनुसार पति को 'वदरी' के देखने से स्मरण हो आता है और यह मिलन के लिए आतुर होकर घर आता है। स्त्री द्वार वन्द किए हुए सो रही है। पति ने द्वार खटखटाया। स्त्री ने पूछा कि तुम कुत्ते हो या विल्ली अथवा ससुर के पहरेदार ? पति उत्तर देता है —

ना हम कुत्ता विलइआ ना ससुर पहरुआ हो।
धनि हम ओइ तुम्हरे सजनवा वदरी वुलाये हो।

'वदरी वुलाये हो' कैसा सुन्दर भाव है। कालिदास ने भी वर्णन किया है कि मेघ, परदेशी लोगो को, जो अपनी पत्नियो की वेणी खोलने के लिए उत्सुक हैं, घर जाने की प्रेरणा देता है[2]। इस गीत मे स्वाभाविकता के साथ वडी ही प्रभावोत्पादक वात कह दी गई है।

घिरी घटाओ को देखकर एक विरहिणी को अपने पति की याद आ जाती है और वह वियोग-दुःख से दुःखी होकर आँसुओ को रोकने मे

---

१. इसी भाव का गीत त्रिपाठी जी के संग्रह में भी है, लेखक ने अपने प्रदेश के गीतों के निजी संग्रह से यहा उद्धरण दिया है।

२ यो वृन्दानि त्वरयति पथि श्राम्यतां प्रोषितानाम्।
मन्द्रस्निग्धैर्ध्वनिभिरवलावेणिमोक्षोत्सुकानि ॥ मेघदूत।

असमर्थ हो जाती है। घूंघट के अन्दर ही उसके आँसू ढुलक पडते है। इसी भाव का एक गीत इस प्रकार है —

कउन बदरिआ उनई रसिआ
कउन बरसि गए मेह
घुंघट बदरिआ उनई रसिआ
गालन बरसि गए मेह।

जिस प्रकार घटाओ के घिरने पर वर्षा होती है उसी प्रकार वधू के घूंघट निकाल लेने पर स्मृतिजन्य आँसू बरस पडते हैं। इसमे यह भाव भी छिपा है कि लज्जाशीला वधू अपने दुख को किसी पर प्रकट भी नही होने देना चाहती। जब आँसू छलछला आते हैं तो उन्हे छिपाने के हेतु वह घूंघट डाल लेती है, जिससे कि आँसुओ का गिरना कोई न जान सके। शिष्ट-काव्य मे कवियो का ध्यान स्त्री की शोभा के वर्णन मे अवगुंठन तक गया तो है पर वे यह नही जान सके कि स्त्री का अवगुंठन केवल लज्जा और शोभा की वस्तु ही नही होता, वह दुःख मे उसकी वेदना के लिए आश्रय भी होता है। अवगुंठन मे सौन्दर्य का छिपना तो सभी जानते हैं, पर उसमे कितनी वेदना भी छिपी रह सकती है, इसे गीतो की स्त्रियां ही समझ पाई है।[1]

एक स्त्री का पति परदेश जाने को तैयार है। पत्नी रोक रही है, पर वह नही मानता। वह पति से वियुक्त रहने की कल्पना भी नही कर पाती। उसकी समझ मे नही आता कि विरह के दिन कैसे कटेंगे। पति जब किसी प्रकार नही मानता तो वह कहती है —

जुगित बताए जाव कउन बिध रहिऐं।
जो कहुँ सजन बहुत दिनन मैं अइओ।
अपनी सुधि मोरी बहिआं पै लिखाए जइओ।

और अन्त मे वह कहती है कि —

---

१. रामकिशोरी श्रीवास्तव—हिन्दी लोक-गीत, पृष्ठ ५४।

जो कहुँ सजन बहुन दिनन मैं अइओ ।
बहिआँ पकरि हमैं गगा मैं धकिआए जइओ ।

वियोग-दु ख उसे इनना असह्य जान पडता है कि अपने पति द्वारा गगा मे डुबोई जाकर प्राण दे देना उसे स्वीकार है, परन्तु वियुक्ता होकर रहने को वह तैयार नही। ठीक ही है, जीवित रहकर तो उसे वियोग का कष्ट सहना पडेगा, पर मरकर वह सारे कष्टो से छुटकारा पा जावेगी। कवियो ने वियोगिनियो के आँसुओ से नदियो मे बाढ आ जाने की जो बात लिखी है वह अलकार और उक्तिवैचित्र्य की दृष्टि से भले ही चमत्कारपूर्ण हो पर श्रोताओ के हृदय पर उसका कोई प्रभाव नही पडता। पर इस गीत मे 'धकिआए' शब्द मे बडी प्रभावोत्पादक व्यजना छिपी है।

किसी स्त्री का पति परदेश चला गया है। वह वियोग से दु खी होकर कह रही है कि हे सजन, तुम परदेश चले गए हो। न जाने कब लौटोगे। तुम्हारे आने के दिन गिनते-गिनते मेरी अँगुलियाँ घिस गईं, पर तुम न आए। तुम्हारी प्रतीक्षा मे आँसू की धारा बह रही है। मैं तुम्हे ढूंढने को एक वन मे गई, दूसरे मे गई और तीसरे वन मे एक गाय चरानेवाला मिला। मैंने उनसे पूछा कि गाय चरानेवाले भइया, तुमने मेरे पति को कहीं देखा है? —

गए सजन परदेश लउटिओ कितने दिन मैं।
हम तकैं तुम्हारी राह सजन कितने दिन मैं।
गिनत-गिनत दिन अँगुरी घिसि गईं हो सजना।
ढुरैं नैनन अँसुआ हेरत रहिआ।
इक वन नागो दुसर वन नागो पहुँचि तिसर वन मैं।
मिलो हैं गाय चरइआ हो सजन तिसरे वन मैं।
गोरू चरइआ तुम मोरे भइआ।
देखो तो नाईं सजनवा मेरो एई वन मैं।

महा मास में जाडो परत है हम पै रहो न जाय ।
जाय कहो न्यारे वलमा ते तुम विन जाडो न जाय ॥

माघ मास में सवसे अधिक जाडा होता है। इस जाडे मे विरहिणी को पति का अभाव खटकता है। यदि पति होता तो उसके साथ शयन करके जाडा मिटाया जा सकता था।

फागुन मास में उडत अबीरा सब सखि होरी खिलन कौ जाय।
जो घर होते बारे कन्हइआ डरती मैं अतर गुलाब।

फागुन मास वडा ही मादक होता है। इसमें प्रकृति उद्दीपन का काम करती है। पुष्प, लताए, वृक्ष, वायु सभी उन्मादकारी प्रतीत होते हैं और मनुष्य मत्त होकर होली खेलते हैं। इस वातावरण में भला विरहिणी को पति की याद क्यो न सताए ? सव सखियो को होली खेलते देख कर उसकी लालसा जाग्रत हो जाती है। वह कहने लगती है कि मेरे भी प्रियनम यदि घर होते तो उनके साथ अतर और गुलाव से होली खेलती। ध्यान देने की यह वात है कि सव सखियाँ तो रग और अवीर से ही खेलती हैं परन्तु वह इन वस्तुओ से होली न खेल कर अतर और गुलाव जैसे वहुमूल्य पदार्थों का प्रयोग करती। पति का होना उसके लिए वडा ही हर्ष का अवसर होता फिर अतर-गुलाव को उस पर डालने की भावना में आश्चर्य की क्या वात है।

चैत मास मे फूली चमेली भउरा रहे लुभाय।
आवो न भउरा लोटी पोटो जिय की तपन वुझाय।

चैत मास मे चमेली की मादक सुगन्ध पर भ्रमर लुब्ध हो रहे हैं। विरहिणी भी भ्रमर से कहती है कि वह आकर उसके हृदय की तपन वुझावे। वास्तव मे भ्रमर यहाँ पनि का प्रतीक है। यौवन से युक्त स्त्री चमेली के समान है और यौवन पर मडराने वाले भ्रमर के समान पति के आगमन की वह कामना करती है। यदि पति आगया तो

उसके आलिंगन-पाश मे वद्ध होकर वह अपने हृदय की विरहाग्नि को ठडा कर लेगी।

वैसाख मास मे बँसवा कटउती बँसवा कटाय के बँगला छवौती।
बँगला छवाय के खिरकी कटउती झुकुअन आवै वयार।

वैसाख मास मे गाँवो मे छप्पर छाये जाते है। कुछ दिनो वाद वर्षा-ऋतु आ जाती है। स्त्री को भी अपने वगले के छवाने की चिन्ता है। उसका पति वाहर है, नही तो वह वाँस कटवाकर बँगला छवाती और उसमे खिडकियाँ भी कटवाती। इन खिडकियो से जो सुन्दर समीर आता उससे वह दोनो आनन्द मनाते। वेचारी पति के विना यह सव सोच सोच कर ही रह जाती है।

जेठ मास की खरी दुपहरी हमपै चलो न जाय।
जाय कहो उन वारे वलमा ते वहिआँ पकरि लै जाय॥

वह पति के वियोग से इतनी दुःखी है कि अन्त मे स्वय पति के पास जाने को सन्नद्ध हो जाती है। पर जेठ मास मे वहुत कडी धूप होती है और भूतल तवा सा जलता है। ऐसी स्थिति मे वह कोमलागी पति तक किस प्रकार पहुँचे, उसका जाना असभव सा ही है। अत वह कहती है कि हे उद्धव! पति से जाकर कहना कि कडी दुपहरी मे तुम्हारी स्त्री से चला नही जाता। तुम स्वय उसका हाथ पकडकर उसे सहारा देकर ले जाओ।

इसी प्रकार अन्य वारह मासो मे विरहिणी की दशा का मार्मिक और हृदय द्रावक चित्रण हुआ है। इनमे दाम्पत्य-जीवन का वडा ही सूक्ष्म-निरीक्षण मिलता है।

सयोग-शृगार के भी इन गीतो मे वडे मनोरम चित्र मिल जाते है। एक पति अपनी स्त्री से वहुत अधिक प्रेम करता है। स्त्री को इस वात का गर्व है कि उसका पति उससे वहुत प्रेम करता है। इसी प्रेमाधिक्य

के कारण वह स्त्री को हरएक काम करने से रोकता है । स्त्री कहती है—

दिउरा कहै भउजी पानी भरि लावौ सइआं कहै गिरि परिऔं दुलारी ।
दिउरा कहै भउजी रोटी बनाय देव सइयां कहै जरि जइऔं दुलारी ।
दिउरा कहै भउजी बीरा लगाय देव सइआं कहै गडि जइएं सुपारी ।

बेचारा पति इससे भी अधिक अपनी स्त्री की चिन्ता और क्या करे ? एक गीत मे उल्लेख आता है कि पति परदेश चला गया है और उसकी पत्नी को सास-ननद नाना प्रकार के कष्ट देती हैं । एक दिन जब वह झूला झूलने जाती है तो देवर मार डालता है । पति परदेश से लौट कर आता है और पत्नी के विषय मे पूछता है । पहले तो उससे अनेक बहाने किए जाते है कि वह झूला झूलने गई, चक्की पीसने गई, मायके गई, पर अन्त मे वास्तविक बात ज्ञात हो जाती है । पति भोजन नही करेगा और तब माता कहती है कि पुत्र ! शोक किस बात का है ? तुम्हारा दूसरा विवाह करवा दूंगी । इस पर वह बडा ही मार्मिक उत्तर देता है—'चन्द्र-सूर्योपम मेरी सहधर्मिणी छूट गई है तथा राजाओ जैसी ससुराल । हे माता ! जोगियो के कपडे लाओ मैं अपनी प्रिया के वियोग से जोगी हो जाऊगा' । गीत की अन्तिम पंक्तियां इसप्रकार है—

माया जो आई बहिनियां आई 'करौ पूता जिउनार ।
काहे को पूता मोरे अनमन धनमन दुसरो मैं रचिहौ बियाह ।'
चन्दा सुरिज अइसी धनिया जो छूटी रजन छूटि ससुरार ।
लावौ न माया मोरी जुगिजा के कपडा हम जुगिया हुइ जाय ।'

हिरनी के करुण-गीत का उल्लेख 'रस-परिपाक' के प्रसग मे हो चुका है । ऐसे ही हृदय-द्रावक चित्र सीता के प्रसग मे मिलते है । वन-वास से उन्हे बहुत दुःख हुआ और साथ ही साथ उनका इतना अपमान हुआ कि लोक गीतकार राम के प्रति मर्यादा का उल्लघन कर गए हैं । शिष्ट साहित्य के कवियो की भांति वे आदर्शवादी भी तो नही है । वे

यथार्थ का चित्रण करते हैं। एक गीत में उल्लेख आता है कि राम ने सीता के पास 'पाती'[१] भेजी कि हृदय का क्रोध छोड़कर अब लौट आओ। सीता ने इसके उत्तर मे कहा कि 'यदि मर कर भी तुम दूसरा अवतार लोगे तो भी मैं अयोध्या न लौटूँगी।' सीता का यह क्रोध अस्वाभाविक नहीं है, क्योंकि उन जैसी सती का अविश्वास करके 'अग्नि-परीक्षा' लेना घोर अपमान है। इतना ही नहीं, गर्भावस्था में उन्हे घर से निकालकर वनवास दे देने मे भी अधिक क्या कोई क्रूर कार्य हो सकता है ? लोक कवि की वाणी यथार्थ की अभिव्यक्ति करती है। भव-भूति जैसे आदर्शवादी कवि की भाँति वह सीता से यह नहीं कहलाता कि अपने ही पूर्व जन्मो के पापो के परिणाम से यह कष्ट मुझे भोगना पड़ा है।[२] दूसरे गीत मे वशिष्ठ सीता से लौट चलने के लिए कहते हैं। तब सीता उत्तर देती है कि "राम ने अविश्वास करके मेरी अग्नि-परीक्षा ली और इतने मे ही वे सन्तुष्ट न हुए, उन्होने गर्भावस्था मे भी मुझे भयकर वन मे छोड़वा दिया। मेरे हृदय को कैसे सन्तोष हो सकता है ?" एक अन्य गीत मे लव-कुश आकर माता को सदेश देते हैं —

खोलौ न माता चनन किवरियाँ आए हैं पुरिख तुम्हार।

यह समाचार पाकर सीता को बड़ा ही क्लेश होता है। वह आत्म-ग्लानि, लज्जा और क्रोध के कारण राम को देखना भी नही चाहती, क्योंकि अविश्वास और दु:ख देने की एक सीमा भी होती है। राम ने उसका उल्लघन कर दिया। इसी कारण सीता के लिए पृथ्वी ही एक-मात्र आश्रय होती है —

---

१. एहो सीता ने पाती लिखि पठई राम जी बाँचें।
एहो मरि के धरौ औतार अजुध्या नाहिं आमैं।

२ ममैव जन्मान्तर पातकानां विपाक विस्फूर्जथुर प्रसह्य —
उत्तररामचरित

फाटो न धरती हम समियामैं जियत दए वनबास ।
फाटी है धरती मीता समियानी धरती मैं केम भए कुस कास ॥

वन्ध्या स्त्रियो के प्रसग को लेकर गीतो मे करुणा को कूट-कूट कर भरा गया है। बेचारी वन्ध्या ने कोई अपराध नही किया है। उस का कष्ट और अपमान एक गीत मे श्रोता को रुला देता है। वन्ध्या से सास 'बांझ' और ननद 'निरबसिन' कहती है। जिसकी वह परिणीता है, उसने घर से बाहर निकाल दिया। इस अपमान से दुखी होकर वह नागिन के बिल के पास जाती है। नागिन निकलकर सुख-दुख पूंछती है। स्त्री जाति मे उसे सहानुभूति होनी ही चाहिए। वन्ध्या को भी इसकी आशा थी नही तो वह नाग के बिल के पास जाती। पर नागिन की सहानुभूति उसी समय तक रहती है जब तक उसे यह नही ज्ञात होता कि यह स्त्री वन्ध्या है। जैसे ही वह इस तथ्य को जानती है, तुरन्त कह देती है कि 'हमारे तो छोटे-छोटे बच्चे है वह भी बांझ हो जावेंगे। अत हम नही डंस सकती।' बेचारी वन्ध्या निराश होकर बाघिन के पास भी जाती है और उसी प्रकार निराश होती है। स्त्री को मायके से बडी-बडी आशाएं होती है और विशेष रूप से माता से और भी अधिक। परन्तु जब वह माता के पास आश्रय के लिए जाती है तो माता, जो स्नेह और वात्सल्य की अवतार होती है, वह भी यह कहकर कि उसकी बहू बाझिन हो जाएगी, लौटा देती है। इस प्रकार वन्ध्या होना एक अभिशाप है, इसको लेकर गीतकार ने करुणा को उँडेल दिया है।

विरवा की स्थिति के भी गीतो मे पर्याप्त मात्रा मे मिलते है। एक गीत मे भाई ने बहनाई को मार डाला। निराश्रित बहन वन्ध्यात्व के अभिशाप से बच जाती है। उसका सुहाग सिन्दूर पुंछ जाता है और बिलखती हुई वह कहती है कि 'मै हरी और पीली चूडियां किसके लिए पहन और किस पर शृगार करू। मेरी 'मडइया' को कौन छावेगा

तथा मेरे जीवन का निर्वाह कैसे होगा।[1] इन दो ही पंक्तियों में विधवा की दीन तथा असहाय अवस्था का चित्रण हो जाता है।

बहन-भाई के स्नेह के भी अनेकों चित्र गीतों में उपलब्ध हैं। बहन भाई का स्नेह बड़ा ही दिव्य होता है और विशेषकर भारत में तो यह सर्वोच्च स्थान रखता है। भाई इतना अधिक प्रेम करता है कि उसकी बहन को कोई थोड़ा भी कष्ट दे तो उसे असह्य हो जाता है। कुछ गीतों में तो बहन के कष्ट को देखकर वह बहनोई तक का वध करने को तैयार हो जाता है। इस प्रेमाधिक्य से बहन को अप्रत्यक्ष रूप से हानि ही होती है, पर भाई को इसके लिए दोषी नहीं ठहराया जा सकता। यदि वह अपने बहनोई को आवेश में आकर मार भी डालता है तो इसका कारण तो उसका बहन के प्रति अतिशय प्रेम ही है। विदा के समय भी भाई पालकी का डंडा पकड़ लेता है और बहन को जाने से रोकता है।

बहन को भी भाई से किसी भी प्रकार कम प्रेम नहीं है। उसे जब भी कोई कष्ट होता है तो अपने भाई के आने की राह देखती है अथवा बुला ले जाने का सन्देश भेजती है। अपने दुःख का निवेदन सदा वह भाई से ही करती है। बहन के यहाँ भाई आता है और उसकी दशा को देखकर उसका हृदय द्रवित हो जाता है। माता से आकर वह बहन की दुर्दशा बतलाता है —

बहिनी को हाल ना पूँछो माया बहिनी को हाल सुनि छतियाफटै जी।
बहिनी के कपड़ा अइसे बने है जइसे चौका को पूतना जी।
बहिनी के केस माया अइसे बने हैं जइसे कुकुर की पूंछ जी।
बहिनी के असुआ अइसे गिरत है जइसे मघा के बूंद जी।
माता सुनकर कहती है —
अइसे दुःख पूता तुम्हरी बहिनी को रोउत बहिन कइसे डोलो जी

---

१ गीत परिशिष्ट में देखिये।

विदा के गीतो मे सबसे अधिक हृदय-द्रावक भाव मिलते है। जिस पुत्री को माता-पिता ने जन्म दिया, पाल-पोस कर बडा किया, वही पराई हो जाती है। ऐसे अवसर पर हृदय का वात्सल्य और करुणा की चरम सीमा तक पहुँचना स्वाभाविक ही है। विदा के अवसर पर कही माता रोती है तो कही पिता आँसू बहाता है। गीतो मे ऐसा भी उल्लेख आता है कि इस समय भाभी को कुछ भी दुख नही होता —

माया के रोए छतिया फटत है ददुली के रोए सागर पार।
भइआ के रोए पटुका भिजत है भउजो ठाडी मुसक्याँय।

एक गीत में कन्या की जन्म से लेकर विदा तक की करुण-कथा का वर्णन मिलता है। कन्या बेचारी के भाग्य मे ही विदेश लिखा है —

हमको लिखो है विदेस रे सुनु वावुल मोरे।
जा दिन भइआ तुम्हरो जलम भओ है भईहै सोने केरी राति रे। सुनु०
आजिहु वेसै भाइउ वेसै ददुलि वेसै चौपार रे। सुनु०
जा दिन भइआ मेरो जलम भओ है भई है वजुर केरी राति रे। सुनु०
आजिउ रोमैं वावुलि रोमैं अजुलि रोमैं चौपार रे। सुनु०
तुम को तौ वीरन मोर दादुलि चौपरिआ हमको तौ लिखो है विदेस रे। सुनु-
हम तौ ददुलि मोरे गगरी घैलना डुवत डुवत डुवि जायँ रे। सुनु०
हम तौ ददुलि मोरे सार की गइयाँ जहाँ वाँधी तहँ जाँय रे। सुनु०
हम तौ ददुलि मारे अगन चिरइयाँ चुनत त्रिनत उडि जायँ रे सुनु०
वगिआ के ओरे निकसी पलकिआ कोयल एक सुनाय रे। सुनु०
अव का वोलौ सौति कोइलिआ छूटो ववुल को देस रे। सुनु०
लहुरे विरन मोरी पकरी पलकिआ हमरी वहिनि कहँ जाय रे। सुनु०
धिया पठै वावुल घर को लौटे घरु देखो अधियार रे। सुनु०
घर मेरो वामौं अगन तिवासो गुवर मुसै मेगे सार रे। सुनु०

कुछ गीतो मे मनुष्य का वीमार होना, लोगो का देखने आना,

मृत्यु, दाह आदि प्रसगो को लेकर निर्वेद-भाव का सुदर वर्णन उपलब्ध होता है। नीचे एक गीत देखिए —

नगरी अजुध्या आज भई सूनी।
कोटे ऊपर कोट उठाय दए किला उठाय अनमानी।
सीस महल से गोला छूटो छूटि गई वाकी नौ-नौं नारी।
घर बाहर के सवै बुलाय देव अउर बाप महतारी।
जेठो भइआ हाल बुलाय देव बैंद दिखावैं मोरी नारी।
घर बाहर के आय गए सब आए बाप महतारी॥
जेठो भइआ हाल आय गओ लै आओ वैद दिखाई मोरी नारी।
हुक्कावाले हुक्का पी गए वैद छोडि गए नारी।
हसा मैं ते प्रान निकरि गए सूखि गई फुलवारी।
हाँथ पकरि वाकी तिरिया रोवैं जा करतब मोरी राम ने बिगारी।
चारि जने मिलि खाट उठाई ऊपर चादर तानी।
गगा किनारे खाट उतारी फूंकि दओ जैसे होरी जराई।
हाड जरैं जइसे चन्दन लकडी बार जरैं जइसे घास।
वारि जारि कि पैंकरमा कीन्ही औघट घाट हनाई।
चलो राम तिरिऐ समझइऐं अबका रोवो तिरिया विचारी।
अबका रोओ तिरिया बावरी जिन जोरी तिन तोरी।

इस गीत में यह भाव दर्शाया गया है कि जब मृत्यु हो आती है तो परिवारवाले, व्यवहारी, वैद्य, कोई भी उसे रोक नही पाता। यह देह जिसको बडे मोह से रक्षित किया जाता है, चन्दन की लकडी के समान भस्म हो जाती है। इससे व्यजित होता है कि प्रभु से ध्यान लगाना मनुष्य के लिए आवश्यक है। वही अन्तिम गति है। इसमे निर्वेद-भाव का बडा प्रभावोत्पादक चित्रण है।

ऊपर अनेक प्रसगो को लेकर जो विवेचन किया है उससे स्पष्ट हो जाता है कि कनउजी लोक-गीतों में भाव-सौन्दर्य पर्याप्त मात्रा मे

पाया जाता है। इनका रसास्वादन वही कर सकता है जो अपने को भी उन भावो मे डुबा दे :—

तन्त्री नाद कवित्त रस सरस राग रति रग।
अनबूडे बूडे तिरे जे बूडे सब अग [1]॥

कला-पक्ष

कनउजी लोक-गीतो के कला-पक्ष का अगले पृष्ठो मे विवेचन किया जाएगा। इसके अन्तर्गत हम अलकार, प्रकृति-चित्रण, तुक, लय, छन्द-विधान और भाषा पर क्रमश विचार करेंगे।

अलकार—

काव्य की शोभा बढानेवाले धर्मो को अलकार कहते हैं।[2] जिस प्रकार नायिका को आभूषण पहना देने से उसका सौन्दर्य बढ जाता है उसी प्रकार अलकारो से विभूषित काव्य भी अधिक सुन्दर हो जाता है। अलकारो का प्रयोग जैसा कि ऊपर कहा गया है सौन्दर्य की वृद्धि के लिए किया जाता है परन्तु शिष्ट-काव्य मे अलकार-सम्प्रदाय के प्रभाव मे कुछ कवि अलकार के पीछे पड गए और उन्होने अलकार के बिना कविता के अस्तित्व मे ही सन्देह प्रकट किया[3]। पर कनउजी लोक-गीतो मे अलकार का प्रयोग बडी ही स्वाभाविकता के साथ हुआ है। उनमे सौन्दर्य की वृद्धि हुई है। इन गीतो मे अलकार अर्थ-बोध कराने और भाव-गाम्भीर्य मे सहायक सिद्ध हुए है।

---

1 बिहारी बिहारी सतसई।

२. काव्यशोभाकरान्धर्मानलकारान्प्रचक्षते—काव्यादर्श।

३ अगीकरोति य काव्य शब्दार्थावनलकृती।
असौ न मन्यते कस्मादनुष्णमनलकृती॥ 'जयदेव'

लोक-गीतो मे अलकार का प्राय अभाव ही रहता है। त्रिपाठी जी ने तो कहा है कि इनमे अलकार नही, केवल रस है। इसका आशय यह है कि गीतो मे अलकार लाने का प्रयत्न नही किया जाता। परन्तु हमारे साधारण वार्तालाप मे भी कभी-कभी किमी अलकार का प्रयोग हो जाता है तो गीतो मे कही कुछ अलकार आ भी जावें तो इसमे आश्चर्य की वात ही क्या है?

कनउजी लोकगीतो मे अलकारो का विशेप विधान नही पाया जाता, परन्तु कही-कही भावो के स्पष्टीकरण के लिए कुछ शब्दालकार और अर्थालकार दोनो ही आ गए है। शब्दालकारो मे अनुप्रास की ही अधिकता है और अर्थालकारो मे उपमा की। कही-कही रूपक और उत्प्रेक्षा अलकार भी मिल जाते हैं।

अनुप्रास—इन गीतो मे छेकानुप्रास और वृत्यनुप्रास ही पाये जाते हैं। नीचे कुछ प्रस्तुत उदाहरण दिए जाते हैं—

काहे की सिल को मिलौटा तो काहे को लोढा ललना।

कहा चढि राजा रामचन्द्र आए कहा चढि लछिमन भाई।

पानी पियत राजा हिरना मारो हिरनी दए असराफ

प्रथम पक्ति मे स और ल, द्वितीय पक्ति मे र और तृतीय पक्ति मे प की समानता केवल एक वार हुई है। अत इन तीनो मे छेकानुप्रास[1] हुआ। दूसरा उदाहरण देखिए—

विनरे वाप की वेटी न कहावै को दूढै वर को तिलका चढावै।

फूल को वेला सवाव सेर सतुआ ऊपर गुड की वटी

---

1 वर्न अनेक कि एक की जहं सरि एकै वार।

माया अँगारू जनि कहिओ भइआ पेट मारि-मरि जायँ।

प्रथम पक्ति मे ब, द्वितीय मे स और तृतीय मे म की समानता दो वार हुई है। अत तीनो मे वृत्यनुप्रास[1] हुआ।

उपमा—लोक-गीतो मे प्रयुक्त उपमा की विशेषता यह है कि इसमे एक विचित्र प्रकार की सादगी है, नवीनता और मौलिकता है, जो कृत्रिम कविताओ मे देखने को नही मिलती।[2] शिष्ट-काव्य मे अधिकाश उपमाएँ परम्परा-युक्त होने के कारण बासी सी प्रतीत होती है, परन्तु इन गीतो की उपमाएँ नवीनता लिए हुए है।

एक गीत मे भाई बहन की दीन-अवस्था को देखकर आया है और माता से कह रहा है —

वहिनी के कपडा अइसे बने है जइसे चौका को पूतना जी।
वहिनी के केस अइसे बने है जैसे कुकुर की पूछ जी।
वहिनी के अँसुआ अइसे गिरत है जइसे मघा के बूंद जी।
वहिनी की पीठी माया अइसी बनी है जइसे धोबो को पाट जी।

बहन के कपडो की चौके के 'पुतने' से उपमा दी है। इससे यह अर्थ व्यजित होता है कि उसके पास एक ही धोती है जिसे वह लगातार पहनती है और इसी कारण 'पुतने' के समान मैली हो गई है। केशो की उपमा कुत्ते की पूँछ से दी गई है जिसमे प्रतीत होता है कि केशो मे न तो तेल पडता है और न तो वे काढे ही जाते है। आँसुओ की मघा के बूंदो से उपमा दी गई है क्योकि उसे घोर-कष्ट है और उस कष्ट के कारण बहुत अधिक रोने से बडे-बडे आंसुओ का गिरना स्वाभाविक ही है। पीठ की उपमा धोवी के पाटे से यह अभिप्राय है कि

---

१ वर्न अनेक कि एक की जह सरि कइयो वार।
२ डा० कृष्णदेव उपाध्याय-भोजपुरी लोक-साहित्य का अध्ययन पृष्ठ ४०८।

उसको बहुत ही अधिक पीटा जाता है। यह सारे 'अप्रस्तुत'
सुपरिचित जीवन से लिए गए हैं। उपमा की सहायता से
दुःख की पूर्ण व्यंजना कर दी गई है। यदि अलंकारों का प्रयोग न
तो सम्भवतः इतना मार्मिक चित्रण न हो पाता। इसके अतिरि
उपमाएँ बड़ी ही अपूर्व, अनूठी और मौलिक हैं।

उत्प्रेक्षा——कुछ उत्प्रेक्षाएँ भी गीतों में मिल जाती हैं —

राम के माथे झलरिआ बहुत नीकी लागैं।
मानो कमल को फूल भँवर गुन-गुन करैं॥

इसमें राम की अलकों का वर्णन किया गया है। राम के मस्त
पर अलकें ऐसी सुन्दर लगती हैं मानो कमल के फूल पर भ्रमर गुंजा
करता हो। यहाँ उक्त विषया-वस्तूत्प्रेक्षा हुई।

रूपक——कनउजी लोक-गीतों में रूपक अलंकार भी पाया जाता है।
कहीं-कहीं सांग रूपक के उदाहरण भी मिल जाते हैं —

साच सुकीरति गगरी पिरेम की रसरी हो।
सजना पनियाँ भरौ झकझोरि माँग भरि सेंदुर हो।

स्त्री कहती है कि सत्य और सुकीर्तिरूपी घड़ा है। प्रेम-रूपी रस्सी
से माँग में सिंदूर लगाकर पानी भरूँगी। अतः यहाँ सांग रूपक हुआ।

श्लेष——सीधी-सादी ग्रामीण जनता सामान्यतया दो अर्थों के शब्दों
का प्रयोग नहीं करती और इसीलिए लोक-गीतों में श्लेष का अभाव
रहता है। परन्तु साधु-सन्तों के सिद्धान्तों से प्रभावित होकर ईश्वर
सम्बन्धी भावना की अभिव्यक्ति जहाँ पर हुई है वहाँ पर कहीं-कहीं
श्लेष का प्रयोग हुआ है। कबीरपंथी चमारों के गीतों में श्लेष अलंकार
मिलता है।

अलंकार-विधान के इस विवेचन से हमें ज्ञात होता है कि कनउजी
गीतों में उपमा के बड़े सुन्दर उदाहरण मिलते हैं। अन्य अलंकारों का
बहुत कम प्रयोग हुआ है।

प्रकृति-चित्रण

साहित्य मे प्रकृति का वर्णन दो रूपो मे मिलता है —

१—आलम्ब-विभाव के रूप मे ।

२—उद्दीपन-विभाव के रूप मे ।

सस्कृत-साहित्य मे तो प्रकृति का आलम्बन और उद्दीपन दोनो रूपो मे वर्णन किया गया है पर हिन्दी कवियो ने विशेषकर प्रकृति को नायक और नायिका के भावो को उद्दीप्न करते हुए दिखाया है। पति के वियोग मे पत्नी को चन्द्रिका मे उष्णता और कोयल की मधुर वाणी मे कटुता प्रतीत होती है। कनउजी लोक-गीतो मे भी प्रकति का उद्दीपन रूप ही मिलना है। एक विरहिणी को रात्रि मे पपीहे की पी-पी सुनकर अपने पति की याद आ जाती है जिसके कारण वह सो नही पाती। वह क्रुद्ध होकर कहती है कि —

जाय डारो पपिहरे मारि सो जाने मोरी नीदा हरी।
वागा मे वोलो वगीचा मे वोलो मालिनियाँ पै बौलो है वोल्न
सो जाने मोरी नीदा हरी।

लोक का शरीर और मन ग्रामो मे वसता है। ये लोग हरे-भरे खेतो मे काम करते हैं। आम और नीम के वृक्षो के नीचे वैठकर खेत की रखवाली करते हैं। तेल के लिए महुआ के गुलैदें इकट्ठे करते है। घर के आँगन मे वोई गई जम्हिरिया का लहराना उन्हे आनन्द देता है। कही आधी रात को फूलने वाला वेला का फूल आँगन के वातावरण को मादक वनाता है तो कही महुआ, चमेली, गुलाव आदि के फूल देवताओ पर चढाने के लिए खिले दिखाई पडते है। तुलसी का पौदा तो ग्रामीणो का चिर-साथी ही है। इन वनस्पतियो के अनिरिक्त पक्षी भी अपने कलरव से ग्रामीणो का कुछ कम मनोरजन नही करते। मोर सावन के वादलो को देखकर नाच उठते है तो कोयल कुह-कुहू का मधुर शब्द करती है। कही मुंडेर पर वैठा कौआ कांव-कांव करता हुआ प्रिय के आगमन की

सूचना देता है। अत हम देखते है कि लोक-गीतो मे प्रकृति-वर्णन इसी रूप मे हुआ है। इनमे किसी प्राकृतिक-दृश्य का सागोपाग वर्णन नही मिलता, अपितु साधारण उल्लेखमात्र ही होता है। भिन्न भिन्न प्रसगो मे विभिन्न पुष्पो, फलो, वृक्षो, पक्षियो, नदियो तथा ऋतुओ का नामोल्लेख मात्र हुआ है, विस्तृत वर्णन का तो नितान्त ही अभाव है।

कनउजी-गीतो मे न तो बर्फ मे लदी हुई पर्वतो की चोटियो और न गिरिगुहा से निकलती हुई नदी के ही दृश्य दिखाई पडते है। इसका कारण इस प्रदेश मे पर्वतो का अभाव होना ही है। जो ग्रामीण अपने क्षेत्र को छोडकर कभी वाहर नही जाता वह पर्वत और उसके दृश्यो का वर्णन करे भी कैसे ? अत एक महान् विभूति पवन-वर्णन का इन गीतो में अभाव है। फिर भी वृक्ष, पक्षी, पुष्प, वायु आदि का लोक-कवि के प्रकृति-प्रेम का पर्याप्त प्रमाण है।

इन गीतो में कही तो किसी आम, नीम या महुआ के नीचे खडी कोई स्त्री पति की प्रतीक्षा करती है, कही थका हुआ किसान किसी पेड की छाया में सोता है, कही आम का बौरना और महुओ का टपकना विर-हिणी के लिए उद्दीपन का काम करता है और कही उसका हृदय पीपल के पत्ते की तरह कांपता है। कही पर वर्णन मिलता है कि नदी के किनारे सुन्दर फुलवारी लगी है। वहां कृष्णजी अपनी गायो को चरा रहे है। राधा कृष्ण को रोकती है कि तुम अपनी गायो को यहाँ से हटा ले जाओ नही तो वे गायें आम, अमरूद और जामुन के पेड खा डालेंगी। लोक-गीतो के ससार मे लवग का वगीचा भी घरके पास लगाया जाता है और स्त्रियां अपने पिता से प्रार्थना करती है कि वे लौंग के वृक्ष को कटवा कर पलँग बनवा दे जिससे कि वे अपने स्वामी के साथ उस सुगधित पलग पर सो सकें।

पुष्पो के सम्बन्ध में उल्लेख मिलता है कि विना कमल के तालाब की शोभा नही होती। वेले के फूल के गजरे[1] को किसके गले में डाला

1 वेला फूला आधीरात मे गजरा काक गरे डारों।

जाय ? एक स्त्री को इसकी बडी चिन्ता है। चमेली, नौरगिया, कचनार, दुपहरिया, कडैल आदि पुष्पो के नाम भी किसी न किसी प्रसग मे आए हैं।

किसी गीत में कोयल कुहू-कुहू करके विरहाग्नि प्रज्ज्वलित करती है, किसी में कौआ पति के आगमन का सदेश देता है और पति के लिए विरहिणी का पत्र भी ले जाता है। कोई स्त्री परदेश जाते हुए पति को वन की कोयल बनकर सन्देश सुनाने का वचन देती है। मोर, हस, सारस, मैना और तोते के भी प्रसग आए है।

गीतो मे 'पुरवइया' हवा का भी प्रचुर-मात्रा में वर्णन मिलता है। 'पुरवइया' के वहने से स्त्री सो जाती है और बेचारी को पति छोडकर चला जाता है।
सावन और बारहमासो मे प्रकृति का बडा ही सुन्दर वर्णन मिलता है। इन गीतो मे प्रकृति के उपादानो का केवल नामोल्लेख ही हुआ है। अत उद्धरण देने की आवश्यकता नही समझी गई। इसमे वर्णित वस्तुओ को परिशिष्ट मे देखा जा सकता है।

कनउजी लोक-गीतों मे तुक और लय—

तुक के प्रयोग से कविता के स्मरण रखने मे सहायता मिलती है और वह श्रुति-सुखद भी हो जाती है। इसलिए प्राचीन हिन्दी कवियो ने तुकान्त कविता ही लिखी है। तुक कविता का आवश्यक अग बन गया है और इसके होने मे कविता मे सौन्दर्य-वृद्धि अवश्य हो जाती है। आधुनिक कविता अतुकान्त रूप मे भी हुई है, किन्तु मुख्य प्रवृत्ति तुकान्त कविता की ओर अब भी है।

कनउजी लोक-गीत तुकान्त होते है परन्तु यह नही कहा जा सकता कि इनमे तुक के नियमो का पूर्णरूप से निर्वाह किया जाता है। कभी-कभी एक ही गीत के कुछ स्थलो मे तो तुक रहती है और कुछ मे उसका अभाव होता है निम्नांकित गीत अतुकान्त रूप का उदाहरण है—

जो तुम माया मेरी वरम की हुइऔ साउन 'वीरन पठइओ'।
'बाप तुम्हारे बेटी देस के राजा ओऊ न वसत परदेस।
जेठो विरन बेटी घनिआं को लोभी नित उठि जइए ससुरारि।
लहुरो विरन बेटी निपट अनारी नदि नारे देखि डिराय'।

ऊपर चारो पक्तियो मे तुक नही है, परन्तु इसी गीत मे आगे चलकर तुक का निर्वाह भी किया गया है —

माया अगारू जनि कहिओ विरना पेट मारि मरि जायँ।
भउजी अगारू जनि कहिओ विरना ओऊ नइहर कहँ जाँय॥
बहिनी अगारू जनि कहिओ विरना ओऊ ससुरे नहि जायँ।

इन तीनो पक्तियो मे केवल तुक ही नही मिलता, वरन् उसी शब्द तक को दुहरा दिया गया है। बारहमासो मे तुक का अच्छा निर्वाह हुआ है। बारहमासा के कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं जिसमे तुक की छटा देखने को मिलती है —

इक तौ मोरी वारी उमिरिया दूजे वलम परदेस।
तीजे मेघ झिमझिम वरसैं साउन अधिक अदेस॥
..   ....
चैत मास मैं फूली चमेली भँउरा रहे लुभाय।
जावो न भँउरा लोटौ पौटौ जिअरा की तपन वुझाय॥

कनउजी-गीतो मे प्राय 'हो रामा' है रे, जी हो, रे आदि प्राय. प्रत्येक पक्ति के अन्त मे पाये जाते है। ये टेक पद है जो तुक का काम करते है। इनका गीतो के अर्थ से कोई सम्वन्ध नही रहता। कही कही पूरी पक्ति ही दोहरा दी जाती है —

ऊचो चउतरा चौखुटो हो जहाँ वेटी खेलन जायँ।
हो राधा भामिन वनवारी को।
खेलत-खेलत भोर भओ है वावुल के दरवार।
हो राधा भामिन वनवारी को।

ये तुक नितात स्वाभाविक है। इनके जुटाने के लिए किसी प्रकार का प्रयास नही किया गया है।

वस्तुन लय ही इन गीतो का मोहक गुण है। जब स्त्रियाँ सामूहिक रूप से किसी गीन को लय-पूर्वक गाने लगती है तो वे लय के अनुसार ह्रस्व को दीर्घ और दीर्घ को ह्रस्व कर लेती हैं। जहाँ किसी पक्ति मे कुछ अक्षर कम होते है वहाँ कुछ अक्षरो को जोडकर पूरा कर लेती है। उनके मधुर कठो मे गीतो का लय-युक्त उच्चारण उस गीत मे रस-सचार कर देता है। शुष्क से शुष्क गीतो मे लय के द्वारा स्त्रियाँ रस की गागर उँडेल देती है। यहाँ तो केवल इतना ही बतलाया जा सकता है कि गीतो मैं लय का बहुत अधिक महत्व है। लय की अनुभूति तो सुनने पर ही हो सकती है। गीतो मे लय को विशेषता के कारण ही प० रामनरेश त्रिपाठी ने कहा है कि—'इनमे छन्द नही केवल लय है'[1]।

कनउजी लोक-गीतो में छन्द-विधान—

लोक-गीतो की चर्चा करते हुए प० रामनरेश त्रिपाठी ने कहा है कि इनमे छन्द नही केवल लय है। उनके इस वाक्य का यह अर्थ नहीं लगाया जा सकता कि लोक-गीतो मे छन्दो का नितान्त अभाव होता है। वस्तुत बात यह है कि लोक-गीतो की रचना अशिक्षित तथा छन्द-शास्त्र से अनभिज्ञ लोगो के द्वारा होती है और इसीकारण इनमे मात्रा और गणो के नियमो का कडाई से पालन नही किया जाता। त्रिपाठी जी के कथन का केवल यही आशय है कि लोक-गीतो मे छन्दो पर आग्रह नही किया जाता। छन्द होता अवश्य है पर उसकी कमी को लय पूरा कर देती है।

'सोहर' का पीछे वर्णन किया जा चुका है। यह भी लोक-गीतो का एक छन्द है। साहित्यिक सोहरो की तुलसी आदि कवियो ने रचना की

---

1 प० रामनरेश त्रिपाठी-कविताकौमुदी (ग्राम-गीत) पृष्ठ ६६।

है और उनमे तुक मिलाकर प्रत्येक पद मे मात्राएँ भी बराबर रखी गई है । इस प्रकार यह 'मोहर' पिंगल-शास्त्र के नियमो मे बधे हुए है । परन्तु लोक-गीतो के मोहरो मे मात्राओ और तुक के नियमो की लोक-कवि ने अवहेलना कर दी है ।

दूसरा छन्द 'बिरहा' है । डा० ग्रियर्सन ने 'बिरहा' का छन्द विधान बतलाते हुए कहा है कि पढते समय ये बिरहे शायद ही मिलें जब तक हम यह याद न रखें कि बहुत से दीर्घ स्वर पढने समय लघु कर लिए जायँ । इनमे कभी-कभी कुछ ऐसे भी व्यर्थ के शब्द होते हैं जो छन्द के अंगीभूत नही होते [१]।

सभी लोक-गीतो के विषय मे कहा जा सकता है कि उनमें कोई न कोई छन्द अवश्य होता है । छन्द का अर्थ होता है बंधन । बिना बंधन के कविता (लोक-गीत भी कविता ही है) की रचना हो ही नही सकती । डा० ग्रियर्सन का विचार है कि इन लोक-गीतो की विशेषता है कि पिंगल शास्त्र के नियम इनमे बडे शिथिल हैं ।[२] इन उल्लेखो से स्पष्ट रूप से सिद्ध हो जाता है कि लोक-गीतो में छन्द होते अवश्य है परन्तु इनमें पिंगल के नियमो के पालन मे बडी ही शिथिलता होती है और यही कारण है कि लोक-गीतो को पढते समय जान पडता है कि इनमें यति-भंग, गति-भंग, न्यून-पदत्व और अधिकपदत्व आदि अनेको दोष हैं । पर गाने से लय के द्वारा इन सारे दोषो का परिहार हो जाता है ।

लोग-गीतों में भावव्यंजना और छन्द विधान का सामंजस्य—

संस्कृत और हिन्दी साहित्य में विभिन्न भावो की व्यंजना के लिए विभिन्न छन्दो का प्रयोग किया गया है । प्रवास के वर्णन के लिए मंदा-

१ जर्नल आफ रायल एशियाटिक सोसाइटी १८८४ ।

२. जर्नल आफ रायल एसियाटिक सोसाइटी १८८४

क्रान्ता उपयुक्त छन्द कहा गया है।[1] इसी प्रकार विप्रलम्भ-शृंगार के लिए सवैया छन्द समुचित माना गया है। पर जब हम लोक-गीतो का अवलोकन करते हैं तो हमे ज्ञात होता है कि सामान्यतया भावो के अनुसार ही छन्द प्रयुक्त नही होते। सोहर-छन्द को ही ले लीजिए इसमें करुण, उत्साह, रति आदि सभी भावो को अभिव्यक्ति की गई है। परन्तु कुछ ऐसे छन्द भी हैं जिनमे भाव-व्यजना और छन्द-विधान का सामजस्य अवश्य है।

जहाँ जीवन की आनन्दात्मक अनुभूति जैसे हर्ष, उत्साह और सभोग का वर्णन होता है वहाँ 'नकटा' और 'झूमर' छद का प्रयोग होता है। झूमर का प्रत्येक चरण छोटा होता है और उसकी लय इतनी सुन्दर होती है कि उनके गाने से ही आनन्द की अनुभूति होने लगती है। इस छन्द मे एक स्त्री की उक्ति सुनिए —

टोपी की झलक दिखाव रे।
टोपी वाले समरिया।
हमरे ससुर को कागज को बगला
हवा चलै उडि जाय रे।
टोपी वाले समरिया।
हमरे सजन को सोने को बगला।
झपकी तो लेय लुटि जाय रे।
टोपी वाले समरिया।

मार्मिक भावो की अभिव्यक्ति के लिए लम्बे-लम्बे छन्दो की आवश्यकता होती है। अत विप्रलम्भ और करुण रस के वर्णन के लिए चक्की और निरवाही के लम्बे गीत प्रयुक्त हुए है।

जहाँ वीरता और साहस के कार्यों का वर्णन करना होता है वहाँ आल्हा-छन्द का प्रयोग किया जाता है। इस छन्द मे गाने का स्वर

---

१ प्रावृट् प्रवास कथने मदाक्रान्ता विशिष्यते—क्षेमेन्द्र।

इतना उच्च और ओजपूर्ण होता है कि वीर-रस इसमे चुवा सा पड़ता है। एक उदाहरण देखिए —

दगी सलामी दोनों दलमें। धुंअना रहो सरग मड़राय।
तोपैं छुटि गईं दोनों दल में। रनमें हान लगे घमसान॥
अरर अरर अर गोला छूटैं। कड़-कड़कैं अगिनियाँ बान॥
रिमझिम रिमझिम गोली बरसैं। सर सर परैं तीर की मार॥

इस विवेचन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि कनउजी लोक-गीतो में छन्द और भावो के सामजस्य का भी लोक-कवियों ने ध्यान रखा है।

कनउजी लोक-गीतों की भाषा—

लोकगीतो के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए पीछे कहा जा चुका है कि इनका भाषा की दृष्टि से भी बहुत महत्त्व होता है। कनउजी लोक-गीतो के लिये यह बात पूर्णरूप से लागू होता है। इसमे अनेक शब्द गीतो में आते है जिनसे आज की पारिभाषिक शब्दावली के लिये सहायता ली जा सकती है। इनके अतिरिक्त इन गीतो में ऐसे अनेक शब्द है जिनका सीधा सम्बन्ध वैदिक-संस्कृति से है। ऐसे शब्द भाषा-विज्ञान के अध्ययन के लिये बहुत ही महत्वपूर्ण है। कुछ शब्दो के उदाहरण दिये जाते है —

ओस भरी पाय की पनहिया रकत भरी तरवारि।

इस पंक्ति के 'पनहिया' शब्द का संस्कृत के 'उपानह' शब्द से विकास हुआ है। दूसरा शब्द 'रकत' है। संस्कृत के रक्त शब्द से स्वर-भक्ति के सिद्धान्त से कनउजी मे 'रकत' हो गया है। खड़ी-बोली मे न तो 'पनहियाँ' और न 'रकत' शब्द मिलता है। इनके लिये या तो संस्कृत के तत्सम शब्दो का प्रयोग किया जाता है या विदेशी शब्दो का सहारा लिया जाता है। एक और पंक्ति देखिये —

इक तो मोरी बारी वयसिया दूजे बलम परदेस।

इसमे 'वयसिया' शब्द संस्कृत के 'वयस' शब्द का विकसित रूप है। साहित्यिक-हिन्दी में वय का प्रयोग होता है अथवा विदेशी शब्द उम्र का। पर कनउजी ने मूल शब्द से अब तक सम्बन्ध नही छोडा है। यहाँ उदाहरण के लिये थोडे से ही शब्द दिये गये हैं। वस्तुत कनउजी लोक-गीतो में ऐसे शब्दो की अशेष राशि है जिनका उपयोग शिष्ट साहित्यिक हिन्दी की एक बहुत बडी कमी को पूरा कर सकता है।

संस्कृत के तद्भव रूपो के अतिरिक्त इन गीतो मे विदेशी भाषाओ के शब्द भी मिल जाते हैं। इसका कारण यह है कि सैंकडो वर्षों तक विदेशी लोगो का हमारे देश पर शासन रहा और साथ ही हम पर विदेशी भाषा भी लादी गई। १० वर्ष के पहले तक कन्नौज मे अदालती भाषा उर्दू रही जिसमे कि अधिकाश शब्द फारसी के होते थे। यहाँ के गीतो मे जो फारसी-अरबी शब्द आ गये है उनको कुछ उदाहरण दिये जाते है—

१ मोरी मइआ बडी दिलदार कदम ते उतरि परी।
२ दगाबाज तोरी बतियाँ ना मानो रे।
३ जब ते कलम धरी कागत पै दस के बीस करे।

अंग्रेजी शब्दो के भी कुछ प्रयोग हमे देखने को मिल जाते है परन्तु उनकी संख्या बहुत कम है नीचे एक उदाहरण दिया जाता है—

कहाँ ते आए डिपटी कलट्टर कहाँ ते आई बडी मेम

कनउजी लोक-गीतो की भाषा के शब्दसमूह पर विचार करने के उपरान्त हम भाषा की भावभिव्यजना-शक्ति पर भी विचार करेंगे। इन गीतो मे सजीव और मार्मिक शब्दावली पाई जाती है। भावो के अनुकूल ही शब्दो का प्रयोग होता है। जहाँ-वीर-रस का वर्णन होता है वहा भाषा अपेक्षाकृत कुछ ओजमयी तथा संयुक्त शब्दो वाली होती है। ट, ठ ढ, घ आदि महाप्राण ध्वनियो का प्राधान्य हो जाता है। इस दृष्टि से इस गीत की भाषा देखिये—

कड कड कड कड नेगा बाजै जूझै वीर महोवे क्यार।
कायर भाजे समर भुम्मि तें अपने छोडि छोडि हथियार॥

करुणा-भाव को व्यक्त करने के लिये तदनुकूल शब्दो का प्रयोग किया गया है। इनमें महाप्राण ध्वनियो का सर्वथा अभाव रहता है। अनुस्वार युक्त शब्दो के कारण बडा ही लालित्य आ जाता है। एक गीत में कोमल तथा अनुस्वार-युक्त वर्णों की छटा देखिये—

नानी नानी बुँदियन मेह् बरसि मेह बरसि गए
अगना मैं हुइ गओ कीच।
अब जिन निकरौ अगना मैं विरना पाय भरैं दोनौ कीच।
पाय कौ लियैं विरना चनन खडाऊं हाँथ को छडिया मगाय।

न, म, प, र तथा अनुस्वार-युक्त वर्णों के कारण भाषा बडी ही ललित एवं मधुर हो गई है। लोक गीत-कार ने चन्दन को चनन करके कोमलता की सृष्टि कर दी है।

युद्ध के गीतो मे अरर अरर अर, कड कड कड कड, तड तड तड आदि शब्दो के प्रयोग मे भाषा की अनुरणनात्मक शैली व्यवहार मे लाई जाती है।

कुछ विशिष्ट शब्द—गीतो मे कुछ ऐसे शब्द भी आए हैं जिनमे भाव तथा अर्थ घनीभूत हो जाते हैं। डाहत' शब्द का प्रयोग देखिए—

गए पिया परदेस हमैं काए 'डाहत' हो

अर्थात् परदेश मे जाकर हे प्रियतम मुझे तुम क्यो दुख दे रहे हो? साहित्यिक हिन्दी मे 'डाहना' के लिए जलाना, दुख देना आदि का प्रयोग होता है परन्तु 'डाहना' का भाव जलाने और दुख देने से कही अधिक व्यापक और गम्भीर है। जलाने मे नीरसता प्रकट होती है परन्तु डाहना मे क्रोध, प्रतिवाद और विक्षोभ के साथ उलाहने का भी भाव है। एक दूसरा शब्द विसूरना है। इसमे बडी ही भाव-व्यजना

होती है। पीछे सोहर गीतो मे हिरनी की करुणा वाले गोन मे इस शब्द का प्रयोग हुआ है —

तेहि तर ठाडी हिरनी 'बिसूरइ' हो

खजडी के शब्द को सुनकर हिरनी को अपने पति की स्मृति हो आती है और पलाश-वृक्ष के नीचे खडी-खडी वह बिसूरती है। इस एक शब्द 'विसूरना' मे चिन्ता, दु ख और करुणा तीनो भाव भरे हैं। इसी प्रकार अनेक शब्द हैं जिनमे भावो की सरिता उमड पडती है। कलेवर बढ जाने के भय से अब और शब्द नही दिए जा रहे हैं।

भाषा मे भावाभिव्यजन के लिए मुहावरे तथा प्रतीक उपकरण का काम करते हैं अत इनका भी यहा उल्लेख किया गया है।

मुहावरे—भाषा मे लक्षणा और व्यजना लाने के लिए मुहावरे भी बहुत महत्व रखते हैं। यह लोक-अनुभव के निचोड होते हैं। इनमे न केवल अर्थ-गौरव ही आता है वरन् अनुपम सौन्दर्य भी आ जाता है। कनउजी लोक-गीतो मे प्रयुक्त कुछ मुहावरो को यहाँ दिया जाता है। शिष्ट हिन्दी मे 'सर माथे रखना' मुहावरा सम्मान के अर्थ मे प्रयुक्त होता है। कनउजी मे इसी अर्थ के लिए 'पगडी की पेंच मे रखना' मुहावरे का प्रयोग हुआ है। —

रानी रखिवो पगडिया की पेंच नैनवाँ के भीतर हो

पगडी की पच मे रखने का लाक्षणिक अर्थ सम्मान करना हुआ। इस गीत का प्रसग यह है कि एक प्रेमी प्रेमिका से प्रेम-याचना करता है और उसके सम्मान का भी आश्वासन देता है। अन्यत्र एक मुहावरा "चुल्लू भर पानी मे डूब मरना' का प्रयोग हुआ है —

जो तुम्ह लाज होय भइया बहिन की
चुरुआ भरि पानी मे बूडि मरि जाव।

चुल्लू भर पानी में डूब मरने का लाक्षणिक अर्थ हुआ लज्जा से दु ख

और पश्चात्ताप प्रकट करने का। ऐसे ही अनेक मुहावरों का कनउजी लोक-गीतों में प्रयोग हुआ है।

प्रतीक—प्रत्येक साहित्य में प्रतीकों का प्रयोग होता है। कबीर, सूर, तुलसी, प्रसाद, और निराला ने भी प्रतीकों को अपने काव्य में स्थान दिया है। इस दृष्टि से कनउजी लोक गीत-कार भी किसी से पीछे नहीं हैं। उन्होंने अपने गीतों में अनेक प्रतीकों को स्थान दिया है। कनउजी गीतों में आत्मा के लिए 'पछी' तथा शरीर के लिए 'पिजरा' प्रतीक प्रयुक्त हुआ है—

वडोई जतन करि 'पिजरा' वनाओ
तामें घने-घने तार लगाए जी
तुला के कागन पै पिजरा मढाय दओ
मेरो 'पछी' ना कहूँ उडि जाय जी।

अर्थात् वडा ही यत्न करके शरीर रूपी पिजडा वनाया, जिससे पक्षी रूपी आत्मा कही उड न जावे।

जीव के लिए हस का भी व्यापक प्रयोग है—

उडि जाय हस अकेला छिय जगदरसन को मेला

मृत्यु होने पर जीव रूपी हस ससार को छोडकर अपरलोक को चला जाता है।

प्रेमी के लिए भ्रमर प्रतीक भी आता है—

भूलो फिरै भँमर वाग नहि पावै।

एक प्रेमी अपनी प्रेमिका की खोज कर रहा है पर उसे कही पाता नहीं है। प्रेमी के लिए भ्रमर प्रतीक के कारण प्रेमिका के घर का वाग का प्रतीक वना दिया गया है क्योंकि भ्रमर को जैसे उद्यान में आनन्द प्राप्त होता है वैसे ही प्रेमी को अपनी प्रेमिका के मिलन पर। इस प्रकार हम देखते है कि प्रतीकों द्वारा लोक-गीतों में कवित्व भरने का सफल प्रयास किया गया है।

लोक-गीतों में समान भाव-धारा

प्रत्येक देश के काव्य-शास्त्रियो ने अपने-अपने देश के काव्य को नियमो और रूढियो मे बांधने का प्रयत्न किया है और किसी सीमा तक वे सफल भी हुए है। इसी कारण जब हम भावो की दृष्टि से एक देश के साहित्य को दूसरे से मिलाते है तो उनमे पर्याप्त मात्रा मे हमे अन्तर दिखाई देता है। किन्तु लोक-गीतो के लिए यह बात घटित नही होती। चूंकि मानव-हृदय सर्वत्र एक ही है और लोक-गीतो मे उस की स्वाभाविक भावाभिव्यक्ति के लिए स्वतत्रता होती है। अत उनमे यदि समान भाव-धारा हो तो आश्चर्य ही क्या है ?

विवाह ऐसा सस्कार है जिसका महत्व, सब देशो मे माना जाता है। अत इसी सस्कार के गीतो को लेकर हम उनकी तुलना कुछ विदेशी लोक-गीतो से करेंगे। विवाह गीतो मे कन्या की स्वतन्त्रता का उल्लेख होता है। एक कनउजी लोक-गीत मे माता-पिता आए हुए काले वर को लौटा देना चाहते है परन्तु कन्या आग्रह करती है कि मैं उसी वर से विवाह करूँगी नही तो विषपान कर लूंगी —

छज्जा ऊपर लाडो बोली खाय जहर मरि जाय
भउँरी डारैं येही वर से।

इस गीत मे कन्या को वर पसन्द आ गया है तभी तो वह इतना आग्रह कर रही है। इस प्रकार हम देखते है कि कन्या को वर चुनने की स्वतन्त्रता थी। एक ग्रीक लोक-गीत मे पिता कहता है कि "हे बेटी ! इस व्यक्ति से विवाह कर लो, देखो यह हैट पहँनता है।" बेटी कहती है-"मुझे तो स्वतन्त्र विचारो वाला पति चाहिए। हैट के लिए मै इससे विवाह नही कर सकती।" पिता कहता है—बेटी ! इसके साथ विवाह करलो। इसके पास बहुत धन है।" बेटी उत्तर देती है "मूंछ वाले

के अतिरिक्त मैं और किसी को अपना पति नहीं बना सकती" ।[1] इस गीत मे कन्या अपने वर के चुनाव के लिए पूर्ण स्वतन्त्र दिखलाई गई है। एक राजस्थानी गीत मे भी कन्या अपने पिता से कहती है कि मेरे लिए वर ढूंढने के लिए इन बातो का ध्यान रखना —

वावाजी देस देना परदेस दीजा
म्हारी जोड़ी को वर हेर जो
हँस खेल ये वावाजी री प्यारी बनड़ी
हेर्‌यो मे फूल गुलवि को
कालो मत हेरा बावा जी अगपर्मीजै
लाम्बो मत हेरो वावा जी सागर चढै
ओछो मत हेरो वावा वन्यू वतावे
ऐसे वर हेरो
कासी को वासी[2]

इस राजस्थानी-गीत से अनुमान लगाया जा सकता है कि कन्या इन तमाम शर्तों को इस लिए लगाती है क्योंकि किसी पुरुष से उसका प्रेम है और अप्रत्यक्ष रूप से उसी के बारे में वह पिता से कहती है। यदि

---

१. ग्रीक गीत का अंग्रेजी पद्यानुवाद —

"Take him my daughter,
For he bears a hat"
"I, a frank husband won't
Marry for that"
"Take him my daughter,
His plenty of cash,"
"I wont have a husband,
Without a moustach."

२. पारीक, राजस्थानी लोकगीत भाग १ पृष्ठ १६०-६१ ।

चन्दा मामा रावे
ज़ा विल्ली राभे
कण्ड् कि रावे
कोटि पुलू तेवे
वडि मीदा रावे
वन्ति पुलू ते वे

अर्थात् हे चाँद मामा आओ, गाडी पर चढ कर आओ, फूल तोड कर लाओ और पीले पीले फूल देकर चले जाओ।

उडिया मे लोरियो का विल्लाखेला गीत कहते है। एक गीत में चन्द्रमा का उपहास किया गया है —

जन्हा मामू रे! जन्हा मामू
मो कथा ही सुनो
विल र-माछ चील खाई गला
खईची खडिए वुणो।

अर्थात् हे चाँद मामा! मेरी बात सुनो। देत की मछली को चील खा गई तुम जाल तैयार करो।

बगाली-माता शिशु को सुलाती हुई कहती है —

सकले देवतार आपु रे धन
नित्य कालेर तुई पुरातन
मत्रार छिली अमारहोली कैमोने।

अर्थात् तू सब देवताओ का प्यारा धन है नित्य काल की सबसे पुरानी वस्तु तू ही है। तू जो सबका था केवल मेरा ही कैसे बन गया?

उधर तेलगु माता कहती है कि —

इन्तन्तादीपम्मु इल्लल्ला वेलगु
ईस्वरडी चन्द मामा जेगमल्ला वेलगु

माडत्ता दीगम्मु जेगमल्ला वेलगु
इम्नन्ना मा अव्वाई माकटला वेगु

अर्थात् छोटा सा दीपक सारे घर को प्रकाशित कर देता है। चन्दा मामा सारे जगत को प्रकाशित कर देता है, छोटा सा दीपक सारे राज-महल को प्रकाशित कर देता है। छोटा सा मेरा बच्चा मेरी आँखों को प्रकाशित कर देता है।

एक कनउजी गीत में कन्या अपने पिता से कहती है कि —

बाबुल हम तो तुम्हारी चिरई चुनत-बिनत उडि जाय।

इसी से मिलती हुई पंजाबी गीत की एक पंक्ति देखिये —

साड्डा चिड़ियाँ दाचम्बा वे, बाबल असी उड जाना।

एक पंजाबी स्त्री को बहुत गर्व है कि उसके भाई की लाठी काले रंग की है। यह जहाँ पर भी चोट करती है, बादल की तरह गरजती है —

जित्थे वज्जदी बद्धला वाग् गज्जदी
काली डाँग मेरे वीर दी

इसी प्रकार कनउजी बहन का शूर भाई मुगल से लडने को जारहा है और वह उसे भोजन करा रही है —

धीरे धीरे जेमों मेरो वीरना बलइया लेय।
वीरना मुगिल लडइया में ठाडे।
बलइयाँ लेय वीर की।

ऊपर तो सुख दुःख हर्ष और विषाद के गीतों में समानता दिखाई गई है। परन्तु उसके साथ ही साथ हम देखते है कि प्रकृति-वर्णन में भी गीतों में समानता मिलती है। उदाहरण के लिए बेला का फूल लिया जाता है। बेला का फूल जनता का परम प्रिय पुष्प है अत इसका वर्णन सभी स्थानों के गीतों में मिलता है। कनउजी गीत में एक स्त्री

के लिए यह एक बडी समस्या है कि वह बेला के फूल का गजरा किस के गले में डाले ? यदि वह पति के गले मे डालती है तो सौत अप्रसन्न हो जावेगी —

बेला फूलो आधीरात मैं गजरा की के गरे डारों।
जो गजरा मैं सहिबा गरे डारौं सौतिनियां को दुख होय।
मैं गजरा की के गरे डारों।

दूसरी ओर हम देखते हैं कि मैथिली स्त्री को इस बात का गर्व है कि उसके आँगन में बेले की बहार है —

मोरा अगनइया माँ बेला की बहार बा।

गीतो का तुलनात्मक दृष्टि से देखने पर हम इस निष्कर्ष पर पहुचते हैं कि सभी लोक गीतो मे समानाभावधारा प्रवाहित है। एक प्रदेश के कुछ गीत दूसरे प्रदेश से ऐसे मिलते है कि कभी कभी यह हमे आश्चय मे डाल देते हैं और ऐसा जान पडता है कि ये ऐ एक दूसरे के अनुवाद हैं।

परिशिष्ट (क)

कनउजी लोक-गीतो का अब तक कोई भी सग्रह प्रकाशित नही हुआ है। अत इस अभाव की पूर्ति के लिए यहां कुछ चुने हुए कनउजी लोक-गीत दिए जा रहे हैं।

'सोहर'

१

अरि गगा किनारे इक तिरिया सो ठाडी अरज करै हो
'गगा एक लहरि हमैं देव सो जी मैं बूडि मरौं हो '।
'की दुख री तुमैं सास ससुर को की सजना परदेस हो।
की दुख हैं तुमैं माया बाप को की सगे जाये बीर हो'।
'ना दुख री हमैं माया बाप को ना सगे जाये बीर हो।
सासू तौ मोरी बहू ना कहे ना कहे ननदी भउजाइ हो।
मोरे सजनत बाझ कहि टेरैं सो ई दुख डुबिऐं हो'।
'ई दुख डुबिओ जो ई दुख डुबिओ।
तौ लौटि के रनियां घर जाव ललन तुम्हरे हुइहैं हो'।
अरि आई घना बढ़ई के तीर ओ सबद सुनावै हो।
'बढई तुम मेरे देउर जेठ कहो मेरो करि देव रे।
काठ को पूत गढ़ि देव तौ उइ का खिलइऐं हो।'
अरि नहाय धोय के ठाड़ी ओ सुरज मनावै हो।
'सुरज ! काठ पूत जिउ डारो तौ एइ को खिलामैं हो।'
अरि बीते जो नौ दन मास तो होरिल सबद सुनामैं हो।

अब तो सास बहू कहि बोलैं ननद कहै भउजी हो ।
अरि सजना जच्चा कहि बोले तो छतियाँ सिराइ गई हो ।
बाजन लागे बाजे उठन लागे सोहर हो ।
धनि-धनि गंगा तुम्हैं हो मेरे मान बढ़ाय दए हो ।

७

चनन चौक बिन आँगन सूनो कोयल बिन अम्बाडार ।
कोयल बिन अम्बाडार अहो जिया
गाय बछरा बिना सार सूनी बारे लाल बिन गोद सूनी ।
राम लखन बिन सूनी अजुध्या सतन बिन चौपार अहो जिया ।
सीता बिन मेरी सूनी रसुइयाँ राम बिना जिउनार सुनो जिया ।
राम लखन दोनो निकरे सिकारै कौन कौन खेलै सिकार सुनो जिया ।
छइले बिरछ पर खेलैं लरकवा खैंचत राम दुआए अहो जिया ।
झपटि के लछिमन गोद उठाय लए भरि आए नैनन नीर सुनो जिया ।
चलो लरिकवो वा वन चलिएँ जहाँ है मात तुम्हारी सुनो जिया ।
ऐने पुरिख को मुखो न देखैं जियत दए बनवास सुनो जिया ।
इक वन नागी दुसर वन नागी तिजे वन पहुँचे जाय सुनो जिया ।
खोलो री माता चनन किवरियाँ आए हैं पुरिख तुम्हारे अहो जिया ।
किन के हो नाती लागत हो कौन के लगत भतीजे सुनो जिया ।
राजा जशरथ के नाती लगत है लछिमन लगत भतीजे सुनो जिया ।
फाटो न धरती हम समियामैं जियत दए बनवास अहो जिया ।
फाटी है धरती सीता समियानी लछिमन गहि लए केस अहो जिया ।
केस उखारि धरनि पै पटके बेटै भए कुम डाभ सुनो जिया ।
फाटो हो तो अब ना फटिजो हम सो दुखित ससार अहो जिया ।
पहिला मिलन राजा जनक को फेरि धरे अवतार सुनो जिया
दुसरी मिलना आन उग्दया कायन सबद सुनाय सुनो जिया ।

सासु तो कहै वँझिनियाँ ननद निरवसिन एहो ननद निरवसि
जिनकी वारी विआही उइ घर से निग्वारै रे ।
हुअना से चली रे वझिनियाँ वाँवी लगे ठाढी रे ।
वावी से निकरी नगिनियाँ तो दुख-सुख बूझै रे ।
'कउन दुख तुम्हे परिगए वावी लगे ठाढी हो रे '।
सासु कहे वझिनियाँ ननद निरवसिन रे
जिनकी वारी विआही उइ घर ते निकारो है रे' ।
हमरे हैं छोटे से वच्चा वाँझ हुइ जइहैं हम नहि डसिहै रे '।
हुअना से चलि भई वझिनियाँ जगल विच पहुँची है रे ।
जगल से निकसी वघिनियाँ हो मो दुख-सुख बूझै रे ।
'वहिनी कउन दुख की मारी जगल विच ठाडी हो रे ।'
'सास कहै वझिनियाँ ननद निरवसिन रे ।
जिनकी वारी विआही उइ घर ने निकारो रे ।
हमको जो डसि तुम खाव वझिनियाँ नाव छूटे रे ।
हमरे हैं छोटे से वच्चा वाँझ हुई जइहैं
हम नाहि खइहैं रे
हुअना से चलि भई वझिनियाँ नइहर विच पहुँची है रे ।
हो भीरते निखरी है माया सो दुख-सुख बूझो है रे ।
'माया हमका भितर कर लेव मो दुख-सुख वतामैं रे' ।
'विटिया न हो तुम विटिया तुमही मेरी विटिया होरे ।'
'माया सासु तो कहैं वझिनियाँ ननद निरवनिन रे ।
जिनकी वारी विआही उइ घर ते निकारै रे ।
माया हो माया तुम होरी माया-माया दुख-सुख को
है जोग सो तुम हमसे पूछो रे ।'
'तुम्हरी हैं छोटी सी भउजी वाँझिनि हुइ जइहैं सो हिअन ने जावो रे'।
हुअना से चलि भई वँझिनियाँ गगाजी पै पहुँची है रे ।

'गगा एक दायँ लेव लहरिया डुवन हम आई है रे।
नझिनियाँ नाव टूटे रे'।
'हम नाही लीहैं लहरिया तौ पापिन कहइओ रे ।
विटिया करो न गगा असनान पुत्र तुम्हरे हुइहे रे।
बझिनियाँ नाव मिट जइहै रे'।

४

जेठ बैमाख की दुपहरी राम बन काढो है।
पूता नो भये हैं बिपतिया वहुत सकट मैं रे -
कुम को है उढना बिछौना औ वन फल भोजन रे।
हकरो नगर के नौआ नगर के वरिया रे।
एहो रगि रगि वटैं हरदिया रुचन दै आवौ हो।
इक वन नागी दुसर बन नागौ तिसरे विआवन रे।
सब सखियाँ मिलि पूछन लागी केहि के रे
भये नदलाल रुचन लै आए हो।
वन के नउआ वनै के वरिया सीता के भये नदलाल।
रूचन हम लाये हैं रे।
पहिलो रुचन राजा दसरथ दुसरो कौसिल्या रानी रे।
एहो तिसरो रूचन लछिमन दिउरा रमइया न बतायो रे।
जसरथ लुटाए है पट ना कौसिल्या रानी अभरन रे।
एहो सिर को पगडिया लछिमन दिउरा नउआ विदा करि दओ रे।
भार दांत पै फाटे राम निखरे हैं जो भइया
दगर मगर माथो होय रूचन कहाँ पाओ है रे।
भइया न हो मेरे भइया भइया ! भोजी के भए नदलाल रूचन हम पाये रे।
भइया न हो मेरे भइया तुमाहि मेरे भइया हौरे उइ अपरावित की
नउआ हमऊँ को वतौते हमऊँ कछु देते रे।
राम ने पाती लिखि भेजी सितलदेव वाँचैं, एहो छांडो दिल

को किरोव लौटि घर आवौ रे।
एहो सीता ने पाती लिखि पठई राम जी बाचें एहो मरि के श्ररौ
औतार अजुध्या नहिं आमें है रे।

५

घूम घुमारो इउ जुगिया अगन मेरे ठाडो दुआरे मेरे ठाडो।
जुगिया पूंछन लागो घर को भेद घरइया तोरे कहां गए रे।
सासु हमारी नइहर गई ननद सजन घर रे
जिनकी मैं बारे विआही' तेऊ वनिज गए रे।
इतने वचन सुनि जुगिया पलॅग चढि वइठे
तां जुगिया गढन लगे अनगढ सोनो तौ पहिनी मेरी वना रे।
इक वहें भरि के दुसरी अवखडी जुगिया वहो वहा भरि देव
तौ हुइहैं तुम्हाई गोरी वना रे।
पहिरि ओढि जव ठाडी भई तौ वाजन लगी घोड़ा की टाप है रे।
तो जुगिया भजिवे होय तौ भाजो घरइया मेरे आय गये रे।
रनियां हो मेरी रानियां तुमही मेरी रनियां ना तोरे छिडियां मकुलियां
जहां हुई भाजें रे।
रनियां ना तोरे वारे गदेला जिन्हे लइ वइठे रे।
जुगिया वारे तौ मोरे वहुत है पलना झुलन गए
जुगिया धरि लेव वनियां को भेस सोठि गुर वेंचो रे।
देसन देसन हम फिरि आए हमें काऊ ना छलि पाओ
वारा वरस की जच्चा रानी वतियन हमें छलि लीनो रे।

६

ननन नोरु विन आंगन सूनो कोयल विन अम्वा-डार
कोयल विन अम्वाडार अहो जिया।
गाय वछरा विन मार सूनी वारे लाल विन गोद सूनी।

राम लखन बिन सूनी अजुध्या सतन बिन चौपार अहो जिया।
सीता बिन मोरी सूनी रसुइयाँ राम बिना जिउनार सुनौ जिया।
रामलखन दोनौ निकरे सिकारैं कउन कउन खेलैं सिकार सुनौ जिया।
झरुले बिरिछ खेलैं लरकवा खैंचन राम दुआर सुनौ जिया।
झपटि के लछिमन गोद उठाय लए भरि आए नैनन नीर सुनौं जिया।
चलौ लरकवौ वा वन चलिऐं जहाँ हैं मातु तुम्हारी अहो जिया।
इक वन नागी दुसरो वन नागो तीजे बन पहुँचे जाय सुनौ जिया।
खोलौ माता चनन किवरियाँ आए हैं पुरिख तुम्हार अहो जिया।
किन के हौ तुम नाती लगत हौ कौन के लगत भतीजे सुनौ जिया।
राजा जसरथ के नाती लगत है लछिमन लगैं भतीजे अहो जिया।
फाटौ न धरती हम समियामैं जियत दए वनवास अहो जिया।
फाटी है धरती सीता समियानी लछिमन गहिलए केस अहो जिया।
केस उखारि धरनि मैं पटके वेइ भए कुस डाभ अहो जिया।
फाटी हौ तौ अवना फटिऔ हमसो दुखित ससार सुनौ जिया।
पहिलो मिलना राजा जनक को फेरि धरैं अउतार सुनौ जिया।
दुसरो मिलना आम डरइया कोयल सब्द सुनाय अहो जिया।

७

छापक पेंडे छिउलिया पतउआ घने घने हो।
अरे रामा तीके तरे ठाडी हिरनियाँ तौ मन मैं उनमनी हो।
चरतैं चरत हिरनवाँ तौ हिरनी ते पूछइ हो।
हिरनी की तुम्हारी चरहो मुखानो की पानी बिन मुरझी हो।
हिरना आज राजा की छठी तुम्हें मारि डरिहैं हो।
मचिया वइठी कौसिल्या रानी हिरनी अरज करैं हो।
रानी मास तौ सीझैं रसुइआ खलरिआ हमैं देती हो।
पेंडे पैं टागि खलरिआ तौ हेरि फेरि दिखती हो।
रानी देखि देखि मन ममझउती कि हिरना जियतैं हो।

जाव हिरनिया घर अपने खलरियां नहिं दे९ हो।
जव जव वाजे खजडिया मवद सुनि सनकैं हो।
हिरनी दउरि ढकुलिआ के तरे हिरना को विसूरै हो।

८

दोहद—

रनियाँ कौन फलन मन लागो कौन फल लामैं
सकल चीज मेरे घर में एकौं नहिं भावै है रे।
नौरगिया की माध नौरगिया लै आवो रे।
राजन घोड़े भये असवार नौरगिया लेन गये है रे।
एक नौरगिया जव टोरि नौरगिया पेट वायो है रे।
की केरे तुम वेटा कौन केरे नानी हो रे।
कौन छैल विजनारि नौरगिया लेने जाये हो रे।
अपने दादुल के वेटा अजुलि के नानी हैं रे।
अपनी वना विजनार नौरगिया लेने आये हैं रे।
सासु हमारी वोले वोल जो वोलैं है रे।
वहुअरि ऐसे फलन मन लागो कि पूता वँधाये हो रे।
जिठानी हमारी वोलैं वोल जो वोले है रे।
भोर जो भओ पौ फाटी चिरैयाँ वोली है रे।
जल्दी से खोलो चनन किवरिया हाथ मुँह धोवो
नौरगिया की चीखौ हो रे।
पहिले चिखावौ अपनी मैया नगी वहिनिया को रे।
राजा तिनको जुटन हम खामैं सचत मुख देखै रे।

९

गर्भिणी की अवस्था—

सैंया लगाई नौरगिया रनैं रन डोलैं।

वधाई—　　　　१३

वधइया राजा वीर की वधइया राजा वीर की ।
उठौ उठौ धना कुलतारनी वधइया राजा वीर की ।
मेरी वहिनी के चरन छुइलेव वधइया राजा वीर की ।
मेरी वहिनी कौ विरिया लगावौ वधइया राजा वीर की ।
मेरी ताल पुखरिया सूखि गईं वधइया राजा वीर की ।
मेरे कुँअना मैं परि गओ रेत वधइया राजा वीर की ।
जाव जाव वहिनि घर अपने ववइया राजा वीर की ।
वइठौ वइठौ विरन घर अपने वधइया राजा वीर की ।
तुम जोड़ के असिल गुलाम वधइया राजा वीर की ।

१४

धिआ ना जलमी जलमे हीरा लाल ।
मेरी दाई वडी जू कै कै रूठना लेव ।
मेरे मैंके की चुनरी सो ओढि घर जाव ।
मेरी अम्मा वडी जू कै कै रूठना लेव ।
मेरे मैंके को कगना सो पहिरि घर जाव ।
जिठनी वडी जू कै कै रूठना लेव ।
मेरे मैंके को कगना पहिरि सो जाव ।
ननद वडी जू कै कै रूठना लेव ।
मेरे मैंके की तिलरी मो पहिरि घर जाव ।
मेरी देउरानी जू कै कै रूठना लेव ।
मेरे मैंके की पहुँची मो पहिरि घर जाव ।

१५

नेग—

ऐसी दाई हरजाई लाल को नारा न छीनैं ।
नारा छिनाई अजुध्या माँगै मथुरा माँगै हनवाई । लाल०

द्वारे ते ससुरा हँथिया पठाओ हथिओ न लेय वह दाई लाल।
द्वारे से जेठा उटिला पठाओ उटिलो न लेय वह दाई लाल।
द्वारे से दिउरा घुड़िला पठाओ घुड़िलो न लेय वह दाई लाल।
द्वारे मे सइयाँ मोहरैं पठाईं मोहरों न लेय वह दाई लाल।

१६

नेग—

हम तौ अकेली सइयाँ सब ना लुटाय दीजो।
नास जो आवैं सइयाँ द्वारे ते लौटाय दीजो।
नास को नेग मेरी अम्मा ते कराय लीजो।
जिठनी जो आमैं सइयाँ द्वारे ते लौटाय दीजो।
जिठनी को नेग मेरी भउजी से कराय लीजो।
ननदी जो आमैं सइयाँ द्वारे ते लौटाय दीजो।
ननदी को नेग मोरी बहिनी ते कराय लीजो।
दिउरा जो आमैं सइयाँ द्वारे ते लौटाय दीजो।
दिउरा को नेग मोरे भइया से कराय लीजो।

१७

सन्तति स्नान—

जनदा बधाई री आज मोरे।
जब गउआ को गोबर मँगाओ अँगना लिपाओ री माई।
जब गोबर अँगना लिपाओ चौक पुराव री माई।
जब मुतियन चौक पुराई कलस धराव री माई।
जब सोने को कलस धराओ दिअना जराव री माई।
जब नानिक दिअना जराओ पटुलि धराव री माई।
जब चन्दन पटुलि धराई जनुदा बुलाव री आली।

१८

जच्चा का नखरा—

अरे आली अँगना मैं ववैयों मैं सोठ घनौची पिपरी ललना।
काहे सिल को सिलौटा काहे लोढा ललना हो।
सोने को सिल को सिलौटा रूपे को लोढा ललना
बाहर से आये ससुर राजा अरज बहुत करैं रे।
पिऔ वहुअरि रानी पीपर होरिल दूध पियैं रे।
पीपर करुई कसैली वहुत वकठैली ललना।
गेहुँआ वरन मोरी देही जरद हुइ जैये।
कपुर वरन मोरी जिभिया जरद हुइ जैये।
वाहर से आये जेठ राजा अरज बहुत करैं रे।
पियौ बहुरानी पीपर होरिल दूध पियैं रे।
वाहर से आये दिउरा राजा अरज वहुत करैं रे।
पियो न भउजी पीपर होरिल दूध पियैंरे।
वाहर से आये साहव राजा हाथ चाबुक लए हैं।
पियौ हरामजादी पीपर होरिल दूध पियैं रे।
एक कटुरवा का पीमैं दस भरि लावो जो रे।

१९

मुण्डन—

झडुले है आम अमिलिया अरे अउर जम्हिरिया अउर जउन के खेत।
झलरिया मोरी पाउनि रे।
अथइयाँ वइठे आजा उनके मुन्नाराम
एहो आजा अँगे लुटनी पसारे।
मुडावो आजा झालरि रे।
अथइयां वइठी आजी उनकी मुन्नाराम

एहो आजी आंगे लुटनी पसारे।
मुड़ावो आजी झालरि रे।
अयइयां वइठे दादा उनके मुन्नाराम
एहो दादा आगे लुटनी पसारे।
मुड़ावो दादा झालरि रे।
अम्मा उनकी जांग वइठारे झालरि मुडामें
दादा उनको खरचें दाम झालरि मेरी पाउनि रे।
(इसी प्रकार अन्य सम्बन्धी भी)

यज्ञोपवीत के गीत

२०

कासी वेद पढि आये नरायन वरुआ।
किन जा दई है पीरी लंगुटिया
किन इउ जनओ कराओ
आजा मेरे दई है पियरी लँगुटिया आजी ने जनओ कराओ।
वाबू ने दई है पियरी लँगुटिया माया ने जनओ कराओ।
चाचा मेरे दई है पियरी लंगुटिया चाची ने जनओ कराओ।
भइया मेरे दई है पियरी लँगुटिया भौजी ने जनओ कराओ।

२१

को मेरे मुजवन जंऐ मुजिया कटैऐ।
को लै आवै मूंज नज को जनओ चहिए।
आजा मेरे मुजवन जंए मुजिया कटैऐं।
वेई लै आमैं आलो मंज मूंज के जनेऊ चहिए।
पहिलो जनेऊ मूंज को दूसरो हिरनवा की खाल
तिसरो जनेऊ सूत को रगो है हरदिया की गांठ।

२२

लावौ न आजी मोरी सतुआ औ दुइ लड्आ ।
जइएँ हम कासी बनारस वेद पढि अइएँ ।
कहाँ ते लामैं मेरे लाल सतुआ औ लड्आ ।
धरइं अजूबी तोरी त्रिदिया वेद पढि लेव ।
लावौ न माया मेरी सतुआ औ दुइ लड्आ ।
जइएँ हम कासी बनारस बेद पढि अइएँ ।
कहाँ ते लामैं मेरे लाल सतुआ औ लड्आ ।
धरइं अजूबी तोरी विदिया बेद पढि लेव ।
(इसी प्रकार अन्य लोगो से भी)

विवाह के गीत

२३

फूल को बेला सवाव सेर सतुआ ऊपर गुर की वटी ।
भतैयन बहुत सकोच करी ।
भात मागन आई लली जू वीरन की बखरी भतैयन०
भैया रोवै वहिनियाँ भेंटैं भौजी को रपट परी भतैयन०
आवी फुलरिया डेढ मिथौरी खूटा पै जेमैं लली भतैयन०
अब छोटी भौजी डविया खोली उमे एक तनी भतैयन०
जैसी छिनरिया हमको रपटी तैसी झमकि चली भतैयन०
एक वन नागी दूजे वन पहुँचो तिसरे लुटितो गई भतैयन०
काऊ लओ लहगा काऊ लओ लुगरा चोली पे लूटि परी भतैयन०
सेर सेर गुड बाटो वहिनी धरम सेवचै भतैयन०

२४

राम लखन दोऊ निकरे अहिरिया कौन वन खेलैं सिकार ।
राम ने मारी डेड सौ हिरनी लछिमन मिरग पचास ।

मारि हिरनियाँ कजरी वन डारी राम को लगी पियास
है कोई ऐसो अवध नगरिया राम को जल अचवाय
नाम न जानैं तेरो गोत न जाने कैसे जल अचवाय
राजा जनक की कन्या सितलदे राम को जल अचवाय
राम ने अँचओ लछिमन अँचओ अँचओ सब परवार।
धम धम बाजै बरायत सोर भई चहुँओर।
नाचत जाय साजन की पुतरैं घुमडत आमैं निसान।

७५

सइयाँ साँझ के निकरे आए हैं भोर भए
कौने बिलमाये कौने के बस मे परे
लोगन बिलमाए जैफर बस मैं परे
लोगन कटवैहों जैफर कलम करे
महलन ऊपै रनियाँ रूप सरूप करे
महलन गिरिवैयँ खिरकी से किरच धरैं
रनियाँ मरवैयाँ बलमा बस मैं करै।
पतिया लिखि भेंजैं नइहर खबरि करैं।
भैया चढि आमैं नइयाँ पैं मार परें।
थोरो-थोरो मरियो जोनि की बैस बुरी
बहिनी परपचिनि जिन परपच करे
पहिले मरवावैं पीछे को दरद करै।
सइयाँ साँझ के निकरे आए हैं भोर भये।

२६

कि एजी माँझ-माँझ रुखवा इक ठाडो इक महुआ इक आम।
„ उहितर ठाडे दुइ परदेसिया एक लछिमन इक राम

कि एजी सिव का पूजन निकरी सिलददे सब सखियन केरे सग
,, की तुम हो कोई बाट बटोही की रे विदेसी लोग
,, ना हम हैं कोई बाट बटोही नारे बिदेसी लोग
,, हम तो हैं दोनो राम लछिमन राजा जसरथ जू के पूत
,, नौ मन मुनवा जनिक मगवाओ धनिस घरो बनवाय
,, जो कोई धनिस की टोरि दिखावै सीता को व्याहि लै जाय
,, धनिस टोरन कौ राम जी चले हैं लछिमन ठाडे मुसक्यायँ ।
,, कोमल गात उमिरि भइया थोरी बहियाँ मुरुकि ना जाय
,, वहियाँ रे वहिया जिनि करो लछिमन फिरि पाछे पछिताव
,, वनिस टोरि नौ खण्ड करे है सीता कौ व्याहे लए जाँय ।
,, सीता कौ व्याहि अवधपुर लै गये घर-घर वजत वधाई
,, माँझ-माँझ इक रुखवा है ठाढो इक महुआ इक आम

ज्योनार— २७

हरि जेंउत हैं जिउनार गावैं सजनी सारी ।
कुण्डन पुर की सोभा आली हमते कही न जाय ।
छार-छार लछिमी जहँ जलमी वरनै को कवि आय ।
थकित उपमा सारी ।
चन्दन की चौकी विछवाई सोने से मढवाय ।
मनि मानिक पायन मैं लगि रहे नजर नाहि ठहराय ।
जगमगाय रही सारी ।
मखमल के जहँ विछे गलीचा मसनद दये दवाय ।
पमन देव ठाढे करि डुलावैं सीतल पमन चलाय ।
खुसी तन वढै भारी ।
कचन थार कटोरी कचन कचन गिलास मँगवाय।
कचन धरी सुराही सव इतर दओ छिड़काय ।
आवै खसवोय भारी ।

पुरी अउर कचउरी खस्ता विढई दई सिकाय
माल पुआ रसगुल्ला परसे पेडा परमे आय
इमिरती हैं प्यारी ।

खुरचन पेडा वालूमाही कलाकद ढवदार
गुझियाँ वरफी लड्डू रवडी जलेबी नानखनाई त्यार
धरी आगे सारी

मोती चूर वेसनी लड्डू रवडी खोयादार
मठरी पापर कचरी परसी फली दई परमाय
मूली और जिमीकद टिडी परमल मेथी लाय
वनी हैं प्यारी सारी ।

पालक वयुआ कुलफा कमरख सवै दए परसाय
कैत की चटनी करी चटपटी सुन्दर सुघर वनाय
वनाय सवादिल सारी ।

दालमोठ ममोसा पिस्ता मिरचौनी निमकीन
दारि चना की वडी कुरकुरी खस्ता है वडो रसीलो
टीकिया आलू की ।

दही वडा और पकौडी मे अदरख दई डरवाय ।
सोठ जउ रउते सव परसा के कह लौं देयँ गिनाय ।
सोखरन परसि दई ।

मोहन यार गजर को हलुआ पेठा है रसदार
गजक वढिया प्यारी ।

२८

विदा—

हम को लिखी है विदेस रे लुन वावुल मेरे ।
जा दिन भइआ तुम्हरो जलम भओ है भइ है सोने की रातिरे ।

आजिहु बेसै माइउ बेसैं ददुलि बेसैं चौपारि रे ।
जा दिन भइआ मेरो जलम भओ है भई है बजुर की राति रे।
आबिउ रोमैं बाबुलि रोमैं अजुलि रोमैं चौपारि रे ।
तुम को तौ बिरन मोरे दादुलि चौपरिआ हम को तौ लिखो है बिदेस रे ।
हम तौ ददुलि मोरे गगरी घैलना डुबत-डुबत डुबि जाँय रे ।
हम तौ ददुलि मोरे सार की गइआं जहँ बांधौ तहँ जांय रे।
बगिया के ज्यौंरे ज्यौंरे निकसी पलकिआ कोयल सब्द सुनाय रे ।
अब का बोलौ सउति कोयलिआ छूटो बबुलि को देस रे ।
लहुरे बिरन मोरी पकरी पलकिआ हमरी बहिन कहँ जाय रे ।
घिआ पठै बाबुलि घर को लउटे घर देखो अधियार रे ।
घर मेरो बासो अँगन तिबासो गुबर सुखैं मेरी सार रे ।

२९

बंदा—

आम नीम तरे ठाढी रे बेटी माया कलेवा लय ठाडि रे ।
खाय न लेव मोरो बेटी परदेसिन तुमरो कलेवा बडि दूरि है रे ।
सोउत बेटी की डुलिया फँदामों सोउत करी असवार है रे ।
इक वन लागो दुसरो वन नागो तिसरे मैं पहुँची जाय है रे ।
परदा खोलि जब बेटी जू देखो छूटो नैहर को देस है रे ।
तौ मइके को कोई नाही बाप का कोई नाही ।
ये हो मारि कटारि मरि जाउँ तौ मइके को कोई नाही है रे ।
घोडा चढेते सिरिवर उतरे बहुत करी विनती
काहे हूलि कटारि मरि जाव तौ हम तुम रे
ये ही करिहै अजुध्या को राज दोनो जने रहिबे रे ।

३०

बन्ना—

दिल्ली में सोर भओ भारी बन्ना मेरो गान्धी भओ है ।
आजा उड्को चरखा चलावै आजी बिनै गजी गाढा बन्ना•

दादा उइको चरखा चलावैं माया बिनैं गजी गाढा बन्ना।
चाचा उइको चरखा चलावैं चाची बिनैं गजी गाढा बन्ना।
भइया उइको चरखा चलावैं भउजी बिनैं गजी गाढा बन्ना।
नाना उइको चरखा चलावैं नानी बिनैं गजी गाढा बन्ना।
(इसी प्रकार अन्य लोग भी)

३१

बन्ना—

रघुनन्दन फूले न समाय लगुन मेरी हरे-हरे
लगुन मेरी आय गई।
सिर सोहै झालरि को मउरा कलगी अजब बहार लगुन।
माथे उनके तिलक विराजै सिर सोने की खउर लगु।
नैनन सोहै बरेली को सुरमा रेखैं अजब बहार लगुन।
कान सोहैं सूरति के मोती चुन्नी अजब बहार लगुन।
अंग सोहै अतलस को जामा फेंटा अजब बहार लगुन।
पांव बने रैदासी बूटा मोजा अजब बहार लगुन।
संग सोहै भइयन की जोड़ी सोभा अजब बहार लगुन।

३२

बन्नी—

नदिया किनारे एक सारस बोलैं इक महुआ इक आम रे।
नग्र अजुध्या में दुइ वर सुन्दर इक लछिमन इक राम रे।
लीपो औ पोतो छिड़को धनुस धरो उठाय रे।
जो यह धनुस उठावैं रघुनन्दन सीता ब्याहि लै जायँ रे।
न्हाय धोय सीता सुरज मनावैं सुरज बिनती हमारि रे।
भारी धनुस पतरे रघुनन्दन बहियां मुरि नहि जायँ रे।
काए को सीता तुम सुरज मनावो काए को बिनती तुम्हार रे।

धनुस तोरि मैं खण्ड वनामौं ब्याहि तुम्हैं लै जायँ रे।
इतनी सुनि सीता मगन भई हैं सीता के जियरा अनन्द रे।
अब हम जैयैं राजा दसरथ घर करिहैं अजुध्या को राज रे।

३३

नकटा

बेला फूलो आधी रात गजरा मैं की के गरे डारूँ।
जो गजरा ससुर गरे डारों तौ सासुइ दुख होय
जो गजरा जेठ गरे डारों जिठनी का दुख होय
जो गजरा दिवर गरे डारौं दिउरनियाँ का दुख होय
जो गजरा सहब गरे डारौं सौतिनियाँ का दुख होय।

३४

नकटा

रोवै मेरो लाल जसोदा लै लेव कनियाँ।
धरती घूमैं प्रथिमी घूमैं घूमैं सारी दुनियाँ।
अपने महल मे ऐसी घूमैं जैसे नाक नथुनियाँ।
चौका करियौ वरतन करियौ गोवर लैयौ पनियाँ।
जवहि काम से निरचू हुइहै तव लय लीहैं कनियाँ।
पानी माँगि के देखै लाला कढत हैं
कहौ लाल हम दही खवामैं स्याम मथी है मथनियाँ।

पियरी ३५

तुम्हरो मडओ न पिया हमैं न सुहाय हमरे विरन नहि आये।
लावो न रनिया मोरी कलम दवायत चिठिया लिखो तुमरे वीर को।
रानी के विरन चले आमैं।
उहि रे देस राजा गगा वहत है हमरे विरन कैसे आमैं।
उहि रे देस राजा ठगवा लगत है हमरे विरन कैसे आमैं।

उहि रे देस राजा घूपा बहुत है हमरे बिरन कइसे आमैं।
केवट बुलाय रानी नइया चलावो रानी के बिरन चले आमैं रे।
बढई बुलाय रानी ढखवा कटावो रानी के बिरन चले आमैं रे।
मलिया बुलाय रानी बगिया लगावो रानी के बिरन चले आमैं रे।
भइया जी पूछैं अपनी बहिन ते कितनो खर्च तोरे माडये रे।
सासु का चहियै राजा लहर पटोरा ननदी अबध रग चूनरी।
भैनें का चहिये राजा पाचो कपडा हमका तो पियरी धोति रे।
बहनोई का भइया आसिल घोडा इत्तो खर्च मोरे माडये रे।
जेहि के न होय बहिनी इतनो खरच हाँथ पियरि करि आवई।
सासु की चोरी ननद की चोरी खरच चलावो राजा वीर को।
लइके बचुका भइया मडये बइठे जानो बजाज के पूत हैं।
लइके थइली भइया मडयें जो बइठे जानो सराफ के पूत है।
लइके डब्बा भइया मडये जो बइठे जानो सुनार के पूत है।

३६

निकरौसी—

लडइते मोरे रचियो मैं वारे वियाह।
अम्वा बउरन देव महुआ कुचन देव लडइते लगन देव बइसाख।
अमवा बउरि रहे महुआ कूचि रहे अजुलि मोरे लागि गए बइसाख।
अम्वा की डार एक बोलै कोइलिया बोलत बचन सुहावै।
जो जनते हम नतिया मोरे व्याहन जइहैं
लडइते डगमग बगिया लगउते नाती मोरे।

(इसी प्रकार अन्य सम्बन्धो भी)

३७

होरी—

कौन रग बिहारी बन वासुरी बजामैं।
जमुन जल भरन गईं सब ब्रजनारी।

अपनो मडिल भूली गलियन ठाडी ।
वन मे वन मोर नाचैं मोहैं मोहैं वनचारी ।
गोकुल मे कान्ह नाचैं मोहैं राधा प्यारी ।
वेद पढ़त ब्रम्हां भूले-भूले बिरमचारी ।
मुनियन के ध्यान छूटे बोलैं जैं जैं कारी । कौन रग

फाग

३८

किन्ने मारे बालम मेरे रनमे-किन्ने मारे हरे ।
सोने सिंघासन बैठी सुलोचन सोच करैं अति मन मैं ।
देखन लगी भुजा कौ रानी खाइके पछाड ऐसी गिरी है धरन मैं-किन्ने
करि अति क्रोध सुलोचन रोवैं बहत नीर नैनन मैं ।
ऐसो वीर कौन दुनिया मैं काटि भुजा जाने फेंकी धरन मैं । किन्नै
धरती जीति पिरथिमी जीती वासुकि जीते हैं छिन मैं ।
सात दाँय इन्दर को जीतो जाने का मारो मेरे पिया के भुजन मैं
हम जानी अम्मर मेरी चुरियां तब पहिनी हती कर मैं ।
बाबू रामचरन पद हरि के जाने कहा लिखी है करमन मैं कि

फाग

३९

ताल बजाय भिम्म दहलानो-तालाब जाय । हो ।
ताल बजाय भिम्म दहलानो बादर सो घहरानो ।
फूलो अग भओ जब दूनो तब कीचक मन मैं घबरानो
भिम्मा जोधा यों उठि बोले भेद न तुमने जानो ।
लडि ले आज अधम अभिमानी तेरो काल आय नियरानो
दोनो लडत मस्त जैसे हाथी भुज गहि भिम्मा तानो
ऐसो पटक मारि धरनी मे कढत प्रान कीचक ठहनानो –
नौबतराय कहैं कर जोरी भेद न केऊ जानो ।
बाहर गाँव लहाम लइ डारी भिम्मा बदलो भेस जनानो

सावन के गीत

४०

ननद भौजी दोनो पनियाँ को निकसी एकु छैल बोले बोल।
कौन रगन वहिनी ऊरे छैलवा कौन रगन देखे सिर पाग।
गेहुआ रगन भैया ऊरे छ्यलवा कुसुम रगन बाँधे पाग।
लावौ जो माया मैया पाँय की पनहिआँ और नंगि तरवार।
हम तौ पूता मोरे चरखा कानति हैं भौजी ने लै लेव जाय।
लावौ जो भौजी मोरी पाँय की पनहिआँ और नगिन तरवार।
हम तौ दिउरा मेरे रसोई खँचति ह वहिनी से लै लेव जाय।
लावौ न वहिनी पाँय की पनहिआँ और नगिन तरवार।
हम तौ भइया मोरी गुडिया खिलत्त है भौजी से लेव जाय।
लावौ न धनियाँ मोरी पाय पनहिआँ अउर नगिन तरवार।
हम तौ सामी मोरे ललन खिलौती खुटिया धरी तरवार।
नामी मोरे झपट के लै लेव जाय।
एक वन नागी दुसर वन नागी तिसरे मे डारो है मारि।
भइया मोरे तिसरे मे डारो है मारि
काहे भरी है भइया पाँय की पनहियाँ काहे भरी तरवारि।
ओस भरी पाँय की पनहियाँ रकत भरी तरवार।
मारो तो वीरना मोरे मारि न जानो मारो सगो वहनोई।
तुमहो वहिनी मोरी चेत चिनाए तुमही दये वनवास।
काहे की पहिरों हरी पेरी चुरिया की पै करों सिंगार।
को रे छवैये रांड की मडैया कौन करै पतिपाल।
केहिको देहरिया न्नै वैठइयो केहिके सहइओं बोल।
अपनी देहरिया हम न्नै वैठेहैं हमहि सहै है बोल।
हमारी तौ पहिरों वहिनी हरी पेरी चुरिया हमहीं पै करों सिंगार।

४१

साउन भइया मेरो आउन कहि गओ री।

कउन रितु अम्मा मेरी ओढ़ै सालुआरी ,
कउन रितु केला की वहार री । सावन
कउन रितु अम्मा मेरी कउन रितु मइया मेरी ओढ़ै सालुआरी ।
जाडेन ओढौ तुम वेटी मोरी सालुआरी
गर्मिन लाडो मेरी केला की बहार री ।
सावन ओढौ वेटी मेरी चूनरी री । सावन
कउन रितु खइयौ तुम अम्मा मेरी बाजरा री ।
कउन रितु अम्मा मेरी गेहूँ की बहार री ।
कउन रितु खइयौ अम्मा मेरी सेंवरी री। सावन
जाडेन खइयौ मेरी वेटी वाजरा री
गरमिन लाडो मेरी गेहूँ की बहार री
साउन वेटी मेरी सेमिन की वहार री । सावन
कउन रितु रहियै अम्मा मेरी सासुरेरी
कउन रितु मैया मोरी ननसार री ।
कउन रितु मइके की वहार री । सालन
जाडेन रहियो वेटी मेरी सासुरे री ।
गरमिन लाडो मेरा रहियो ननसार री
साउन लाडो मेरी साउन वेटी मेरी मइके की वहार री
किनको मैं परसौं अरी मइया मेरी पूरियां जी
किनको मइया मेरी नो दस थार
किनको परोसो मइया सेंवरी री सावन
(वबुली) ददुली को परसो वेटी मेरी पूरियां री
चचुली को वेटी मेरी नो दस थार री
तिरना को परसो अरी लाडो मेरी सेंवरी री । सावन

४२

जो तुम माया मेरी धरम की हुइओ साउन वीरन पठइयो ।

बाप तुम्हारे बेटी देस के राजा ओऊ र बसत परदेस ।
जेठो बिरन बेटी धनियाँ को लोभी निन उठि जइये ससुरारि ।
लहुरो बिरन बेटी निपट अनारी नदि नारे देखि डिराय ।
ऊँचे चढ़ि-चढ़ि बहिनी देखें आज बिरन मेरो आवें ।
आइ गई न डुलिया आई गए कहँरवा आइ गए बिरन हमार ।
बैठो न डुलिया बैठो कहँरवा बैठो भैया मेरे तखत बिछाय ।
कहि लेव माया जू की बात ।
माया तो बहिनी मेरी अन्न न पानी भौजी कहीं पैंलाग ।
बैठो न बहिनी मेरो मचिया जो डारी कहि लेव सासु जी की बात ।
सासु तो बिरना मोरें अइसी निरदइनि सोउन कल ना देय ।
रँधी मछरियाँ सीके धरी पै रोटी पै नून न देय ।
माया अँगारू जनि कहियो बिरना पेट मारि मरि जांय ।
भौजी अँगारू जनि कहिओ बिरना ओऊ नइहर कहँ जाय ।
बहिनी अँगारू जनि कहिओ बिरना ओऊ ससुरे नहि जायँ ।
ऊँचे चढ़ि-चढ़ि माया हेरैं आज धिया मेरी आवें ।
छूँछी है डोलिया छूछे कहँरवा छूँछे है पूत हमार ।
उतरो न डुलिया उतरो कहँरवा बैठो न पूत तखत बिछाय ।
कहि लेउ बेटी जू की बात ।
बहिनी तो माया मेरी ऐसी रोवैं जैसे मघा के बूँद ।
देह तो मैया ऐसी मैली जैसे दिवाल को लेस ।
कपडा तो मैया ऐसे मैले मनो तेलिया को चीकट ।
निकरे रे पूता निपट कपूता बहिनी रोवत कैंसे छोडी ।
लाओ न माया ढाल तरवरिया देस मारि धिया देवें ।

८३

ऊँचे से बरोठवा ससुर जू के तेहि चढ़ि हेरों मैं बाट
मेरे परदेसिन के बीरना रे ।

कउन रितु अम्मा मेरी ओढ़ै सालुआरी ,
कउन रितु केला की वहार री। सावन
कउन रितु अम्मा मेरी कउन रितु मइया मेरी ओढ़ै सालुआरी।
जाडेन ओढ़ौ तुम वेटी मोरी सालुआरी
गर्मिन लाडो मेरी केला की बहार री।
सावन ओढ़ौ बेटी मेरी चूनरी री। सावन
कउन रितु खइयौ तुम अम्मा मेरी बाजरा री।
कउन रितु अम्मा मेरी गेहूँ की वहार री।
कउन रितु खइयौ अम्मा मेरी सेंवरी री। सावन
जाडेन खइयौ मेरी वेटी वाजरा री
गरमिन लाडो मेरी गेहूँ की बहार री
साउन वेटी मेरी सेमिन की बहार री। सावन
कउन रितु रहियँ अम्मा मेरी सासुरेरी
कउन रितु मैया मोरी ननसार री।
कउन रितु मइके की वहार री। सालन
जाडेन रहियौ वेटी मेरी सासुरे री।
गरमिन लाडो मेरा रहियौ ननसार री
साउन लाडो मेरी साउन वेटी मेरी मइके की बहार री
किनकौ मैं परसों अरी मइया मेरी पूरियाँ जी
किनकौ मइया मेरी नो दस थार
किनकौ परोसो मइया सेंवरी री सावन
(वबुली) ददुली कौ परसो वेटी मेरी पूरियाँ री
चचुली को वेटी मेरी नौ दस थार री
तिरना को परसो अरी लाडो मेरी सेंवरी री। सावन

४२

जो तुम माया मेरी धरम की हुइओ साउन वीरन पठइयो।

आप तुम्हारे बेटी देस के राजा ओऊर बसत परदेस।
जेठो विरन बेटी बनियाँ को लोभी नित उठि जइयँ ससुरारि।
लहुरो विरन बेटी निपट अनारी नदि नारे देखि डिराय।
ऊँचे चढ़ि-चढ़ि बहिनी देखँ आज विरन मेरो आवँ।
आइ गई न डुलिया आई गए कहँरवा आइ गए विरन हमार।
बैठो न डुलिया बैठो कहँरवा बैठो भैया मेरे तखत बिछाय।
कहि लेव माया जू की बात।
माया तौ बहिनी मेरी अन्न न पानी भौजी कही पैंलाग।
बैठो न बहिनी मेरो मचिया जो डारी कहि लेव सासु जी की बात।
सासु तो बिरना मोरे अइसी निरदइनि सोउन कल ना देय।
रधी मछरियाँ सींके धरी पै रोटी पै नून न देय।
माया अँगारू जनि कहियो बिरना पेट मारि मरि जाँय।
भौजी अँगारू जनि कहिओ बिरना ओऊ नइहर कहँ जाय।
बहिनी अँगारू जनि कहिओ बिरना ओऊ ससुरे नहिं जायँ।
ऊँचे चढ़ि-चढ़ि माया हेरैं आज धिया मेरी आवँ।
छूँछी है डोलिया छूछे कहँरवा छूँछे हैं पूत हमार।
उतरो न डुलिया उतरो कहँरवा बैठो न पूत तखत बिछाय।
कहि लेउ बेटो जू की बात।
बहिनी तो माया मेरी ऐसी रोवँ जैसे मघा के बूंद।
देह तो मैया ऐसी मैली जैसे दिवाल को लेस।
कपडा तो मैया ऐसे मैले मनो तेलिया को चोकट।
निकरे रे पूता निपट कपूता बहिनी रोवत कैसे छोडी।
लाओ न माया ढाल तरवरिया देस मारि धिया देयँ।

४३

ऊँचे से बरोठवा ससुर जू के तेहि चढि हेरौं मैं बाट
मेरे परदेसिन के बीरना रे।

कहा चढि आये दादुलि मोरे का चढि आए काकुलि मोरे
का चढि आए विरना मोरे।
ऊँटिला चढि आए दादुलि मोरे घुडिला चढि काकुलि मोरे
चनन पलकिया बिरना मोरे आए
का लैके आए दादुलि मोरे का लै काकुलि हमारे
का लैके आऐ वीरन मोरे।
कोहरी लै आए काकुलि हमारे मटुका लै आए दादुलि मोरे
चटक चुनरिया बिरना लाए।
कहना उतरे मोरे दादुलि कहना काकुलि हमार
कहना उतरे वीरन हमार।
द्वारे मे उतरे दादुलि मोरे वरोठवन उतरे काकुलि हमार
अँगना मैं उतरे वीरन मोरे।
ऊँचे से वरोठवा ससुर जू के तेहि चढि हेरौं मैं वाट
मेरे परदेसिन के वीरना रे।

४४

कजली—

रिम झिमि परै फुहारि औ वुँदिया टपकि रही।
झिल मिलि वहै बयार पमन झलि डोल रही।
डोलै नरगिया की डार कोयलिया कूकि रही।
गरजै घटा घन घोर मुरइला कूकि रहे।
वावा गए परदेस वडो सुख दै के गए।
अँगना चदनवा के गात हिडोलना दै के गए।
सैंइयां गए परदेस वडो दुख दै के गए।
छतिया वजर किवरिया दै के गए।
जोहो वटोहिया तोरी वाट काहे घन नीर झरी।

की तोरो नइहर दूर कि तोरी सास लडी ।
हमरे वलम परदेस वहे हम सोच करैं ।
ना मेरो नइहर दूर न मोरी सास लडी ।
हमरे वलम परदेस वहे हम सोच करैं ।
गरवा मै देंउ गलहार मोतिन की माल लडी ।
छोडौ परदेसिया की आस हमारे सग चली ।
अगिया लगै गलहार मोतिन की माल लडी ।
हम तौ है सजन तुम्हार देखि घन मुरझि परी ।

८५

डुँडवा पीपर मइहां गडे है हिंडोलना हिंडोलना
अरे का सासू हमऊँ री जाय ।

जो वहुआ मोरी झुलुआ के सथिनी चकिया पीसे धरे जाव ।
चकिया जो पीसि उठाय धरि दीनी कहो सासुल अब हम जाय ।
जो तुम वहुआ मोरी झुलुआ की सथिनी गुवरा पाथे धरे जाव ।
अरे पनिया भरे धरे जाव ।
पनिया भरि के घनाची धरि दीनो कहो सासुल अब हम जायें
जो तुम वहुआ झुलुआ की सथिनी रसोई रचे धरे जाव ।
रसुई साँचि जो खिरकी धरि दीन्ही कहो अब सासु हम जाय ।
जा वहुअरि मोरी झुलुआ की सथिनी गहनो उतारे धरे जाव
गहनो उतारि डब्बा धरि दीनो कहो सासु हम जायें ।
एक झूँक झूलो दुसरो झूँक झूलो तिसरे दिउरा डारो मरि
अर तरे मारो पिपर तरे मारो ऊपर जमी हगी दूब
बन्ही वरस पिया वनिजा ने लौटे वग तर लओ है वसेर
माया दौरी लैके भुजनको वहिनी लै ठडो पानि
माया देखी वहिनियां देखी गोरी धना न्है न दिखायें ।

तुमरी तौ धना पूता चकिया सधीली हुँअना लगाई देर ।
चकियन चकियन हम देखि आए हुआँ न कहूँ दिखायँ ।
तुमरी तौ गोरी धना मइके गई हैं बिरना को रचो है बिआह ।
सारे हम देखे सरहजें देखी गोरी धना कहू न दिखायँ ।
तुमरी तौ गोरी धना झुलुआ की सथिनी दिउरा ने डारो है मारि ।
माया जौ आईं बहिनिया आईं करौ न पूता जिउनार ।
काए कौ पूता मोरे अनमन धनमन रचियौं मैं दुसरो बिआह ।
चन्द सूरज अइसी धनियाँ जो छूटी छूटी रजन ससुरारि ।
लावौ न माया मोरी जुगिया के कपडा हम जुगिया हुइ जायँ ।

४६

हरो हरो गोवर पियरी है माटी रनियाँ महल लिपाये जी ।
उडौ न कागा जाव दखिनवाँ बीर खबर लैं आव जी ।
कागा विचारे उडन न पाये वीर ठाडे दरवार जी ।
वीर आये कुछौ न लाये सासु ननद मुख मोरी जी ।
हाथन मेहदिया पांयन बिछिया कैसे मिलौं राजा वीर ।
घोय डारौं मेहदी उतारि डारौं बिछिया लपटि मिलौं राजा वीर ।
ऊँचे चढि-चढि माया हेरैं मेरी धिया नेरे कि दूरि रे जी ।
छूँछी डोलिया छूँछे कहँरवा रूठे वहिन जी के वीर जी ।
आवौ जो पूता घुटवन वैठो वोलो वहिन जी की वात जी ।
वहिनी को हाल न पूछौ माया, बहिनी को हाल सुने छतिया फटै जी ।
वहिनी के कपडा ऐसे वने हैं जैसे चौका को पुतना जी ।
वहिनी के केस ऐसे वने जैसे कुकर की पूछ जी ।
वहिनी के असुआ ऐसे गिरत हैं जैसे मघा के वूद जी ।
ऐसे दुख पूता तुम्हरी वहिन को रोउत कैसे ढीली जी ।
करौ न माया मोरी गरुई गठरिया वहिनी चलन हम जाय जी ।
वीर आए सव कुछ लाए सासु ननद हँसि मुख वोली जी ।

हाथन मेंहदी पायन विछिया कैसे मिलैं राजा वीर जी।
धोय डारी मेंहदी काढि डारो विछिया झपटि मिलीं राजा वीर जी।
रांधी न वहू मोरी मोतीछुर भात् और गेहुन की रोटी जी।
मारे वहनोई मिलि जेंडन वैठे सारे विदा की कहा तौ जी।
सजि गई डोलिया सजि गए कहँरवा सजी भैया जी की वहिनि जी।
नन्हीं नन्हीं वुदियन मेघा वरसैं वहिनि कैसे घर जायं जो।
डोलिया भीजैं कहँरवा भीजैं भीजत वहिन घर जाय जी।
ऊंचे चढि चढ माया जो हेरैं मोरी धिया नेरे कि दूरि जी।
लाली लाली डुलिया उघार परे है हसते पुता घर आए जी।
मैया भेंटी वहिनियां भेंटो भेंटी नग सहेली जो।

चक्की के गीत

४७

भूलो फिरै भमर वाग न पावै।
विन रे वाप की वेटी ना कहावै को ढूंडै वर को तिलक चढावै।
विन रे माया की धिया न कहावै को करै मोह को हिरदे लगावैं॥
विन रे विरन की वहिनी ना कहावै को साजै डोलिया को देस दिखावै।
विन रे भौजी के नंद न कहावै को छुऐ पाय जो झपटि वैहावैं॥
विन रे वलक की गोदी न कहावै को पियै दूध को दुन्दि मचावैं।
विन रे पुरुप की तिरिया न कहावै के पूंछै वात को पार लगावै।
भूलो फिरै भमर वाग न पावै।

४८

कठिन राम जी की प्रीति लगै न सोई जानत नाहीं।
काहे के माया मेरो जनम दओ है काहे को दओ विदेस लगन सोई लगन
हसन खिलन वेटी जनम दओ है सुख को दओ विदेस लगन——
सुख तो माया मोरी माया सपने को नाहीं दुख ते डूबो सरीर——

जइसी बन की लकडी घुनत है तैसे घुनत सरीर———
जइसे पिपर के पत्ता सुखत है तइसे सुखै सरीर———
कठिन राम जी की प्रीति—

४९

लछिमन जात्री महल लग जाए ।
इक वन नागि दुसर वन नागे तिज वन लगी पियास महल लग——
की तौ लछिमन जल भरि लावौ नाही तौ वनमे डारौ मारि । महल——
ना कहुँ नेरे ताल पुखारे ना कहुँ नेरे कुअना ।
वीस कोस लौ हस फिरति है तऊ न मिलै भौजी हस कौ पानी ।
तन मन मारि विरछ तर सोई ।
पीपर पत्र वरी को दोना लछिमन जल भरि लाए ।
दोना वनाय बिरछ मौ टागो सीधी गैल गही मधुबन की ।
टूटो बूंद हिरदै मैं लागो सिया उठी हहराय
जो कहुँ लछिमन जाते वताय के देती असीस अमर हुइ जाते
लछिमन

५०

कि एजू पानी पियत राजा हिरना जो मारो हरिनी दए असराफ
कि एजू लावो जो माया मोरी जोगिया के कपडा हम जोगिया हुइ जायँ ।
कि एजू मास नौ कुच्छ्या मैं राखे जिभिया मैं धरी अँगार ।
कि एजू हलवल माया देउ आग्या हमे देर हुइ जाय ।
कि एजू खुँटिया टगे पचरग कपडे होइं वुलावो गुर ज्ञान ।
कि एजू अगिन जइयो पूता पच्छिम जइयो पूरव दिसा मति जाव ।
कि एजू पूरब दिसा मे तुम्हरी वहिनी वहो फटि जैहैं धरति समाय
कि एजू मांगत खात गए वहिन दुआरे लावो जोगी भिच्छा जायँ ।
कि एजू लाव न वादी भिच्छा डारि आवो जोगी ठाढे दुआर ।
वादी के हाथ न लैहैं जोगी हैं विरना तुम्हार।

कि एजू थार भरे मोती ऊपर धरो नारियल लेव जोगी भिच्छा जाव ।
कि एजू पेट फारि बीरन भुस भरवैए बीरन जुगिया कैसे होय
कि एजू पानी पियत बहिनी हिरना मारो हरिनी दए असराफ
कि एजू सोने के दोना बहिनी महल भरे हैं करिजो महलिजा में राज ।
कि एजू मांगत खात गए रानी के दुआरे लावो जोगी भिच्छा जाय ।
कि एजू दारी न चेरी भिच्छा डारि आवो जोगी ठाडे हैं दुआर ।
कि एजू चेरी के हाथे न लैहों भिच्छा जोगी हैं मामा तुम्हार ।
कि एजू मोती ऊपर धरे नारियल लेव जोगी भिच्छा जाव
कि एजू जोगिया जोगिया काहे को करत हो जोगिया हैं मामी तुम्हार
कि एजू तब जोगिया तुम काहे न भए ते माया के बारे कुंआर ।
अब जोगिया तुम काहे को भए हो हमरी कौन गति होय ।
तुम जोगिया अब काहे को भये हो हमहू जोगिन हुइ जाय ।
कि एजू सोने के दोना रानी महल भरे हैं रखियो पगड़िया की लाज ।
कि एजू पानी पियत रानी हिरना जो मारे हिरनी दए हैं असराफ ।

देवी के गीत

५१

नीमसार ते आई देवी ललिता
को रे चढावै मैया धजर नारियल को रे चढावै मैया दोनन मेवा ।
राजा चढवामें धजर नारियल रनियां चढामें मैया दोनन मेवा ।
काहे के काजे मैया धजर नारियल काहे के काजे मैया दोनन मेवा ।
दूधा के काजे धजर नारियल पूता के काजे मैया दोनन मेवा ।
दूध तो मैया दओ भरि के दुधाऊ पूत दओ भरि गोदी भरी मैया ।
तुम सुमिरि मैया तुम्हरो जस गाओ हमपै होउ सहाय मेरी मैया ।
नीमसार तेई आ देवी ललिता

५२

सीतला महँरानी की जइ जइ बोलो।
गइया को दूध मइया कइसे चढामैं बछरा ने डारो है जुठारि की जै जै०
साठी के चाउर मइया कैसे चढामैं चिरई ने डारे है जुठारि की जै जै०
गगा को नीर मइया कैसे चढामैं मछरी ने डारो है जुठारि की जै जै बोलो
बारी को फूल मइया कइसे चढामैं भौरा ने लओ है बसेर की जै जै०

५३

मेरी मैया बडी दिलजोर कदम ते उतरि परी।
खाँड नहि खांय चिरौंजी नहि खांय पियैं कटोरन दूध कदम ते
वरु नहि झूलैं पीपर नहि झूलैं झूलैं लौंग की डार कदम ते
खाट नहि सोमैं सुवेती नहि सोमैं सोमैं फूल की सेज कदम ते'

'जस'—

५४

रूठो मइकू को लइओ मनाय दुखित के देसवा होत अइओ रे।
लिलिया वछेरा तो माता थकित परे टूटे परे हँथियार।
कपडे तो माता मेरे माइले जघियाँ परी बलहीन।
दुखित के देसवा कैसे जइयैं रे।
लिलिया तो वछेरा ललना अउरुइ मगामैं सिकिल करौं हँथियार
कपडे तो लला साबुन बुरामौं जँधियाँ तेल फुलेल
तुम तो कहत ते ललना टूटी मडइया छइओ हमईं करौ पतिफाल
टूटी मडइया तो हम ना छामैं ना हमईं करैं पति पाल।
तुम तो कहत ते कि टूटी मडइया मैंकू छामैं मिघना करै पतिपाल। रूठे

५५

भगत भओ रो अकेलो मइकू भगत भओ।
वारह बरसै तो गउएँ चराईं दुवना के करे फरहार। अकेलो

वारह वरसैं मइकू धुनियां रमाई लउग के करे फरहार।
वारह वरसैं मइकू वन में रहे हैं वनफल करे फरहार।
वारह वरसैं मइकू गगा रे हनाई जल के करे फरहार।

५६

विलमि रहो रे लौंग को लोभी विलमि रहो
कहना तो छोडी मात पिता ओ कहना छोडो विजनार। लौंग को
मथुरा सी नगरी छोडी मात पिता गोकुल छोडी विजनार।
पुन्नि धरम को छोडी मात पिता ओ पाप कटन विजनार।

भजन

५७

जानैं तुम जैयो कौने वाना प्रानी।
पांच जने मिलि लै के चले हैं ऊपर चादर तानी।
चौनि लकरियां फूंकि दओ है वरन लगे जैसे होरो।
हाड जरैं जैसे चन्दन लकडी वार जरैं जैसे घास।
देंह जरत है कचन ऐसी आउत वास कुवास।
हनाय धोय पैकरमा करि लेव चलो तिरियैं समसैयें।
हनि हनि वातें कहि जो जेठ से जे वातें नहि होनी।

५८

नगरी अजुध्या आज भई सूनी।
कोटे ऊपर कोट उठाय दए किला उठाए असमानी।
सीस महल से गोला छूटो छूटि गई वाकी नौ नौ नारी।
घर वाहर के नवैं वुलाय लेव ऊपर वाप महतारी।
जेठो भइया हाल वुलाय देव लै आवैं वैद दिखावैं मेरी नारी।
घर वाहर के नवै आइ गए आये वाप महतारी।
जेठो भइया हाल आय गओ लै आओ वैद दिखाई मोरी नारी।

हुक्का वाले हुक्का पी गए वैद छोडि गए नारी।
हसा मैं से प्रान निकरि गये सूखि गई फुलवारी।
खाट पकरि वाकी माया रोवैं बाँह पकरि महतारी।
हाँथ पकरि वाकी तिरिया रोवैं जा विधि गति मोरी राम ने बिगारी।
चारि जने मिलि खाट उठाई ऊपर चादर तानी,
गग किनारे खाट उतारो फूंकि दओ जैसे होरी जराई।
हाड जरैं जइसे चन्दन लक्डी बार जरैं जइसे घास।
जारि फूंकि पैंकरमा कीन्ही औघट घाट हनाई।
चलो राम तिरिया समझैए अब का रोवो तिरिया विचारी।
अब का रावौ तिरिया बावरी जिन जोरी तिन तारी।

५९

मारन मिरग चले रघुराई लीन्हा धनिस चढाई।
भागा मिरग भरैं चौंकारैं करनानिधि लीन्हो पछिआई——
छाँड़ो बान जब करनानिधि ने लगा मिरग के जाई।
खाय के पछाड गिरो है धरनी मे लछिमन लछिमन अति गोहराई—
कान अवाज परी सीता के लछिमन से बतलाई।
इतनी सुनि लछिमन तब बोले सुनियो जानकी माई।
तुम्हें अकेलो छोडि कैसे जामैं हमैं रोकि गये हैं रघुराई——
बाबू राम सरन हरि पद के सिया कहै झुंझलाई।
बुरी चहत हो तुम भइया को यासे तुम्हें दया नहि आई——

६०

लछिमन सोच करत अधिकाई कहत जानकी माई—हरे
जा ना जाय करैं अब कैसो दोनो विध हानि सीस पै आई—लछिमन—
सोचि समझि के तब लछिमन ने रेखा खींचि बनाई।
नडियो फादि माता जनि रेखा ऐसे सिया को रहे समुझाई——

हुक्का वाले हुक्का पी गए वैद छोडि गए नारी।
हसा मैं से प्रान निकरि गये सूखि गई फुलवारी।
खाट पकरि वाकी माया रोवै बाँह पकरि महतारी।
हाँथ पकरि वाकी तिरिया रोवै जा विधि गति मोरी राम ने विगारी।
चारि जने मिलि खाट उठाई ऊपर चादर तानी,
गग किनारे खाट उतारी फूंकि दओ जैसे होरी जराई।
हाड जरै जइसे चन्दन लकडी वार जरै जइसे घास।
जारि फूंकि पैंकरमा कीन्ही औघट घाट हनाई।
चलो राम तिरिया समझैए अव का रोवौ तिरिया विचारी।
अव का रावौ तिरिया वावरी जिन जोरी तिन तोरी।

५९

मारन मिरग चले रघुराई लीन्हा धनिस चढाई।
भागा मिरग भरै चौकारै करनानिधि लीन्हो पछिआई——
छांड़ो वान जव करनानिधि ने लगा मिरग के जाई।
खाय के पछाड गिरो है धरनी मे लछिमन लछिमन अति गोहराई—
कान अवाज परी सीता के लछिमन मे वतलाई।
इतनी सुनि लछिमन तव वोले सुनियो जानकी माई।
तुम्हे अकेलो छोडि कैसे जामैं हमैं रोकि गये है रघुराई——
वावू राम सरन हरि पद के सिया कहै झुझलाई।
वुरो चहत हो तुम भइया को यामे तुम्हे दया नहि आई——

६०

लछिमन सोच करत अधिकाई वहत जानकी माई—हरे
जो ना जाय करै अव कैसो दोनो विध हानि सीस पै आई—लछिमन—
सोचि समझि के तव लछिमन ने रेखा खींचि वनाई।
रहियो फादि माता जनि रेखा इमे सिया को रहे समुझाई——

६३

चैत मास चिन्ता मन बाढी प्रान रहै चित कैसे ।
कैसे धीर धरैं मोरी सजनी बिन हरिमोहन देखे ।
बैसाख मास रितु लागि री सजनी सब कोई मण्डिल छावैं ।
हमरे तो श्याम विदेस है छाये हमरे मडिल को छावैं ।
जेठमास रितु लागी री सजनी चौलिन पवन झकोरैं ।
ऐसो पवन चलै निस वासर अग अग करि डारैं ।
असाढ मास रितु लागी री सजनी चौलिन बादर घेरे ।
बिजुली चमकै कोई न सहातैं रिमिक झिमिक जल बरसै ।
सावन मास रितु लागीरी सजनी सब सखी झला झूलैं ।
हमरे तो श्याम विदेस मे छाये हम झुलुआ कैसे झूलैं ।
भादौं मास रितु लागी री सजनी चौंलित अंधिरिया छाई ।
मोर की बानी पपिहरा बोलै दादुर बचन सुनाए ।
क्वांर मास रितु लागी री सजनी सब कोई दान लुटावैं ।
हमरे तो श्याम विदेस मे छाये हमरे को दान लुटावैं ।
कातिक मास रितु लागी री सजनी सब कोई गंगा न्हाय ।
हमरे तो श्याम विदेस है छाये हमरे को गंग न्हाय ।
अगहन मास रितु लागी री सजनी सब सखि गौने जायँ ।
हमरे तो श्याम विदेस मे छाये हमरो गौन को लेय ।
पूस मास रितु लागी री सजनी जाड़ो अधिक सतावै ।
हमरे तो श्याम विदेस है छाये हमरो जाड़ो कैसे छूटै ।
माघ मास रितु लागी री सजनी मालिन बौर बिलाई ।
हमरे श्याम विदेस है छाये हमरे बौर कौन लेय ।
फागुन मास रितु लागि री सजनी सब सखि होरी खेलैं ।
हमरे श्याम तो विदेस मे छाये हम होरी कैसे खेलैं ।

बारह्-मासा

६२

ऊधो भोरैं से मधुपुर जाव कन्हैया को ल्याव सजनी ।
जब लग ऊधो मधुपुर जैहैं बीतत मास असाढ़
एक तौ मोरी बारी बयसिया दूजे बलम परदेस ।
तीजे मेघ झिमाझिम बरसैं साउन अधिक अदेस ।
भादौं गगन भयानक सजनी बीतैं नित अंधियरिया राति ।
दामिन दमकैं कौंधा लपकैं सिजिया पै जियरा घबराय ।
क्वांर मास मोहि अधिक लागि रहो पिया न आए मोर ।
जो मेरे घर होते कन्हैया जैसे रखती मैं हिरदय लगाय——
कातिक की पूरनमासी को सब सखि गंग हनान को जायँ ।
हाथ जोरि के बुड़की मारैं जलम सुफल हुइ जाय ।
अगहन गोरी ठाढ़ी अंगनवां घर घर उपजे धान ।
चकई चकवा केहलि करत है जल सागर मझधार ।
पूसमास पुसवलिया फूली सुअना बाली काटैं ।
जो घर होते वारे कन्हैया सुअन को डरते मारि ।
महा मास मैं जाड़ो परत है हम पै रहो न जाय ।
फागुन मास मे उड़त अबीरा सब सखि होरी खिलन को   ज
जो घर होते वारि कन्हैया डरती मैं अतर गुलाब ।
चैत मास मे फूली चमेली भौंरा रहे लुभाय ।
आवौ न भौरा लोटौ पोटौ जियरा की तपन वुझाय ।
वैसाख मास मैं बँसवा कटौती बँसवा कटाय के बगला छवौती ।
बगला छवाय के खिरकी कटौती झुकअन आवैं बियार ।
जेठ मास की खरी दुपहरी हमपै चलो न जाय ।
जाय कहां वारे बलमा ते बहियाँ पकरि लैं जाय ।
बरहों मे जब तिरहो लगी सखियन मिले कन्हैयालाल ।

६३

चैत मास चिन्ता मन बाढी प्रान रहे चित कैसे ।
कैसे धीर धरै मोरी सजनी बिन हरिमोहन देखे ।
बैसाख मास रितु लागि री सजनी सब कोई मण्डिल छावैं ।
हमरे तो कृष्न बिदेस है छाये हमरे मडिल को छावैं ।
जेठमास रितु लागी री सजनी चौंलिन पमन झकोरै ।
ऐसो पमन चलै नित बासर अग अग करि टारै ।
असाढ मास रितु लागी री सजनी चौंलित बादर घेरे ।
बिजुली चमकै कोई न सदरखै रिमिक झिमिक जल बरसै ।
साउन मास रितु लागीरी सजनी सब सखी झूला झूलैं ।
हमरे तो कृष्न बिदेस मे छाये हम झुलुआ कैसे झूलैं ।
भादौं मास रितु लागो री सजनी चौंलित अंधिरिया छाई ।
मोर की बानी पपिहरा बोलै दादुल बचन सुनाए ।
क्वांर मास रितु लागी री सजनी सब कोई दान लुटावैं ।
हमरे तो कृष्न बिदेस मे छाये हमरे को दान लुटावैं ।
कातिक मास रितु लागी री सजनी सब कोई गंगा हनाय ।
हमरे तो कृष्न बिदेस हैं छाये हमरे को गग हनाय ।
अगहन मास रितु लागी री सजनी सब सखि गौने जायें ।
हमरे तो कृष्न बिदेस मे छाये हमरो गौन को नेय ।
पूस मास रितु लागी री सजनी जाडो अधिक सतावै ।
हमरे तो कृष्न बिदेस हैं छाये हमरो जाडो कैसे छूटै ।
मह्। मास रितु लागी री सजनी सालिन बोल लिआई ।
हमरे कृष्न बिदेस हैं छाये हमरे बोल फोल नेय ।
फागुन मास रितु लागि री सजनी सब सखि होरी खेलैं ।
हमरे कृष्न तो बिदेस मे छाये हम होरी कैसे खेलैं ।

६४

स्याम सुन्दर व्रजराज न आए वरसा रितु बीति गई
जेठ तपैं दिन रात असढवा गरजि घुमडि बरसैं ।
साउन गडे हिंडोला स्याम कुवरी सग झूलि रहे ।
भादौं बरसैं घमेल कुवाँर वन मोरिला कोहिक रहे ।
कातिक पाख उजियार रैन के तारे छिटुकि रहे ।
अगहन अग्र समान पूस मे पतिव्रत रहने लगो ।
महाँ परत तुसार स्याम कुवरी सग मोय रहे ।
फागुन उडत गुलाल चैत वन टेसू फूलि रहे ।
सूर मास वैसाख मिलन की आसा लागि रही ।

६५

विरहा—

स्याम नहिं आये आई स्याम बदरिया ।
छाई चहुँ ओर देखौ कारी अँधिरिआ ॥
चमकै रहि रहि वइरिनि विजुरिआ ।
सन-सन सन-सन चलत वयरिआ ।
तडपत इत व्रसभान दुलरिआ ।
अँसुअन भीजत धानी चुनरिआ ॥

फुलेरा— ६६

ऊँचो चउतरा चौखुटो हा जहाँ बेटी खेलन जायँ
हो राधा भामिन बनवारी की ।
खेलत खेलत भोर भओ है बाबुलि के दरबार
हो राधा भामिन बनवारी की ।
बाबुल काढी मांटुली हो माई ने बोले हैं बोल ।
काहे को काढी मांटुली हो काहे को बोले हैं बोल
हो राधा भामिन बनवारी की ।

आज बनेगो नीबगे कालि बमेरो है दूरि
हो गया भामिन बनवारी की ।
हम तो तुम्हारी चीरई चुनत बिनत उड़ि जाय
हो गया भामिन बनवारी री ।

कुलेरा— ६७

उग उग डोना डाउरी डूडोरी देय ।
खेलि लेव री खेलि लेव री भाई बाबुल के राज ।
फिरि दुरि जइयो सासुरे डूडोरी देय ।
फिरि दुरि जइयो सासुरे सासु मिलन ना देय डूडोरी देय ।
राति पिसावें पीसनो दिन गोबर की हेर डूडोरी देर ।
गुबर की छिलिया टूनगि परी डूडोरी देय ।
दौरी छेंटा की मार छेंटा बिचारे ना लगे डूडोरी देर ।
दौरी बिलनन की मार बिलन बिचारे ना लगे डूडोरी देय ।
दौरी पटा की मार पटा बिचारे ना लगे डूडोरी देर ।
दौरी रग्ग की मार रग्ग बिचारे ना लगे डूडोरी दे
दौरी पल्जाइन जाय पल्जइया बिचारे ना मिले डूडोरी दे ।
नौ मन गेहूँओ पिसाए डूडोरी देय ।
ती को बनाओ एक लोन डूडोरी देय ।
पनियाँ भरन की फहरि निरही बगन में दाबे लोन
लोन कुँआ मे गिरि परो डूडोरी देय ।
महिया ने पुर भचिआओ निकरन आवें लोन
तौ फिरि परवाओ लोन डूडोरी देय
ननुद को बटेआ सुनगि गओ डूडोरी देय
महिया को उरगिया गुनगि गई पाऊंनि आवें लोन
ननुद के हुप्पा टूगि गए नइ ना गुदरो लोन ।
महिया चुकरिआ दुरकि गई गुपरत आवें लोन

कउरा कउरा बँटि गए डूडोरी देंय,
फूहरि रहि गई खिसियाय डूडोरी देंय।

फुलेरा— ६८

आज जुन्हाँ उजियारी रहिओ मो बिरना चढि व्याहन जइहैं।
सँपवा तुम बाँबी मे रहिओ । " " "
बीछियाँ तुम डक समिटिओ " " "
नदिया तरि सूखत जइओ " " "
कुँअना तुम ओघत अइओ " " "
गूखरु तुम रहा समिटिओ " " "
बीरना तुमरी कइसी दुलइआ
बहिनी री जइसी सोन चिरइया
बीरना तुमैं पीमत कइसे।
बहिनी री जइसे चन्दन आँटा।
बीरना तुमैं पावत कइसे
बहिनी री जइसे पीपर पत्ता
बीरना तुमैं परसत कइसे
बहिनी री जइसे राजा के भोजन
आज जुन्हाँ अँधियारी रहिओ देउरा चढि व्याहन जाइ है
साँपवा तुम रहा मैं रहिओ " " "
बीछिया तुम डक पसरिओ " " "
नादिया तुम बाढत अइओ " ,
गूखरु तुम रहा फइलिओ " "
देउरा तुम्हरी कइसी दुलइया
भउजी री जइसे कोने मुसरिया
देउरा तुमैं पीसत कइसे
भउजी री जइसे घोडा का दाना

देउरा तुमै पावत कइो
भउजी री जइो मरी वपन्यिा
देउरा तुमै परनत कइने
भउजी री जउने भैन का मानी

६१

झुँझिया—

हरो रुपट्टा नील को सुअना रँगा अरगनी टाँगि ।
बाँधै नौ बाँधै रनियाँ के रान रनन सुअना
चढ़ि ससुरारिया जाय ।
उनके ससुर की नगर चिटैना सुआा पकरो रुपट्टा खोंचि ।
छोडो तौ छोडो लगर चिटैना सुअना जा नारी नो देवें ।
माँगै नौ माँगै लाल कनिरआ जी गुलरी का फूल ।
लाल कनिरआ मरि गओ सुअना गुलर फलै आधि रान ।

जाति गीत— (कहारों का)

गोरी धना सुअना पालो जी, गोरी धना ने ।
बजा जतन करि पिजरा बनाओ ।
ताभै घने घने तार लगाए जी ।
सुआ के कारन पिजरा सवार दओ ।
मेरे पछी न दुखियाय जी ।
मेवा मखावै दिन रानि पढ़ावै ताय ।
दिओ वाई नो निन लगाय जी ।
गइ दिना नो नाखिन रूर गई ।
सोना निखरि गओ रई हाथ जी ।
पिजरा न खुलो मारै तार न टूटो ।
आनै निकरि गओ रडन मार जी ।

वाग वगीचा बनखड सब ढूंढे ।
कहूँ पछी न मिलै राम जी ।
प्यारे पछी को कहूँ पता न पाओ ।
गोरी वइठि रही झकमारि जी ।
याही विधि तेरे तन की दशा होय ।
लेउ न जीवन हरि गुन गाय जी ।

अहीरों के गीत

७१

नीदा भरी रे अखिया जगत की नीदा भरी ।
हरे हरे गुवरन अगन लिपइओ मेरी रनियाँ बम्हना निउति जियावौ ।
धामन दीजौ पठाय सहिवा लगर खँगिया
दहिया देव पठाय जगत की जग्य रची ।
दहिया के नाते छिटक नाई दे तौ मेरो नाँव लगर खँगिया ।
नटिनी के वीरा तुम धामन चले जाव लगर खँगिया से कहियौ ।
कि जगता की जग्य रची दहिया देय पठाय
दहिया छिटक नहि देय तौ मेरो नाँव लगर खँगिया
की तौ लिलिया वछेरा मारौ कीतौ भूरी भइसिया मारैं ।
नाईं तौ जमिनी गोइ मारैं ।
चाए सव को मारौ दहिया के नाते छिटक नहि देंय ।
कलुआ वीर महम्दा वीर मुल्तान वीर मुल्तान वीर
चलाना वीर पांचौ वीर चलि धामन चलि जायँ
लगर खगिया के करैं डाढ मैं पीर ।
वहिगिनि दहिया लओ भराय चली जगता से जाय लगर खँगिया
जगता नेक हरौ डाढ की पीर वहिगिनि दहिया लेव उठाय ।
जातौ समुरी अव दहिया छिटक नहि लेंगे
नटिनी के वीरा हरौ डाढ की पीरा ।

७२

काहे वसाई नगर भेंडावली काहे सिरसा वबाये ऊँचे थान ।
काहे लगाई वगिया चन्दन की काहे जगता पाले जगो मोर
सवद सुहाने दादुल मोरन के ।
रहिवे को वसाई नगर भेंडावली सिरमा वबाये ऊँचे थान ।
घिसिवे को लगाई वगिचया चन्दन को मवद सुहाने दादुल मोरन के ।
कौने वनाई नगर भेंडावली कौने वँवाये ऊचे, थान ।
कौने लगाई वगिया चन्दन को कउने पाले जगो मोर
सवद मुहाने दादुल मोरन के ।
मइकू लगाई वगिया चन्नन की वनमा पाले जगो मोर
सवद सुहोने दादुल मोरन के ।

सवादात्मक गीत— ७३

किसान तथा सिपाही

गुरु अपने को मुमिरि के धरै कवित पै ध्यान
जब उठि बोलि सिपाही तव का कहै किसान—
देस विदेसै हम ना जाय
अपने घर उपजो जव धान
सव कुरमा मिलि वैठि के खांय
सांझ सकारे सीचैं चेना
ऊपर नार डुलावै वेना
इत्ती बात किसान ने कही
सव मिपाहा पै सही न गाई
खांय कपूर लोंग को जोडा
पहिरैं सर्ज गर्जीना चीरा
घों खाई जोरैं नहि धायी
तुम्हरे खेत की टार ऊँख

वहै घराव में तुम्हरे मूड
धक्कन मारि के आंगे लै चलै
इत्ती वात सिपाही ने कही तव किसान प सही न गई
जग्गा जोति के पइसा दीन
तव ताजी तुरकी तुम लीन
आंटा दारि विसाहौ हाट
कबऊँ न सोवौ परि के खाट
लरिका वारे देखैं सपना
की घर रहे कि लसिगर अपना
मेहर अन्त तुम अन्तै रहौ
रोय धोय दोनौ परि रहौ
इत्ती वात किसान ने कही तव सिपाही पै सही न गई
भादों मास वहै वहु सर्दा
आधी रात चरावौ वर्दा
हुकुम होय तौ लेव तुरग
पलिगा से जनि उतरौ कत
दूध दही की यादि न जानों
हाटक वाटक ना पहिचानों
साग खाव विन डारो नून
माखन वेचि मही पी रहौ
तुम से मिर खनवावैं कौन
इत्ती वात सिपाही कही तव किसान पै सही न गई।
कुँआर मास रैन अंधियारी
जब मुकीम बोली असवारी
खैचत जीन जेरबंद टूट चिरवांदार पछारु छूट
आगे नद्दी पाछे नारो
भीजि गओ तम्वा तव मारो

कोहकैं दादुल कोहकैं मोर
कहाँ लसिगर अब कौने ओर
भोर होत खन पहुँचे बन्दा
पाँच रुपइया परि गये चन्दा
जब भठियारी माँगो भारो पहिले गहने धरो कटारो
छुरी बेंचि के लाये चून
तब घर सुमिरो भले किसान

प्रबन्ध-गीत

धन्नइया

७४

ये ही नगर की भुंइया भमानी तुम्हरे लेमैं हम नाँव
पहिले हम सुमिरैं रामचन्द को जिन्नै पिंडी दई है बनाय
दूजे हम सुमिरैं माता पिता को कुच्छा लये नौ मास
धरम की मइया तुम हमारी।
तिसरे हम सुमिरैं धरनि धरा को जिन्नें रोपे दोनौ पाँय।
गुरु कौ हम गामैं गुरू मनामैं जिन्ने विद्दा दई अधिकाय।
गुरु कौ हम गामैं गुरू मनामैं नित उठि गगा करैं असनान।
सब कौ हम गामैं सबकौ मनामैं सब के हम जानैं न नाँव
जो कहूँ अच्छर भूलैं सरसुती कठ बिराजो न आय।
हियँन की बातें हियँने छोडि देव आगे के सुनौ हवाल
इत बहै गगा उत बहै जमुना बसा बसेली बसे जाय
उइमैं बसैं राजा गजोधर सुनि लेव भइया मोरी बात
रानी के गरभ रहो तब भइया नमएँ महीना कन्या लये, औतार
सुनि लेव सुनि लेव अब तुम भइया कहिएँ रग महलिया आय
ता मुख बोली बिटिया सुनि लेव जननी तुम मोरी बात
रूपे की छुरवा आजुइ न लीजौ सोने को खपर धरवाय
नरवा छिनावौ अपने हाँथ।

जो तुम हम कों धनुकुन छुअइऔ मोरे हसा उडि जांय
तव मुख वोली रनिया तौ वोली सुन लेव वदिया मोरी बात
राजा से कहिऔ रग-महल मै कन्या लये है औतार
लैथन पैअन वदिया दौरी ठाडी खम्बा की आड
हांथ जोरि के वदिया वोली राजा सुनि लेव बात हमारि।
सरमुख वदिया वोलन लागो कन्या लये हैं अउतार
लैयन पैअन वदिया लौटी पहुची रग महलिया आय
उलटे नगाडा मोघे कर लये माया दई है लुटाय।
हियन की वातें हिअने छोडो रगमहलिया कहियै आय
सुनि लेव सुनि लेव वदिया मोरो धनुकुनि आवौ न वुलाय
लैयन पैयन वदिया दौरी पहुची धनकुन घर जाय
रग महल मे कन्या लये है अउतार।
रग महल मे चलिऔ न धनकुनि कन्या लये हैं अउतार
आंगे आंगे धनकुन चलि भई रगमहलिया पहुंची आय
सोने के खपरा रानी दइ दए सोने टका दये आय
पण्डित औ वराम्हन राजा अव वुलामैं सुनि लेव न मेरे ज्वाव
सच्ची साइत देव विचारि।
तुम मुख वोले पण्डित वराम्हन
अच्छी साइत अव विटिआ अव तुम्हारी लये है अउतार
नांव अव पदमिनी ब्रम्हां राखे सुनि लेव राजा मेरे ज्वाव
कैसे वोलै विटिया लटैती।
सुनि सुनि लेव जलनी वर की खुजवा तुम लगावो।
मन मैं न सोचै रनियां विचारी कैसी रची है भगवान
सुपवा परे हैं वर मागैं।
काए अव गुमट्यां ऊपर वाने कैसी रची है भगवान
ना मुख वोलै रनिया विचारी सुनि लेव न वदिया मोरी वात
नेक जइऔ कचहरी।

कहिओ न कहिओ विटिया वोले ऐसे वोल
ता मुख बोले राजा गजोधर सुनिलेव वदिया मेरो ज्वाव
कैसी आई तुम कचहरी।
तव मुख वोले वँदिया विचारी सुनि लेव न राजा मोरो ज्वाव
सिरकिन सुपवा विटिया पौढी विटिया वर माँगै
कैसे वर माँगै आज
मन में न सोचै राजा इउ विचारो मन मे वहुत घवराय
सिरकी सुपवा वर मागै— — —
नउआ औ वराम्हन वुलामैं कैसे वुलामैं हम आज
ता मुख वोलै वदिया विचारो सुनि लेव न नउआ मोरो ज्वाव
हुआँ से चलि भओ नउआ विचारो रगमहल अव पहुँचो आय
तव मुख वोलै विटिया लडैती सुनि लेव न नउआ मेरो ज्वाव
पूरव ढुँडिओ पच्छिम ढुँडिओ दखिन न ढुँडिओ जाय
चलि भये नउआ औ वराम्हन आज
रात दिना को दउरा करिके रतियन करैं मुकाम
चार दिना चलि पहुचे वसा औ वसेली जाय
पहुचे वसा औ वसेली।

७५

ऊभदेव का गौना

जमुना नदी तरे वहै ऊपर गोकुल गाँव।
धन्न अहीर के भाग को क्रस्न लये अउतार।
ऊची वसै गढ जामिनी नीचै वसै कलवार।
जौंजरि वसैं हरी के जाचक वजैं डहारे वस।
ननद भौज दोनौं अटा चढि गई खेलैं पसासारि।
हारि जीत मानै नही भउजी दए जुआव।
कति कीनी जीवा लाडिली तेरो वारे रचौ विहाव।

बारा बरसैं बीति गईं तेरे गउने की सुधि नाहिं।
माता बउरी मन मरैं मझवा पै बिस खाय।
बोलत बोले भउजिला होत करेजेन घाय।
अरे रे ब्राम्हन मेरे नगर के जहँ पठमों तहाँ जाव।
अरे रे ब्रह्मन पिता के नगर के जामिनी मैं जाव।
कहियौ जाय मेरे जेठ ददा पै गउनो करि लइ जायँ
कै दादा कुलहीन भये कै घटो खजानन दाम
भाजि परैं केउ गैर के मारैं पगिया का मान
ओठ तमोली रचि गई जीवा की भौंहैं करीं कमान
भौं बदरा उमडे कुअरि के नैनन गोरा धार
दाँत किवारे केस घना मुख बेनिन लोटै नाग
मोरा चाहैं बन घनो बदर सलगी डार
गोरिल चाहे पिय रसिया औ सिर लम्बे केस
काढि कटारी भुंइ हनी वारू के बनाये महादेव
राजै ब्राम्हन कपट करै ताय गगा भगवती खाय
ऊभदेव घोडी चाउरी मोरें खलँगा से देव निकारि
खलगा से देव निकारि पांडे पदा गांव इनाम
आज के अठएँ तुम को राजा ऊभनि मिलैयँ आय
दाम बनी लौ परखियै घोडी परखियै चाल
घर की तिरिया तबही परखि निधने मे बेडा लगावै पार
मुंह पाटे पातरे सरीरा घोडी की जात समुन्दर तीरा।
पत्त खडक्कन जल पियै रन देखे अकुलाय
असवारी घारी लगै पाडे कौ कैसे दीहैं जान
हम तुम पूछैं चौंपिया कउन जामिनी गांव।
आठ बरी नौ पीपरा जहै जामिनी गांव
जहै हरी को बन चरैं जहै भली चउपार
ऊंचे अण्टा छवाये हरो ने घुरै परेवा हंस।

हरी तौ मिलियँ हाट मे घरवामँ तेगन पँ वाढ ।
हरी तौ मिलियँ सहज कलवार घर मध पियत जो भइअन वीच ।
हरी तौ मिलियँ चौपार मैं लगी कचहरी दरवार ।
हरी तौ मिलियँ रमई लुहार घर ऐंचाउत मुलतानी कमान ।
बगला सोहै बारीक सेहू कँ सोहै कुतवाल ।
वगला सोहै दिल्ली के वास्साह कौ कँ जल्ला पम्मार
अहीर वस जल्ला न सोहै जार ममासी को राज ।
काहे न बोरी वोरना लै बोरी परदेस ।
लूली खेलै हैहरा आज न बूडी काल ।
जिनकी तिरिया तरसँ नइहरा जीयन को विरकाल ।
बइठे दादा मध पियँ खरिक दुहन को जाय ।
जौंगे धरी दादा मध की करइया भाँमर देय ।
नगर घोवई से आए पाडे टीकम गउने की लगन लिखाय ।
तेंदू सहर के माल दीजो देव मुलतानी कमान ।
वन्दूक जो देव लहाउर वाली वाइस गोली खाय ।
अपने सीस की कलगी दीजो पिता को हूल कटार ।
व्रर्धमान को तेगा दीजो औ गैंडा की ढाल ।
भाला बरछी कडावेल और गाँजरी से साँग ।
भाला दीजो नागदउन को उडि उडि जूझैं ज्वान ।
सरी सीप से जामा दीजो सिर वजवारे की पाग ।
टोप झलरिया देव माथे पँ गोली लगें चीप हुइ जाय ।
लोहलंगरी वखतर दीजो सेर विलौंचा खाय ।
बखतर दीजो मछरी वन को तिहरे जडे कटार ।
घोडी दीजो,चँउरी सजि गौने को जाय ।
वाँटि देव दादा वाँटि देव वाँटि जामिनी गाँव ।

परिशिष्ट (ख)

सहायक-ग्रन्थ-सूची

हिन्दी

ग्रंथ	सम्पादक
१—कविता-कौमुदी, भाग ५ (ग्राम-गीत) —	प० रामनरेश त्रिपाठी
२—हमारा ग्राम-साहित्य	प० रामनरेश त्रिपाठी
३—सोहर	प० रामनरेश त्रिपाठी
४—ब्रज लोक-साहित्य का अध्ययन	डा० सत्येन्द्र
५—ब्रज लोक-साहित्य का विवरण	डा० सत्येन्द्र
६—ब्रज लोक-सस्कृति	डा० सत्येन्द्र
७—हिन्दी लोक-गीत	रामकिशोरी श्रीवास्तव
८—भोजपुरी ग्राम-साहित्य का अध्ययन (अप्रकाशित)	डा० कृष्णदेव उपाध्याय
९—भोजपुरी लोक गीत—भाग १-२	डा० कृष्णदेव उपाध्याय
१०—भोजपुरी लोक-गीतो मे करुण रस	दुर्गाशकर प्रसाद सिंह
११—मैथिली लोक-गीत	राम इकबालसिंह 'राकेश'
१२—छत्तीम गढी लोक-गीत	श्यामाचरण दुबे
१३—धरती गाती है	देवेन्द्र सत्यार्थी
१४—बेला फूले आधी रात	देवेन्द्र सत्यार्थी
१५—धीरे वहो गगा	देवेन्द्र सत्यार्थी
१६—चट्टानो से पूंछलो	देवेन्द्र सत्यार्थी

१७—बाजत आवे ढोल		देवेन्द्र सत्यार्थी
१८—गाव की कहानियाँ		रमेश वर्मा
१९—पृथिवी-पुत्र		डा० वासुदेवशरण अग्रवाल
२०—इसुरी के फाग		प्रकाशक लोक-वार्ता परिषद्, टीकमगढ
२१—बुन्देल खण्ड के लोक-गीत		उमाशकर सिह
२२—मालवी लोक-गीत		श्याम परमार
२३—विंध्य प्रदेश के लोक-गीत		श्री चन्द्र जैन
२४—हमारे लोक-गीत		पृथ्वी नाथ चतुर्वेदी
२५—सुहाग-गीत		विद्यावती कोकिल
२६—कुरु प्रदेश के लोक-गीत	(अप्रकाशित)	गणेश दत्त गौड
२७—गढवाली लोक-गीत	(अप्रकाशित)	जनार्दन प्रसाद काला
२८—भोजपुरी ग्राम्य-गीत		आर्चर और सकटा प्रसाद
२९—बुदेल खण्ड की कहानियाँ		शिव सहाय चतुर्वेदी

बंगला—

१—पूर्व वग गीतिका	डा० दिनेश चन्द्र सेन
२—मैमन सिह गीतिका	डा० दिनेश चन्द्र सेन
३—हारामणि	मुहम्मद मसूरउद्दीन

गुजराती—

१—लोक-साहित्य	झवेरचन्द मेघाणी
२—घरती नुं धावण	"
३—रढियाली रात (४ भाग)	"
४—ॠतुगीतो	"
५—लोक साहित्य नुं समालोचन	"
६—सौराष्ट्र नां खडे रोमा	नागर दास मोहनलाल
७—नागर स्त्रिओ मां गवात्तां गीत	नर्मदा शकर लाल शकर

८—जीवन साहित्य	काका कालेलकर
९—लोक-जीवन	काका कालेलकर

अंग्रेजी सम्पादक

1. Folklore of Early Relics of Village Life — G. L. Gome
2. Folklore Studies · Ancient and Modern — Halliday
3. Folklore of Bengal — Mookerjee
4. Folklore Notes — Enthoven
5. Folklore of Capitalism — Arnold.
6. Selected Papers on Folklore — Bodker
7. Standard Dictionary of Folklore — Funk and Wagnals
8. Folk ways — Summer
9. Psychology of Folklore — Merett
10. Folk-Songs of Maikal Hills — V. Elwin
11. Folk-Songs of India — Mookerjee
12. Introduction to Folklore — M. R. Cox
13. Folk Literature of Bengal — D. C Sen
14. Folklore of South India — Natesh Sastri
15. Popular Poetry of Baloches — Dames
16. English Folk-Song — Sharp
17. Introduction to the Popular Religion and Folklore of Northern India — Crooke
18. Myths and Legends of Ancient Egypt. — Spence
19. Myths and Legends of Middle Ages — Guerber
20. Myths of Middle India — V Elwin

21. Myths of the Norsemen — Guerber
22. Hindu Tales — Meyer
23. Hatim's Tales — Stein
24 Folk Music and Poetry of Spain and Portugal — Schindler
25 Proverbs and Folklore — Ganga Datt
26 Jataka Tales — Francis and Thomas
27. Santal Folk-Tales — Bodding
28. Field Songs of Chhatisgarh — S C. Dube
29 Snow Balls of Garhwal — N S Bhandari
30 Hindi Folk-Songs — A. G Shirreff
31 The Gondwans and the Gonds — Dr. Indrajit Singh
32 The Blue Grove — M G Archer
33 Folk Tales from Mahakaushal — V Elwin
34. Eastern Bengal Ballads — Dr D. C Sen
35 Folk Art of Bengal — G. S. Datta
36 Ballads of All Nations — G. Borrow.
37. The English Ballad — R. Graves
38 Ethnology of Folklore — G. L. Gome
39 Folklore in Early British History — G. L. Gome
40. The Begining of Poetry — F. B Gummere